श्री बदरीनाथ दर्शन

लेखक

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी

प्रकाशक

संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर
(भूसी) प्रयाग

पंचम संस्करण
२००० प्रति] चैत्र शुक्ल २०३१ [मूल्य ६) रु०

मुद्रक-बंशीधर शर्मा, भागवत प्रेस, ८५२ मुट्ठीगंज, प्रयाग।

हमारी ३ नयी पुस्तकें-

१—सटीक भागवत चरित (प्रथम खण्ड)—

बड़े आकार में, मोटे टाइप में-सुन्दर २८ पौंड के कागज पर सजिल्द-सचित्र (दुरंगा चित्र १, बहुरंगे ४-सादे लगभग १०० चित्र) छप्पय और उनका सरल भाषा में अर्थ, लगभग ८५० पृष्ठ—मूल्य केवल २१) रुपया अन्तर्कथाओं सहित।

२—सटीक भागवत चरित (द्वितीय खण्ड)—

सब विशेषतायें वही। सटीक सजिल्द, अन्तर्कथायें बहुरंगा चित्र-१ तिरंगे चार, सादे लगभग २५० चित्र—मूल्य वही २१) रुपया।

३—सटीक राघवेन्दु चरित—

सब विशेषतायें वही। पृष्ठ संख्या १०८ मूल्य १ रु० ५० पैसे।

श्री बदरीनाथ दर्शन

प्रथम—तीर्थ माहात्म्य खण्ड

विषय-सूची

द्वितीय—परिचय खण्ड

तृतीय—यात्रा खण्ड

॥ इति श्री बदरीनाथ दर्शन ॥

भूमिका

पादौ हरेः क्षेत्र पादानु सर्पणे
शिरो हृषीकेश पदाभिवन्दने।
कामं च दास्ये न तु काम काम्यया
यथोत्तमश्लोक जनाश्रयारतिः ॥

प्राणिमात्र के जीवन का लक्ष्य है, भगवत्-प्राप्ति–सुख की उपलब्धि–मैं सुखी रहूँ, दुःख मुझे न हो यह किसकी इच्छा नहीं। जैसे जीव 'अहं–मैं'–के माने इस शरीर को ही समझ बैठा है वैसे ही 'सुख' शब्द इन्द्रियों के भोग विषयों के लिए व्यवहृत होने लगा है। वे बड़े सुखी हैं—अर्थात् उनके पास विषय भोग की सामग्रियाँ प्रचुर मात्रा में हैं। परन्तु यह निर्विवाद बात है, अनन्त काल से बड़े २ ज्ञानियों द्वारा अनुभूत है कि विषयों में जो सुख प्रतीत होता है, वह क्षणिक है, अस्थाई है, स्वल्प है, सुखाभास है। सुख का सम्बन्ध शरीर से नहीं मन से है, मन वासनाओं से भरा है, तो भोग सामग्रियों के रहते भी दुखी है और मन निर्विषय है तो कुछ न रहने पर भी सुख है।

दुःख का कारण है, विश्वास की न्यूनता, निर्भरता का अभाव। संसार में दो ही सुखी हैं, या तो जिसने 'अपने सिवाय किसी को कुछ समझा ही नहीं। या अपनेपन को जिसने मिटा दिया है। कुछ इधर कुछ उधर वाले बीच के लोग सदा दुखी रहते हैं दुखी रहेंगे। समस्त आचार्यों के उपदेश की दो ही धारायें हैं। यह सब दृश्यमान जगत ब्रह्म रूप है, इससे अतिरिक्त कुछ नहीं। जीवमात्र में जो अहं भावना है वही

ब्रह्म का रूप है। कोई जीव नहीं जिसमें अहं वृत्ति न हो वही वृत्ति ब्रह्म है। इसलिये सब ब्रह्म-ही-ब्रह्म है। ब्रह्म सच्चिदानन्द है आनन्द ही उसका स्वरूप है। जब सर्वत्र ब्रह्म-ही-ब्रह्म है आनन्द ही आनन्द है तो फिर दुख कैसा ? दूसरी धारा वालों का कहना है यह जो दीख रहा है सब परिवर्तनशील हैं। जीव इसी में 'अहं भाव करके दुखी है। उस अहं को तुम समस्त गुणों के आगार श्रीहरि में समर्पित कर दो, इस हत्या की जड़ अहं को ही मिटा दो। समस्त चिन्ता छोड़कर प्रसन्न हो जाओ, शरणागत बन जाओ, आत्मसमर्पण कर दो। जो कुछ करो उन्हीं के लिए करो। जब सब उनकी सेवा है। भले बुरे के वे ही फल भोक्ता हैं तो सेवक को–यन्त्र का–दुख कैसा ? हम जो अपने को कर्त्ता मानकर इन नाशवान चीजों की प्राप्ति अप्राप्ति में सुखी दुःखी हो जाते हैं यही अज्ञान है यही दुख का हेतु है। इन्द्रियों के समस्त कर्म उनके ही लिये हों। इसलिए कहा है पैरों की सार्थकता विषयों को एकत्रित करने में नहीं है उनका उपयोग तो भगवत् धामों को–पुण्य क्षेत्रों की यात्रा में ही होना चाहिये।

तीर्थयात्रा के अनेक हेतु हैं। कुछ कहते हैं घूमते २ मन थक जायगा तो फिर आत्मचिन्तन में लगेगा। कुछ लोग तीर्थयात्रा को भगवत् प्राप्ति का साधन मानते हैं, किन्तु ध्यान धारणा शास्त्र चिन्तन से निम्न श्रेणी वालों के लिये कुछ लोगों ने तीर्थ यात्रा को मुख्य माना है। यह निर्विवाद है सभी लोग इसे मानते हैं, कि तीर्थ यात्रा हमारे अज्ञान को—पापों को नष्ट करती है। राम, कृष्ण, बलराम, पांडव, परशुराम ऐसे अवतारी बड़े २ ज्ञानी ऋषि महर्षि, बड़े २ प्रतापी राजा सभी तीर्थों में गये हैं सभी ने उनकी महिमा गाई है। महाभारत समस्त पुराण सभी तीर्थ माहात्म्यों से भरे पड़े हैं। तीर्थयात्रा में अन्तःकरण की शुद्धि होती है, पापों

का क्षय होता है, पुण्यों की वृद्धि होती है और मोक्ष की प्राप्ति होती है। पैर पाकर जिसने तीर्थों में पर्यटन न किया उसके पैर मुरदे के पैर हैं। संत तुकाराम ने कहा—"पायी तीर्थ यात्रा घड़ो। देह संत द्वारी पड़ो" पैरों से तार्थ करो देह को सन्तों के चरणों में डाल दो।

जिन वीतराग सन्त महात्माओं को कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं है, वे भी लोक शिक्षा के निमित्त—जनता हमारे कामों का अनुसरण करे इस निमित्त—शरीर को कष्ट देकर तीर्थ यात्रा करते हैं। उन्हीं के सम्बन्ध में कहा है—"तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि" वे तीर्थों को भी अपने दर्शनों से पवित्र करते हैं, असली तीर्थ बना देते हैं, क्योंकि सन्तों की विभूति जगत् के कल्याण के लिये होती है।

जगाच्या कल्याणा संताँच्या विभूती।
देह कष्टविती परोपकारे॥

श्री बद्रीनाथ धाम चतुर्थ धाम बताया है। अनादि काल से राजर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, गन्धर्व सिद्ध चारण तथा समस्त तीर्थ श्री बद्रीनाथ भगवान् की उपासना करते रहे हैं। जब प्रत्यक्ष रूप में श्री बदरी विशाल विशालापुरी में निवास करते थे तब असंख्यों ऋषि उनके समीप रहकर उनकी अर्चना वन्दना करते थे।

जब कलि के आगमन के पश्चात् जब वे नारायणी शिला के रूप में प्रादूर्भूत हुए तब भी समस्त ज्ञानो, ध्यानी, आचार्य भक्त उनकी उसी रूप में आराधना करते रहे। कोई ऐसे विरले ही प्रसिद्ध सन्त या आचार्य होंगे जिन्होंने श्री बद्रीनाथ की यात्रा न की हो। भगवान् शङ्कराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य सभी आचार्यों ने इस धाम की महत्ता बढ़ाई है। सभी ने इस मोक्षप्रद पुनीत धाम की महिमा गाई है। इस कलि के युग में

अब वहाँ भी कल कारखानों का प्रवेश हो गया है। वहाँ भी कलह का बीजारोपण हो चुका है, फिर भी जब हम इस अशांत वातावरण से निकलकर वहाँ पहुँचते हैं तो अपने को किसी दूसरे लोक में पाते हैं। यदि कुछ दूर आगे सतोपंथ चले जायँ तब तो संसार का अभाव ही हो जाता है। किन्तु भीतर भरी हुई सांसारिक वासनायें हमें वहाँ अधिक रहने नहीं देतीं, जबर-दस्ती नीचे घसीट लाती हैं।

कितना सुखकर है वह स्थान, कितनी निर्मल छटा है उस धाम को, कितनी मनोरम हैं वे पर्वत श्रेणियाँ, कितनी गन्धमय हैं वे गन्धमादन की घाटियाँ, ये बातें कहने की नहीं देखने की हैं, जिन पर बदरी विशाल की कृपा हो। चार बार मैं गया। वहाँ रहा, समस्त शैल शिखरों पर घूमता रहा फिर भी अतृप्त ही रहा। बार-बार सोचता हूँ—हे अज्ञान प्राणी! नीचे तो क्या रखा है, न घर, न द्वार, न बाल, न बच्चे, न कोई प्रेमी न मित्र, सबके लिये भार का स्वरूप हूँ। जिसके यहाँ चला जाता हूँ मन में सोचता है कहाँ की इल्लत आ गयी। एक भी मनुष्य हृदय से असली प्रेम करने वाला नहीं। स्वयं भी किसी से प्रेम नहीं करता। कोई भी एक ऐसा नहीं जिसे देखकर हृदय भर आवे, अन्तःकरण में उल्लास हो, रोम-रोम खिल उठे। जिसे बार-बार देखने की इच्छा हो। यों बनावटी प्रसन्नता प्रकट करना गले से गले लगाकर मिलना, इसे दम्भ कह लो या व्यवहार। फिर भी मैं वहाँ हिम शिखरों पर सदा रह नहीं सकता। मेरी वासनायें या मेरे श्यामसुन्दर मुझे बार-बार घसीट लाते हैं। मेरे द्वारा कुछ कार्य होगा यह तो हास्यास्पद है, फिर भी यन्त्र की तरह अवश हूँ।

गत वर्ष जब मैं श्री विशालपुरी में निवास कर रहा था तो मन्दिर के प्रबन्धक श्री प्रतापसिंह जी ने मुझे "श्री बद्रीनाथ

दर्शन" के ऊपर कुछ लिखने को आग्रह किया। उनके आग्रह पर ही मैंने इस ग्रन्थ को श्री हरिद्वार में आकर लिखना आरम्भ किया। इसका अधिकांश भाग महन्त श्री शान्तानन्द जी नाथ के स्थान में लिखा गया। श्री महन्त जी द्वारा स्थापित श्रवणनाथ ज्ञान मन्दिर में धार्मिक ग्रन्थों का बहुत ही सुन्दर संग्रह है। वहाँ से मुझे इसके लिखने में बहुत से ग्रन्थों की सहायता प्राप्त हुई। यदि सभी ग्रन्थ एक साथ इतनी सुलभता से मुझे न प्राप्त होते तो इतने स्वल्प समय में यह ग्रन्थ न लिखा जाता। प्रारब्ध वश या मान प्रतिष्ठा कीर्ति के लोभ से, अनेक सभा उत्सवों के झंझटों में फँसे रहने के कारण, पुस्तक लिखने को मुझे अवकाश ही नहीं मिलता। मेरे लिखने से कुछ जगत् का उपकार होगा या मेरा ही निजी परमार्थ साधन होगा इसे मैं नहीं समझता। फिर भी प्रकृतिवश कुछ न कुछ अवसर मिलने पर लिखने के लिये विवश हो जाता हूँ, लिखकर मन से बेमन से—दम्भ से कैसे भी उनको अर्पण कर देता हूँ—यद्यपि उसमें मेरा अहं भाव बराबर बना रहता है—फिर भी वे बलवान् हैं अपनी चीज को चाहे बेमन से ही हो उसे वे लेना चाहें तो ले सकते हैं, मेरा स्वत्व बलपूर्वक मेंट सकते हैं। यदि वे ले लें तो मुझे इस बात की चिन्ता ही न रहे कि इससे क्या लाभ होगा। लाभ हानि के भागीदार तो वे ही होंगे जिनकी वस्तु हो। फिर भी हे मेरे जीवन सर्वस्व ! मुझे अब अधिक मत भटकाओ। बहुत घूमा। बहुत भ्रमा, कब तक इस चक्कर में भ्रमाते रहोगे हे मेरे नाथ !

हे बदरी विशाल ! मैं न जाने कबसे भटक रहा, हूँ कब तक भटकूँगा इसे तुम ही जानो। अपना निज साधन मेरे पास कुछ नहीं है। आपकी अहैतुकी कृपा से ही कुछ हो सका है। उत्तर में तुम बदरी रूप से विराजते हो और दक्षिण में पंढरी-नाथ या पाँडुरङ्ग के नाम से प्रसिद्ध हो। सोचता हूँ बदरीनाथ में

तो तुम घोर तपस्वी वेष में हो। यहाँ पंढरपुर में तुम कटि पर हाथ रखकर ईंट पर खड़े होकर संसारी लोगों को अभय दे रहे हो, कि मेरी शरण में आने पर यह अथाह दुर्गम भवसागर कटि तक ही रह जाता है। इसी आश्वासन से कभी यहाँ दौड़ा आता हूँ फिर कभी उत्तर में, कभी दक्षिण में जाता हूँ। हे विट्ठल ! तुम्हारी शरण में ज्ञानदेव, निवृत्तिनाथ, सोपानदेव, मुक्ताबाई, एकनाथ, तुकाराम, समर्थ रामदास, चौखामेला, गोरा, सेखूबाई आदि असंख्यों भक्त इस भवसागर से पार हो गये। सबको तुमने अभय कर दिया। उनसे तुमने बातें की, भक्ति की महिमा बढ़ाई। मैं भी इसी आशा से अबके तीसरी बार तुम्हारे द्वार पर दीन बनकर भिक्षा के लिये आया हूँ। हे अशरणशरण ! हे भक्त भयहारी पाँडुरङ्ग ! हे करुणामयी रक्खो माई ! इस दीन हीन कङ्गाल की भी करुण पुकार सुन लो। हे मेरे वरदराज ! अपना वरद हस्त इस अभिमानी कीर्ति लोलुप साधन हीन प्राणी के मस्तक पर भी रख दो। अपनी तरफ से मैं कर ही क्या सकता हूँ तुम्हारी अहैतुकी कृपा का ही एकमात्र भरोसा है। कब करोगे हे मेरे नाथ ! मुझे वासना हीन, कब अपने दुर्लभ दर्शनों से मेरा आज्ञानान्धकार मेंटोगे।

श्रीधाम पंढरपुर

तुम्हारा एक अकिञ्चन भिक्षु—
प्रभुदत्त

श्री बदरीनाथजी की स्तुति

पवन मन्द सुगन्ध शीतल हेम मन्दिर शोभितम् ।
निकट गङ्गा बहत निर्मल श्रीबदरीनाथ जी विश्वम्भरम् ॥
शेषसुमिरन करत निशिदिन धरत ध्यान महेश्वरम् ।
श्री वेद ब्रह्मा करत स्तुति श्री बदरीनाथ जी विश्वम्भरम् ॥
इन्द्र, चन्द्र, कुबेर, ध्वनिकर धूप दीप प्रकाशितम् ।
सिद्ध मुनि जन करत जय जय श्रीबदरीनाथजी विश्वम्भरम् ॥
शक्ति गौरी गणेश शारद नारद मुनि उच्चारणम् ।
योग ध्यान अपार लीला श्रीबदरीनाथजी विश्वम्भरम् ॥
यक्ष किन्नर करत कौतुक ज्ञान गन्धर्व प्रकाशितम् ।
श्री लक्ष्मी कमला चँवर डोले श्रीबदरीनाथजी विश्वम्भरम् ॥
कैलाश में एक देव निरञ्जन शैल शिखर महेश्वरम् ।
राजा युधिष्ठिर करत स्तुति श्रीबदरीनाथजी विश्वम्भरम् ॥
श्रीबदरीनाथजी के पञ्च रत्न पढ़त पाप विनाशनम् ।
कोटि तीर्थ भयो पुण्यं प्राप्यते फलदायकम् ॥

१

श्री बद्रीविशाल लाल को
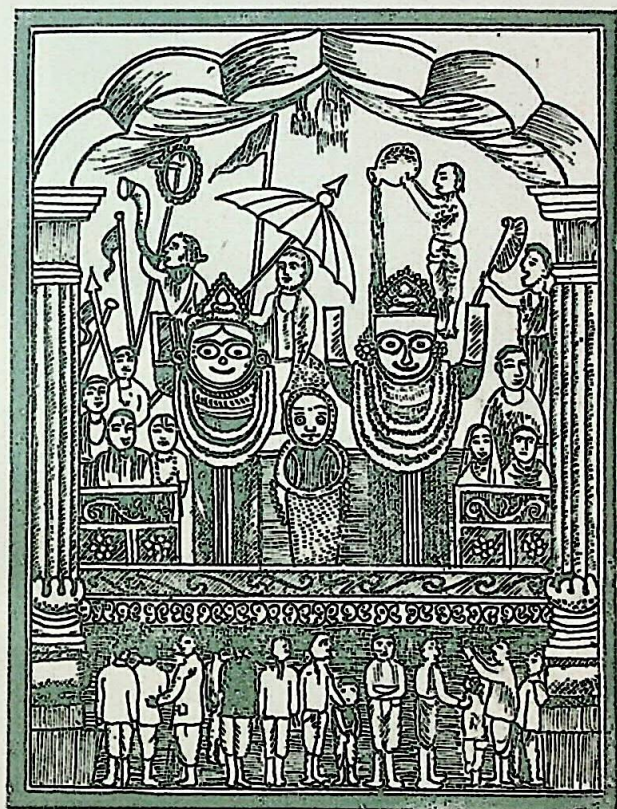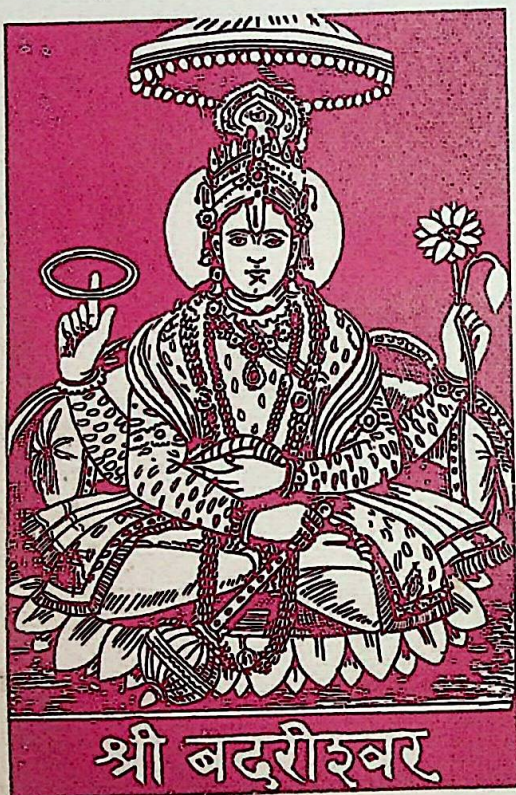
श्री बदरीश्वर

श्रीहरिः

बद्रीविशाल लाल को

बहूनि सन्ति तीर्थानि, दिवि भूमौ रसासु च।
बदरी सदृशं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥*

'बद्रीनाथ दर्शन' लिखने की आवश्यकता ही क्या थी? बाबा बद्रीनाथ के ऊपर अब तक न जाने कितनी पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं, कि उनकी गणना कठिन है। हिन्दी, उर्दू, बँगला, अँगरेजी, गुजराती, मराठी, तेलुगु, तामिल आदि सभी भाषाओं में बहुत-सी पुस्तकें होंगी। बहुत-सी तो मैंने अपनी आँखों से देखी हैं। बहुत-सी पढ़ी हैं, बहुत सूँघी हैं। बहुत-सी उलटी हैं बहुत-सी पलटी हैं। विचित्र विचित्र नाम हैं। कोई लिखता है "मेरी बद्रीनाथ यात्रा" कोई "केदार बदरी परिचय" कोई 'बदरी केदार की झाँकी'। "बदरी केदार पथ-प्रदर्शिक" "बद्री केदार यात्रा" ऐसे भी नाम हैं। इसके अतिरिक्त बहुत से साहित्यिक नाम हैं। "हिमालयांत" "महा प्रस्थान के पथ पर" 'उत्तराखंड के पथ पर' आदि-आदि। लेखकों में सभी तरह के हैं। कोई धनिक हैं, तो कोई कवि हैं। कोई यात्रा प्रिय हैं, तो कोई साहित्यिक हैं, कोई विद्वान् हैं। इन सभी ने बाबा बद्रीनाथ को भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखा है।

इन इतनी पुस्तकों के रहते हुए मूढ़ प्राणी! हे अहङ्कारी जन्तु! तुझे और अलग पुस्तक लिखने की क्या जरूरत थी। तू

---

* पृथ्वी, स्वर्ग तथा पाताल लोक में बहुत से तीर्थ हैं, किन्तु बद्रीनाथ के सदृश तीर्थ न हुआ है न होगा।

न कवि है, न विद्वान् है, न अन्वेषक है, न साहित्यक है, धनी भी नहीं, सभ्य भी नहीं,फिर तूने यह अनधिकार चेष्टा की क्यों ?

तेरी पुस्तक विना कोई साहित्य अधूरा तो रह नहीं जाता फिर तू ने बीच में अपनी टाँग क्यों अड़ाई ? क्यों पाँचवें सवार में नाम लिखाया ? पाँचवाँ सवार कैसा ? चार सवार देहली जा रहे थे, एक महाशय गर्दभ राज पर सवार उनके पीछे लग लिये। रास्ते में किसी ने पूछा—"ये चारों सवार कहाँ जायँगे ?" तब गर्दभ महाशय बोल उठे—"ये पाँचों सवार देहली नगरी को प्रस्थान कर रहे हैं" पूछने वाला हँसा कि "चारों सम्भव है न भी पहुँच सकें, किन्तु पाँचवें तो देहली पहुँचेंगे ही" सो यह 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' वाली उक्ति साहित्य क्षेत्र में भी चरितार्थ है। कोई पढ़ो न पढ़ो पुस्तक छपा जरूर देना, सो देवता तुम्हारी पुस्तक के बिना कौन-सी यात्रा रुकी पड़ी थी ? सो इस कागज के दुष्काल में इतने सफेद कागजों को काला किया ?

यह तो अनधिकार चेष्टा है, पिसे को पीसना है, समय का दुरुपयोग है, तुम्हें लिखने का ही शौक था तो राम नाम पर, कीर्तन पर या और किसी पर लिखते, यह कौन-सी नई बात बताई ?

भैया ! तुम ठीक कहते हो। जिनकी तनिक सी झाँकी के लिये गरीब, अमीर, विद्वान्, मूर्ख, अज्ञानी, आस्तिक, नास्तिक सभी दौड़े जाते हैं, उनकी महिमा यह अभिमानी जन्तु क्या बता सकता है। जिसके चरणों में आस्तिक भी नत होता है और नास्तिक भी उन चार हाथ वालों की यह दो हाथ वाला प्राणी क्या प्रशंसा कर सकता है। जिसके प्रभाव से आबाल वृद्ध नर नारी प्रति वर्ष हजारों लाखों स्वतः ही खिंचे जाते हैं उनका कोई परिचय क्या करा सकता है। जो स्वयं ही अपनी शक्ति से सब को मार्ग दिखाने ले जाते हैं उनके पथ का प्रदर्शन यह थका

जीव क्या करा सकता है। सूर्य को दीपक दिखाना मूर्खता है। आज से नहीं सनातन से जब से यह सृष्टि आरम्भ हुई है। जब से युगों की कल्पना आरम्भ हुई है तभी से बद्रीनाथ हैं। वे जल वायु की तरह हमारी नस-नस और नाड़ी-नाड़ी में व्याप्त हैं वे सनातन से हमारे साथ हैं। तीस कोटि हिन्दुओं में से ऐसा कोई अभागा होगा जो बद्री विशाल को न जानता हो। उनका हम पुस्तक द्वारा परिचय करा ही कैसे सकते हैं? करावें तो भी व्यर्थ है। फिर भी जो स्वयं परिचित नहीं वह परिचय करा ही क्या सकता है?

शतशः सहस्रशः यात्री कितनी उत्कण्ठा, कितनी लालसा, कितनी पिपासा से भाँति-भाँति के नाना कष्ट सहन करके उन हिमशिखर पर विराजमान बद्रीविशाल के दर्शनों के निमित्त जाते हैं, और उनके दर्शन करके अपने जीवन को धन्य-धन्य मानते हैं, उनके सम्बन्ध में मनुष्य की अधूरी निर्जीव लेखनी लिख ही क्या सकेगी। शेष शारदा भी जिनकी गुणावली का निरन्तर गान करते-करते पार नहीं पा सके हैं उन जगदाधार, अपरम्पार प्रभु के बारे में कोई क्या कह सकेगा?

मैं कब कहता हूँ, कि मेरी पुस्तक के साहित्य में युगान्तर होगा। पथ प्रदर्शन कराने वाली पुस्तकों की कमी नहीं है, इसका भी मुझे पता है। "माहात्म्य" की पुस्तक का नाम सुनते ही सभ्य साहित्यिक नाक-भौं सिकोड़ लेते हैं यह भी मैं जानता हूँ। मैं धनी नहीं यह निर्विवाद है, विद्वान् नहीं इसे सभी जानते हैं, कवि तथा साहित्य-सेवी भी नहीं यह भी सत्य है। किन्तु दर्शनों की लालसा से प्रति वर्ष हजारों जाने वाले यात्रियों में से मैं भी उन अशरण-शरण दीनों के रक्षक, अनाथों के नाथ, भक्तों के प्रतिपालक उन बद्रीविशाल लाल के दर्शनों को जाने वाला एक यात्री हूँ। इसे मानने में तो आपको भी आपत्ति न होगी।

भाई, यात्री हो तो दर्शन करो अपने घर जाओ। ढोल पीटने की क्या जरूरत, कि चलियो रे! हमने यात्रा की, तो हमने गढ़ जीत लिया,हम तीन बार यात्रा कर आये, ३-३, ४-४ महीने बाबा बद्रीनाथ की पुरी में निवास कर आये। जैसे सब जाते हैं जाओ, अपने घर बैठो, डोंडी क्यों पीटते हो?

यदि डोंडी पीटना पाप है तो जरूर मैं पाप करता हूँगा और बाबा बद्रीनाथ इसका जो दंड होता होगा वे मुझे देंगे। किन्तु मेरी एक बात भी सुनो। मैंने अपनी आँखों देखा है बड़े-बड़े राजे महाराजे जाते हैं उन बद्रीविशाल लाल की भेंट के लिये बहुमूल्य हीरों का हार ले जाते हैं, बहुत से नाना तरह के बहुमूल्य वस्त्र-आभूषण ले जाते हैं। बहुत से सोना, चाँदी, रुपया, पैसा, बर्तन, फल, फूल ले जाते हैं। मैंने गरीबों को देखा है। वे हजारों कोस से उन देवाधिदेव के दर्शनों की लालसा से चलते हैं, महीनों में वहाँ पहुँचते हैं, किन्तु चलते समय जो गाँठ में थोड़ी चने की दाल बाँध लेते हैं, उन्हें कितनी श्रद्धा से जाकर वे चाँदी के कमल वाले थाल में चढ़ाते हैं, उनकी उस श्रद्धा भक्ति को तुम तर्कशाल क्या समझ सकोगे? उस दृश्य का तो वह अनुभव कर सकता है जिसने घण्टों वहाँ खड़े होकर इस हृदय को हिला देने वाले दृश्य को देखा है और देखकर उसका अनुभव किया है।

ध्यान मूर्ति भगवान् बद्रीविशाल अपने किसी यात्री का तिरस्कार नहीं करते। जो इन्हें हीरा मोती चढ़ाता है उसे भी लेते हैं और पान, फूल तथा चने की दाल को भी ग्रहण करते हैं। खाली हाथ चला जाय उसे भी वे रोकते नहीं, छिप भी नहीं जाते, दर्शन उसे भी देते हैं उसी तरह जिस तरह हीरा जवाहिरात लाने वाले को देते हैं। उनकी दृष्टि में समता, विषमता, भेदभाव नहीं। किन्तु प्यारे बन्धु! देवता के सामने खाली हाथ जाना नहीं

चाहिये। शास्त्र का वचन है, तुम चाहे मानों चाहे मत मानों मुझे तो मानना ही है।

अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार उन चराचर के स्वामी सर्वाधार के चरणों में कुछ चढ़ाना है। मुझ दीन-हीन कङ्गाल के पास और रखा ही क्या है। उन्हीं सर्वाधार ने अपने-एक रूप व्यास रूप से अपनी महिमा गाई है। उनके ही चरणचिन्हों का अनुसरण करके पुराणों से कुछ प्रसङ्ग उद्धृत करके उन्हीं के चरणों में भेंट करने की मेरी इच्छा है। तुम्हारे आक्षेपों की, तुम्हारी बातों की ओर मुझे ध्यान नहीं देना है, तुम चाहे प्रसन्न हो या अप्रसन्न, मुझे तो अपने उन—

शेष सुमिरन करत निशि दिन करत ध्यान महेश्वरम्।
श्री वेद ब्रह्मा करत स्तुति श्रीबद्रीनाथ विश्वम्भरम्॥

को रिझाना है। उनके रीझ जाने पर फिर किसी के रिझाने की आवश्यकता रहती ही नहीं। तुम कह सकते हो यह तुम्हारी भेंट क्या हुई? हाँ, यह ठीक है अपना है ही क्या, जो कुछ है सब उनका ही है। पुत्र को जो भी कुछ देता है पिता ही तो लाकर देता है। उस दी हुई वस्तु को ही अपनी नन्हीं-नन्हीं उँगलियों से बच्चा तुतली बानी से अपने पिता के सामने करके कहता है 'बाबूजी! लो तब पिता उसके दोनों हाथों को उठाकर झट से उसका मुँह चूम लेता है। "बेटा! तुम्हीं खाओ।"

सो, हे मेरे बद्रीविशाल! तुम्हारे देव दुर्लभ दर्शनों के उपलक्ष्य में यह तुम्हारा दर्शन भी भेंट करता हूँ। हे मेरे मालिक! इसे प्रेम से एक बार दृष्टि भरकर देख लो और इस दीन-हीन के मुँह को चूम लो, भला, मैं तुम्हें और दे ही क्या सकता हूँ? मेरे पास और है ही क्या?

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।
येन त्वदङ्घ्रि कमलेरतिं मे यच्छशाश्वतम्॥

२—प्रार्थना

श्री बद्रीनाथ पादारविन्द युगलं ब्रह्मैश्वराद्यामर–
श्रेणी नम्र शिरोडलो मालि अमलं वन्दामहे सततम् ।
भक्त्या योगि मन स्तडाग सुषमा सन्दोह पुष्यत्तम्
गंगाम्भो मकरन्द बिन्दु निकरं संसार दुःखापहाम् ॥

हे भगवान् बद्रीविशाल ! हे पूर्ण काम ! हे सर्वेश्वर ! इस संसार में तुम ही तुम हो । जितना खेल है सब तुम्हारा ही तो है । तुमने इस विश्व की रचना की, किसलिये ? अपने विनोद के लिये, क्रीड़ा के लिये, शिशुवत, बालवत तुमने कुछ धूल इकट्ठी कर ली, पानी से उसका पिण्ड बनाया । धूप और वायु में सुखाकर उसकी भिन्न-भिन्न आकृतियाँ बना दीं । उनको लेकर तुम क्रीड़ा कर रहे हो, कभी किसी आकृति को किसी में मिला देते हो कभी किसी को किसी से पृथक् कर देते हो, कभी किसी को फोड़ देते हो, पुनः उसे जोड़ देते हो, फिर तोड़ देते हो, कभी किसी को स्थानान्तरित कर देते हो । इसमें तुम्हें क्या आनन्द आता है इसे तो तुम्हीं जानों हम तो तुम्हारे इस विनोद का रहस्य समझ नहीं सकते ।

हे जगादाधार ! कुछ लोग तुम्हारी भक्ति करते हैं, कुछ तुम्हारा विरोध करते हैं, किन्तु वह सब है तुम्हारे ही लिये, उनके लक्ष्य का केन्द्र तो आप ही हैं वे समर्थन करें या विरोध, तुम्हें छोड़कर और वे जायँगे कहाँ ? पार्थिव प्राणी कहें—"हम पृथ्वी को नहीं मानते ।" मुँह से बकते रहें किन्तु उनकी स्थिति तो पृथ्वी पर ही है । पक्षी कहें हम आकाश के अस्तित्व में अवि-

श्वास करते हैं, करते रहें, उनका आश्रयदाता तो आकाश ही है। जलचर जन्तु जल के अस्तित्व का विरोध करें, करते रहें, उनको शरण देने वाला तो जल ही है। इसी प्रकार समस्त प्राणियों के चरमलक्ष्य, अनन्य आश्रय तथा प्राप्य स्थान—तो हे मेरे नारायण ! आप ही हो।

आपके बिना गति नहीं, अवलम्ब नहीं, स्थिति नहीं, आभास अस्तित्व कुछ भी नहीं। जीवों के हेतु, संसार के मूल कारण, जगत् के आश्रय, सृष्टि के सर्वस्व जो भी कुछ हो आप ही हो। आप ही आप हो आपके बिना कुछ भी तो नहीं, जो भी कुछ दीख रहा है आपको ही विभूति है, आप ही अनेक रूपों में दिखाई दे रहे हो।

"हरिदेव जगद् जगदेव हरिः हरितो जगतो नहिं भिन्न तनुः" इसलिये मनीषी तुम्हें भिन्न-भिन्न रूपों से पुकारते हैं। उन विभिन्न रूपों में होते हुए भी तुम अभिन्न हो,अनेक नाम रूपों के आवरणों में से भी तुम एक हो। तुम्हारी एकता में कभी भी बाधा नहीं पड़ती,तुम अनेक रूपों को धारण करते हो फिर भी तुम्हारा कोई रूप नहीं तुम अरूप और अखंड आजन्म और अविकार हो।

हे दया के सागर ! जीवों को अपने आनन्द का अनुभव कराने के निमित्त अनेक अवतार धारण करते हो। जिनके गुणों को गा-गाकर ये त्रितापों से तापित प्राणी परम शान्ति का लाभ करते हैं। तुम्हारे अनेक मन मोहक स्वरूप हैं, अनेक अलौकिक रूप हैं, यद्यपि तुम रूप नाम आकृति से पृथक् भी हो फिर भी उनसे अलग भी नहीं वैसे जगत् आपके आप धाम है, फिर भी आपके कुछ विशेष परम पावन विशिष्ट लीलाधाम हैं। तुम जीवों के कल्याण के निमित्त ऐसी क्रीड़ायें करते हो जिनमें जीवों को परम सुख की प्राप्ति हो और तुम्हारे सत् स्वरूप में किसी प्रकार की बाधा न हो।

तुम्हारे अनेक अवतार अनेक रूपों से नर-नारायण का स्वरूप अत्यन्त ही अलौकिक है। दो रूप होकर भी साधक वेश बनाया है, अकर्मा और निरीह होकर भी निरन्तर कर्म में निरत हो। तपःसार होने पर भी तप में संलग्न हो। वह तुम्हारी विशाल पुरी युग-युगान्तरों से अशान्त प्राणियों को सदा शान्ति प्रदान करती आ रही है और निरन्तर करती ही रहेगी। हे मेरे बदरि आश्रम में वास करने वाले वरद प्रभो! आपके चरणों में हमारी अविचल भक्ति हो, वरदराज! हमें ऐसा वर दो कि तुम्हारे यथार्थ 'दर्शन' का अनुभव कर सकें। तपोवेश-धारी! हे हिमगिर शैल निवासी! हे बदरी विटप वासी! हमें ऐसा आशीर्वाद दो कि तुम्हारी कृपा के पात्र बन सकें। तुम्हारी मंजुल-मूर्ति हमारे मन मानस में सदा सन्निहित रहे। हे ब्रह्मचारी वेष-धारी! हम तुम्हारे अद्वितीय अलौकिक आदर्शों का अनुगमन करते रहें। तुम्हारे चरण-चिन्हों का चिरकाल पर्यन्त चिन्तन करते रहें। हे मेरे बदरी विशाल! क्या कभी इस कङ्गाल पर ऐसी कृपा होगी।

—:—

३—चारों धाम

कलौ गते त्रिसाहस्रे वर्षाणां शङ्करो यतिः ।
बौद्धमीमांसकमतं जेतुमाविर्बभूव ह ॥ *

(शिव रहस्य)

हिन्दू-धर्म में 'चार' का बड़ा बोल बाला है। चार वर्ण, चार आश्रम, चार पुरुषार्थ, चार दिशा, चार युग, इसी प्रकार चार धाम भी हैं। हमारे शास्त्रों में अनेक तीर्थ हैं, किन्तु उन सबमें चारों दिशाओं में चार मुख्य हैं। पूर्व दिशा में श्री जगन्नाथ जी, दक्षिण में श्री रामेश्वरनाथ जी, पश्चिम में श्री द्वारिकानाथ जी और उत्तर में श्री बद्रीनाथ जी। दूसरे शब्दों में यह कहिये कि इस पुण्य-भूमि भारतवर्ष की ये चारों धाम चारों सीमा हैं। इन चारों के अन्तर्गत जो क्षेत्र है वही भारत का पुण्य क्षेत्र है। इसी के अन्तर्गत वर्णाश्रम धर्म वाली प्रजा रहती है। इससे बाहर वर्णाश्रम धर्म नहीं है। वैसे तो ये चारों धाम अनादि हैं, किन्तु युग-युग में इनके वाह्य रूपों का परिवर्तन होता है। रामेश्वर में शिवजी विराजमान हैं। लङ्का के पूर्व श्री कौशिल्यानन्दन राम ने अपने इष्टदेव भगवान् भोलानाथ की आराधना की, इसीलिये ये राम के ईश्वर-रामेश्वर कहलाये। इसीलिये यह त्रेता क्षेत्र है। व्रज को छोड़कर भगवान् वासुदेव समुद्र के बीच में द्वारिकापुरी में चले गये थे। भगवान् के स्वधाम पधारने पर द्वारिकापुरी समुद्र में विलीन हो गई,

---

* कलियुग के तीन हजार वर्ष व्यतीत होने पर बौद्ध मीमांसकों के मत पर विजय करने के लिए शंकर यति के रूप में प्रविर्भूत हुए।

किन्तु भगवान् के भवन को छोड़कर जहाँ कि भगवान् अब भी सदा-सर्वदा वास करते हैं। इसलिये यह धाम द्वापर प्रधान है। श्री जगन्नाथजी ने काष्ठ का विग्रह क्यों धारण किया ? यह एक लम्बी कथा है। इसका कारण भगवान् की इच्छा ही है, किन्तु भक्तों के अधीन होकर और भक्तों की श्रेष्ठता दिखाते हुए भगवान् ने प्रतिज्ञा की थी—"मैं चित्ररथ गन्धर्व को न मार डालूँ तो मेरा कलियुग में काष्ठ का विग्रह हो। उस ऋषि के अपराध करने वाले गन्धर्व को अर्जुन और सुभद्रा ने अभयदान किया। भगवान् ने भक्तों के सामने हार मानी और वे श्री क्षेत्र जगन्नाथ में काष्ठ विग्रह से प्रतिष्ठित हुए। और भी इस सम्बन्ध में कई कथाएँ हैं। इसलिये यह क्षेत्र कलियुग क्षेत्र है। भगवान ने धर्म की पत्नी मूर्ति में नर-नारायण अवतार लेकर बदरिका आश्रम में तप करना आरम्भ किया। इसीलिये यह सत्ययुग क्षेत्र है। ये युग अनादि हैं। सदा सर्वदा एक के बाद एक आते जाते रहते हैं। कलियुग के बाद सत्ययुग यह परम्परा अनादि है इसीलिये ये क्षेत्र भी अनादि हैं।

शङ्करावतार भगवान् आद्य शङ्कराचार्य ने धर्म के प्रचारार्थ इन चारों धामों में अपने चार मठ स्थापित किये। किन्हीं-किन्हीं का कथन है, कि भगवान् शङ्कर ने नहीं उनके शिष्यों ने मठों की स्थापना की। हम इस विवाद में पड़ना नहीं चाहते। चाहे इनकी स्थापना भगवान् शङ्कराचार्य के सामने हुई हो या पश्चात् ये मठ शांकर सम्प्रदाय के हैं और चारों मठाधीश अब तक शङ्कराचार्य कहाते हैं। बदरिकाश्रम के मठ को छोड़कर शेष तीनों मठों के भग्नावशेष या स्मृति चिन्ह स्वरूप अब भी वहाँ शङ्कराचार्य कहाने वाले मठाधीश विद्यमान हैं।

हमारे धर्म में यह मान्यता है, कि तीर्थयात्रा करना भी भगवत् प्राप्ति का साधन है धर्म का तो यह एक प्रधान अङ्ग है ही।

अतः सदा से हमारे यहाँ तीर्थयात्रा होती आई है। आजकल तो तीर्थयात्रा सुलभ हो गई है, किन्तु जब रेल, मोटर, वायुयान आदि आधुनिक यान साधन नहीं थे तब भी हमारे यहाँ लाखों यात्री केवल धार्मिक भावना से यात्रा किया करते थे। वे पैदल ही भारतवर्ष के तीर्थों में भ्रमण करते थे। उन दिनों यात्रा करने वालों के प्रति जनता की बड़ी ही सद्भावनायें थीं, तीर्थयात्रा जिस ग्राम तथा जिस नगर में पहुँच जाती धर्म के अनुसार वह वहाँ का मान्य अतिथि समझा जाता था और सब लोग यथाशक्ति उसका सचमुच स्वागत सत्कार करते थे। जगह-जगह अन्न क्षेत्र खुले थे। यात्रियों को सुविधा देना महान् पुण्य समझा जाता था तभी तो प्रतिवर्ष भिन्न-भिन्न प्रान्तों में लाखों यात्री बिना रुपये पैसे के वर्षों यात्रा करते रहते थे। छोटे-छोटे राज्य और तीर्थों के राज्य, यात्रियों को भोजन आदि की सुविधायें पहुँचाते थे। जो चारों धामों की यात्रा कर आते थे समाज में उनका अत्यधिक सम्मान होता था और वे बड़े गर्व से कहा करते थे—"हमने चारों धामों की यात्रा की है।" तब भी तीनों धाम सुलभ समझे जाते थे। बद्रीनाथ सबसे कठिन और सबसे अन्तिम धाम माना जाता था, जो लोग बद्रीनाथ जाते वे अपने जीवन की आशा छोड़कर जाते थे। एक कहावत प्रचलित थी—

जो जाय बद्री, वह न होय उद्री।
जो होय उद्री तो फिर न हो दरिद्री॥

अर्थात् हाल तो बद्रीनाथ जाकर कोई लौटता नहीं। यदि भाग्यवश कोई लौट भी आया तो फिर वह दरिद्र नहीं होता।

उन दिनों बद्रीनाथ यात्रा एक महान् साहस और धैर्य का काम समझा जाता था। उन दिनों बद्रीनाथ यात्रा करना बहुत बड़ी बात समझी जाती थी। यात्रा का आरम्भ बड़ा ही करुणा-

जनक होता था। जब कोई बद्रीनाथ जाने की इच्छा करता तो आस-पास चारों ओर हल्ला हो जाता, उसके सम्बन्धी, इष्ट-मित्र पुरजन परिवार सब इकट्ठे होते, उसके साथ भोजन करते। बड़े गाजे बाजे के साथ उसे गाँव के बाहर पहुँचाते। सब मिलकर उसे मार्ग व्यय के लिये भेंट देते। आँखों में आँसू भरकर गले से लगाकर सब उससे मिलते, उसके सगे सम्बन्धी रोते-रोते उसके पीछे चलते, स्त्रियाँ आँसू बहातीं, बच्चे पैर छूते और उन्हें गाँव के बाहर तक पहुँचा आते। वह भी सबसे अन्तिम विदा लेकर जीवन की आशा छोड़कर प्राणों की बाजी लगाकर सबसे अन्तिम धाम बद्रीनाथ की ओर प्रस्थान करते। भाग्यवशात् कोई फिर लौट आता तो उसका पुनर्जन्म समझा जाता था।

बिलकुल ऐसा तो नहीं, इसका आभास मैंने अपने बाल्यकाल में अपनी आँखों देखा है। उन दिनों हम पहाड़ की यात्रा को पहाड़ से भी ऊँचा समझते थे, किन्तु अब वे बातें केवल कहने को ही रह गई हैं। अब तो बद्रीनाथ सर्व-सुलभ हो गये हैं। अन्धे भी अकेले बिना किसी असुविधा के लाठी टेकते-टेकते बाबा बद्रीनाथ के चरणों में पहुँच जाते हैं। अब तो छोटे बच्चे से लेकर १०० वर्ष के बूढ़े तक के लिये भगवान् बद्रीविशाल का द्वार खुला है। यों मरने को तो सभी जगह मृत्यु है, किन्तु अब मृत्यु का वहाँ कोई डर नहीं। अब तो बाबा सुलभ, सरल और सर्वगम्य हो गये हैं। होना भी चाहिये, अब कलियुग है, हम कलियुगी प्राणी उतनी कठोरता कहाँ सहन कर सकते हैं। देवताओं का स्वरूप तो युगों के अनुरूप ही होता है। हम कलियुग के प्राणी विशेष दयनीय तथा अत्यधिक कृपा के पात्र हैं।

हाँ, तो बद्रीनाथ अन्तिम धाम है। इस सरलता के युग में भी बद्रीनाथ यात्रा सभी धामों से कठिन है। अब भी वहाँ उसी तरह से यात्रा करनी पड़ती है जैसे आज से कई सदियों के पूर्व की

जाती थी। अब भी खास बद्रीनाथ तक रेल, मोटर आदि नहीं पहुँच सकेंगे अतः पहिली तरह तो नहीं, किन्तु फिर भी बद्रीनाथ का यात्री अनुकूल की दृष्टि से देखा जाता है और बद्रीनाथ के सम्बन्ध में जानने की लालसा लोगों को बराबर लगी रहती है। भगवान् बद्रीविशाल का आकर्षण अब भी कम नहीं है। आज भी इस नास्तिकता के युग में अमीर, गरीब, शिक्षित नव-शिक्षित सभी उन सतयुग के देवता की ओर आकुलता के साथ दौड़े चले जाते हैं। अब भी बद्रीनाथ की कथा में एक अपूर्व आकर्षण है, अब भी इस यात्रा में गौरव है। अब भी लोगों को उस धाम की पवित्रता और महत्ता के प्रति आदर उत्सुकता है। तीनों धामों में रेल, मोटर आदि सभी तरह की सुविधायें हैं, किंतु सत्ययुग के बाबा बद्रीविशाल ने अभी रेल, मोटर साइकिल को देखा भी नहीं। हाँ, एक दो बार वायुयान ऊपर से अपना गन्दा धुआँ वहाँ जरूर छोड़ आया है। किन्तु न बाबा बद्रीविशाल ने उसकी ओर ऊपर आँख उठाकर देखा न उसका साहस उस पावन पुण्य भूमि को स्पर्श करने का हुआ। ऊपर ही मँडराकर लौट आया। उन्हीं हिमशैल निवासी उत्तराखण्ड के परमदेव के सम्बन्ध की चर्चा इस क्षुद्र पुस्तिका में की जायगी। उस भूवैकुण्ठ के प्रति प्राचीन इतिहास पुराण क्या कहते हैं, आधुनिक लोगों की क्या भावनायें हैं इन्हीं बातों पर संक्षेप में विचार होगा। पुराणों में इस सम्बन्ध में कैसी-कैसी अद्‌भुत मनोरंजक कहा-नियाँ हैं उसकी चासनी पाठकों को चखाई जायगी। पाठक धैर्य से इसे पढ़ें। ऊबें नहीं, 'धार्मिक चौंचले हैं, पुराण पन्थियों के गपोड़े हैं, पापों की गाथायें हैं' कहकर अवहेलना न करें। पढ़ें और विचारें इनमें क्या तत्व है, क्या रहस्य है, यही तो जीवन का सार है। इन लौकिक कहानियों में, इन लौकिक वैषयिक वार्ताओं में चित्त की वृत्तियाँ बिखरती हैं। पर अंगों का उपयोग

भगवत् सेवा के लिये होना चाहिये यही अंगों की सार्थकता है—

पादौ हरेः क्षेत्रपदानु सर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने।
कामं च दास्ये नतु काम काम्यया यथोत्तमश्लोकजनाश्रया
रतिः ॥१॥
(श्रीभाग० ९)

---

१ पैरों की सार्थकता यही है कि वे भगवान् के पुण्य क्षेत्रों की यात्रा करते रहें। सिर की सार्थकता भगवान् के चरणों की वन्दना में ही है। भगवान् के प्रसादी चन्दन चढ़ी हुई माला को भोग इच्छा से नहीं किन्तु इस भावना से ग्रहण करें कि यह भगवान् का नैवेद्य है, भगवान् की सेवा में लगा है, प्रसादी है, जिससे कि भगवत् आश्रितों को जो भगवत् प्रीति प्राप्ति होती है वह हमें भी हो। हमारा मन मयूर भी भगवत् प्रेम में मत्त होकर नृत्य करने लगे।"

४—विशालापुरी तथा बदरी विशाल

स्थूल सूक्ष्म शरीरं तु जीवस्य वसतिस्थलम् ।
तद् विनाशर्यत् ज्ञाना विशालातेन कथ्यते ॥१॥

(स्क० पु० वै० खं० व० म० १)

श्री बदरीपुरी को विशालापुरी भी कहते हैं। विशाला के पुराणों में कई अर्थ बताये हैं। स्कन्द पुराण में लिखा है कि वह तीर्थों का, देवताओं का, और ऋषियों का वास है इसलिये इसे विशाला कहा है।* किसी समय वहाँ देवता ऋषिगण प्रत्यक्ष निवास करते होंगे, किन्तु हम कलियुगी जीवों को तो उनके कहीं दर्शन नहीं हैं। किन्तु विशाला नगरी सचमुच ही विशाला है। देव दृष्टि से उस पुरी की छटा देखने पर बड़ी ही अद्भुत दिखाई देती है। नारायण पर्वत पर थोड़ा चढ़ने पर भी विशालापुरी की शोभा बड़ी ही सुन्दर दीखती है। टेढ़ी-मेढ़ी भगवती अलकनन्दा कलकल करती तेजी से वह रही है उसके किनारे पर ही विशालापुरी की वस्ती है। ऐसा प्रतीत होता है, मानों वह वस्ती नहीं है किन्तु किसी ने उठाकर विमानों की श्रेणियों के समान रख दिया है।

---

१ मनुष्य के शरीर स्थल में सूक्ष्म और स्थूल दो शरीर वास करते हैं। उन दोनों को जो ज्ञान से नाश करते हैं। इसीलिये इसे विशाला कहते हैं।

* तीर्थानां वसतिर्यत्र देवानांवसतिस्तथा।
ऋषीणांवसतिर्यत्र विशाला तेन कथ्यत ॥

(स्कन्द पु० बदरी० १)

वाराह पुराण के ४८ वें अध्याय में कल्कि द्वादशी के व्रत के सङ्ग में राजा विशाल की कथा है और पुराणों में भी है। उनमें विशाल नाम का कारण दूसरा ही बताया है। उस सम्बन्ध में एक कथा है।

सूर्य वंश में कोई विशाल नाम के राजा हो गये हैं। उनके शत्रुओं ने उनका राज्य पाट छीन लिया। युद्ध में पराजित होने पर तथा राज्य पाट के छिन जाने पर राजा बड़े दुखी हुए। दुःख के कारण गन्धमादन पर्वत की गुहा में बदरीपुरी में तपस्या करने लगे। उनकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर नर-नारायण उनके सामने प्रकट हुए। भगवान् ने प्रकट होकर कहा—"राजन्! हम तुम्हारी तपस्या से सन्तुष्ट हैं तुम जो चाहो वरदान माँगो।"

राजा ने कहा—"भगवन्! मैं जानना चाहता हूँ कि आप दोनों वर देने वाले देव श्रेष्ठ कौन हैं।"

तब नर ने कहा—"जिनकी तुम तपस्या कर रहे हो, जिनको प्रसन्न करना चाहते हो वही हम हैं।"

राजा ने कहा—"मैं तो विष्णु भगवान् की आराधना कर रहा हूँ।"

नर ने कहा—"हम ही विष्णु हैं, पृथक्-पृथक् युगों में हमारे भिन्न-भिन्न अवतार हैं। यह अवतार हमारी तपस्या की पद्धति को प्रकट करने के ही निमित्त है।"

राजा ने भगवान् को प्रणाम किया, उनकी पूजा की और विनीत भाव से कहा—"भगवन्! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरा गया हुआ राज्य फिर से मिल जाय, जिससे मैं विधिवत यज्ञों द्वारा आपकी पूजा कर सकूँ और राज्य सुख भोगूँ।"

भगवान् ने कहा—"राजन्! तुम भूल कर रहे हो। यहाँ आकर तो फिर लौटना नहीं होता। राज्य की इच्छा को छोड़ो और यहीं तपस्या करो।"

राजा ने आग्रह किया—"नहीं भगवन्! मेरी इच्छा अभी राज्य करने की ही है। मुझे ऐसा ही वरदान दीजिये।"

तब भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है राज्य तो तुम्हारा मिल ही जायगा किन्तु हमारी यह पुरी तुम्हारे नाम से विख्यात होगी और हमारे नाम के साथ तुम्हारा नाम भी सदा जुड़ा रहेगा। जो हमारे नाम के साथ तुम्हारा नाम लेंगे उनको अक्षय पुण्य होगा।" तभी से इस पुरी का नाम विशाला पड़ा। बद्रीनाथ के यात्री इसीलिये जब जयकारा बोलते हैं या परस्पर में एक दूसरे से मिलकर नमस्कार प्रणाम करते हैं तो बार-बार उच्च स्वर से यही उच्चारण करते हैं "बोल बदरीविशाल लाल की जय।"

स्कन्द पुराण में विशालापुरी के चारों युगों के चार नाम बताये हैं सतयुग में "मुक्तिप्रदा" त्रेता में "योगसिद्धिदा" द्वापर में "विशाला" और कलियुग में "बदरिकाश्रम"

कृते मुक्ति प्रदा प्रोक्ता त्रेतायां योगसिद्धिदा।
विशालाद्वापरे प्रोक्ता कलौ बदरिकाश्रमः॥

(स्क० पु० ब०)

—

५—श्री बद्रीनाथ का विग्रह

जन्मान्तरार्जित महादुरितान्तरायं,

लीलावतार रसिकं सुकृतोपलभ्यम् ।

ध्यायन्नहो धरणि मण्डन पाद पद्मं,

त्वामागतोऽस्मि शरणं बदरीवनेऽस्मिम् ॥

श्री बद्रीनाथ भगवान् का विग्रह एक सालिग्राम शिला के द्वारा प्रकट हुआ है। इस विग्रह की कब स्थापना हुई और कब से यह इस प्रकार मन्दिर बनाकर पूजित हुई इसके समय का कोई ठीक-ठीक निश्चय नहीं होता। हमारे पास पुराणों के सिवाय कोई साधन नहीं। हमारी निधि, संस्कृति का इतिहास, सदाचार की कुञ्जी, धर्म का सर्वस्व जो भी कुछ है पुराणों में है। हमारे पुराण इन सन् सम्बतों के संम्बन्ध में सदा उदासीन रहे हैं। वे काल को नित्य मानते हैं और यह अनादि अखण्ड है, घटनाएँ सदा वही होती हैं। रथ के चक्र के समान बार-बार फिर कर वही पहिए के हिस्से आते हैं, कोई कभी ऊपर हो जाता है, कभी कोई नीचे। कहीं पुराणों में कथा आती है कि जब कर्ण की भगवान् ने अर्जुन के कहने पर दान-शीलता की परीक्षा ली और रण में मृतक अवस्था में पड़े रहने पर भी उसने पत्थर से अपने दाँत तोड़कर उनमें का सुवर्ण ब्राह्मण वेषधारी श्रीकृष्ण अर्जुन को दिया। तब भगवान् ने उनसे वरदान माँगने को कहा—उसने यही वरदान माँगा—"प्रभो ! मेरे मृतक शरीर को आप ऐसी जगह जलावें जहाँ आज तक कोई मुर्दा न जला हो।" भगवान् ने ऐसा ही वरदान दिया। अब वे उस जगह की खोज में चले। जहाँ

जाते वहीं पृथ्वी कहती है—"इस जगह इतनी बार कर्ण जला है।" सम्पूर्ण पृथ्वी पर घूम आये तिल भर, राई भर भी ऐसी जगह न मिली जहाँ कोई न जला हो। तब भगवान् ने उसे अपनी हथेली पर जलाया।" भगवान् की हथेली से ही तो संसार उत्पन्न और नष्ट होता है। कहने का प्रयोजन इतना ही है कि कालचक्र सदा चलता रहता है इसमें कौन आगे कौन पीछे, इस चक्कर में पड़ना व्यर्थ है। इसीलिए पुराणों का उद्देश्य चरित्रों का गान है। सन् सम्वत् का वे बखेड़ा नहीं लगाते। चरित्रों में भी उनका सम्बन्ध ऐतिहासिक व्यक्तियों का गुणगान करना नहीं है। उनके चरित्रों से हमें क्या शिक्षा मिलती है, बस यही उनका मुख्य उद्देश्य है। समस्त भागवत पुराण सुनाने के अनन्तर भगवान् शुकदेव ने राजा परीक्षित से स्पष्ट कह दिया—

कथा इमास्ते कथिता महीयसां
विताय लोकेषु यशः परेयुषाम्।
विज्ञानवैराग्य विवक्षया विभो!
वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम्॥*
(भाग० १२ स्क० ३ अ० १४ श्लोक)

'हे राजन्! ये जो इतने मरणधर्मा बड़े-बड़े प्रतापशाली राजा हो गये हैं, जो लोक में अपनी कीर्ति स्थापित करके इस शरीर को त्याग कर चले गये हैं, उन कीर्तिशाली, बलवान् और धर्मात्मा राजाओं की जो मैंने अनेकों कथाएँ कहीं हैं, वे केवल ज्ञान वैराग्य का वर्णन करने की इच्छा से तुम्हें सुनाई हैं। तुम उनके बाप-दादों के चक्कर में न पड़कर केवल उनसे उपदेश भर ही ग्रहण करो, क्योंकि यह सब वाणी का विलास मात्र है। इनमें परमार्थ कुछ भी नहीं है।

मतलब यही है कि हमारे यहाँ तो वही काम श्रेष्ठ है वही

कथा वही अन्वेषण उत्तम है, जिसके द्वारा भगवान् में प्रीति हो। समस्त शास्त्रों का, समस्त कर्मों का एकमात्र उद्देश्य भगवान् की प्राप्ति प्रभु प्रेम ही माना गया है। जो कार्य, जो विद्या हमें भगवान् से हटाकर जगत् के झंझटों में फँसावे वह कार्य नहीं अकार्य है। वह विद्या नहीं अविद्या है। हमारे यहाँ तो सभी अनादि है। सब कुछ उन्हीं अनादि प्रभु की क्रीड़ा है। भगवान् अनादि हैं, उनके नाम, रूप, लीला और धाम भी अनादि हैं। इस हिसाब से बद्रीनाथ का नाम अनादि है। नर-नारायण की लीला भी अनादि है। यह जो भगवान् का विग्रह है जिसकी आज हम लोग बड़ी श्रद्धा से पूजा करते हैं यह भी अनादि है और बद्री धाम भी अनादि है। फिर भी पूजा—पद्धति और आचार—व्यवहारों में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। उन परिवर्तनों का ही वर्णन पुराणों में है। उसमें कोई नवीनता नहीं, युग-युग में इसी तरह की भगवान् की लीलाएँ सदा से चलती रही हैं, सदा चलती रहेंगी। श्रीबद्रीनाथ के सम्बन्ध में प्रायः सभी पुराणों में थोड़ा बहुत विवरण मिलता है। किसी में केवल अलकनन्दा का ही वर्णन है किसी में विस्तार से वहाँ के मुख्य-मुख्य तीर्थों का भी माहात्म्य है।

पुराणों के अनुसार पहिले बद्रीवन में भगवान् की मूर्ति नहीं थी। प्रत्यक्ष भगवान् अपने स्वरूप से वहाँ रहकर तपस्या करते थे। उन्हें तपस्या में निरत देखकर नारद जी ने उनसे पूछा, भगवन्! आप तो त्रिलोकी के नाथ जगत्पति ईश्वर हैं, आप किसका ध्यान करते हैं। भगवान् ने हँसकर कहा—"नारद! इस जगत् को उत्पन्न करने वाली प्रकृति के कारण भूत हम ही हैं। आत्मा ही पर तत्त्व है। हम उस आत्मस्वरूप अपने आपका ही ध्यान करते हैं। सब लोग भजन-भोजन में लगे रहें उनकी शिक्षा के लिये ही हम तप करते हैं।" यह सुनकर नारदजी प्रसन्न हुए और

वहीं रहकर नारदजी भगवान् की पूजा अर्चा करने लगे। इस क्षेत्र के प्रधान अर्चक-पुजारी श्रीनारदजी ही हैं, इसलिये इस क्षेत्र का नाम नारदीय क्षेत्र भी है। श्रीमद्भागवत में जहाँ पञ्चम स्कन्ध में सप्त द्वीप और नव वर्षों का वर्णन है। वहाँ प्रत्येक द्वीपों में भगवान् को पृथक-पृथक् उपास्य मूर्तियाँ बतायी हैं और उन द्वीपों में पृथक्-पृथक् प्रधान अर्चक पृथक् मन्त्रों से अपने उपास्य देव की पूजा करते हैं जैसे हरिवर्ष में नृसिंह उपास्य हैं और प्रह्लादजी उस वर्ष के प्रधान अर्चक हैं। रम्यकखण्ड में मत्स्य भगवान् उपास्य हैं मनु उपासक हैं। हिरण्मयखण्ड में कूर्म भगवान् उपास्य अर्यमा प्रधान उपासक हैं। किं पुरुष खण्ड में श्री रामचन्द्र भगवान् उपास्य हैं और हनुमानजी प्रधान अर्चक हैं। इसी प्रकार इस भारत वर्ष में भगवान् नर-नारायण उपास्य और नारदजी उनके प्रधान उपासक या अर्चक हैं। वे भारतीय प्रजा के साथ नर-नारायण रूप भगवान् को पाञ्चरात्र विधि से उपासना करते हैं। * पाञ्चरात्र पूजा पद्धति नारद जी को कैसे प्राप्त हुई इसका विस्तार से वर्णन नारद पुराण, वराह पुराण, विष्णु धर्मोत्तर-पुराण तथा अन्य पुराणों में है। +

---

* भरतेऽपि वर्षे भगवान् नारायणाख्य आकल्पान्तमुपच्चितधर्म ज्ञानवैराग्यैश्वर्योपशमोपरमात्मोपलंभतनम: प्रहास्यात्मवतामनुकम्पया तपोऽव्यक्तगतिश्चरति। तं भगवान् नारदो वर्णाश्रमवतीभिर्भारतीभिः प्रजाभिर्भगवत् प्रोक्ताभ्यां सांख्ययोगाभ्यां भगवदनुभावोपवर्णनं सावर्णे रुपदेक्ष्यमाण: परमभक्तिभावेनोपसरति इदं चाभिगृह्णाति।

(श्री भाग० ५ स्क० १९ अ० ९, १० श्लो०)

+ आत्मा हि नः सर्वज्ञे यस्ततस्तं पूजाय महे

तेनेषां प्रथिता ब्रह्मन् मर्यादालोकभाविनी। देवं विष्णुं च कर्तव्य मिति तस्यानुशासनम्।

पाञ्चरात्र प्राप्ति की कथा

यदिदं पञ्चरात्र मे शास्त्रं परमदुर्लभम् ।
तद्भवान् वेत्स्यते सर्वं मत् प्रसादान्न संशयः ॥*

(वराह पु० ६६ अ० १८ श्लो०)

इस सम्बन्ध में एक बड़ी ही रोचक कथा है। एक बार नारद जी बद्रिकाश्रम में गये। रहते तो वहीं, कहीं घूमने फिरने चले जाते। सम्भव है यहाँ पर इन्हें दक्ष जी के शाप का भी डर नहीं है। ६ महीने जाड़ों में तो इन्हें स्वयं ही पूजा करनी पड़ती है। इसलिये रहना जरूरी है। हाँ, ६ महीने मनुष्यों की पूजा होती है। उस समय घूम-घाम आते होंगे। या एक रूप से यहाँ डटे रहते और दूसरे रूप से संसार का सैर सपाटा करते रहते होंगे। कुछ भी हो एक दिन जब इन्हें बद्रिकाश्रम में भगवान् के दर्शन नहीं हुए तब वे बड़ी चिन्ता में पड़े। इधर-उधर भगवान् को खोजने लगे। खोजते-खोजते ये सुमेरु पर्वत तक निकल गये किन्तु भगवान् के दर्शन वहाँ भी न हुए। बड़े चक्कर में फँसे। भगवान् की माया ही तो है। नारद को बड़े जोर की प्यास लगी। इतनी प्यास लगी कि प्राण व्याकुल होने लगे। वहाँ उन्हें दूर से एक कुटी दिखाई दी। डूबते को तिनके का सहारा बहुत होता है। नारदजी को कुछ आशा हुई। यदि कोई आदमी है तो जल भी होगा। सचमुच वहाँ जाने पर एक तपस्वी दिखाई दिया। नारदजी ने बड़ी आकुलता से कहा—"बाबा थोड़ा जल पिला दो तो प्राण बचें। यह सुनते ही उन तपस्वीजी ने पास में ही प्रहार किया। वहाँ की जमीन फट गई और एक बहुत बड़े चौड़े बर्तन को पकड़े हुए सहस्रों अप्सरायें निकलीं। निकलते ही

---

* भगवान् कहते हैं—"हे नारद ! तुम इस दुर्लभ पञ्चरात्र शास्त्र को मेरी कृपा से यथावत् जान लोगे इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं।"

उन अप्सराओं ने कहा—"ब्रह्मन् ! आप पहिले स्नान कीजिए तब जलपान कीजिए।" नारदजी शायद उस समय कमण्डलु भी भूल आये थे। वे चिन्ता में पड़े स्नान कैसे करूँ । तब उन अप्सराओं ने कहा—"ब्रह्मन् ! आप इसी पात्र में गोता लगाइये।"

नारदजी सोचने लगे—"यह पात्र चौड़ा तो बहुत है, किन्तु इस परात में मैं स्नान कैसे करूँगा। पैर भी न भीजेंगे।" उनकी चिन्ता को समझकर वे अप्सरायें बोलीं—"हे देवर्षे ! आप चिंता न करें आप इसमें प्रवेश तो कीजिए।" अब नारदजी क्या करते अपने दंड कमंडलु रखकर उसमें उतरे। मालूम होता था वह पात्र क्या है स्वर्ग का विल था। नारदजी ने गोता लगाया कि उसका अन्त ही नहीं। नारदजी बिना प्रयास के उसमें घुसे ही जा रहे थे। बड़ी देर के पश्चात् वे एक बड़े ही सुन्दर नगर रमणीक देश में पहुँच गये। वहाँ की शोभा वर्णनातीत थी। दिव्य सुवर्णों के महल बने हैं। हीरा पन्नाओं की दिवालें वापी, कूप, तड़ाग वन उपवनों से वह देश परम रमणीय और मनोहर है पूछने पर पता चला वह श्वेत द्वीप है (इंग्लैंड नहीं, क्योंकि वहाँ के सब लोग चतुर्भुज थे) श्वेत द्वीप में पहुँचकर नारदजी ने देखा वहाँ के सब लोग चतुर्भुज हैं। सबके गले में वनमाला है सभी शङ्ख चक्र गदा पद्मधारी हैं सभी के शरीरों से दिव्य गन्ध आ रही है नारदजी जिसे ही देखते उसे ही विष्णु समझकर प्रणाम करते। वे कह देते—"विष्णु भगवान् का भवन तो आगे है।" नारदजी आश्चर्य चकित थे यह अजीब देश है। चलते-चलते वे श्रीहरि के श्वेत द्वीप के वैकुण्ठ धाम* में पहुँचे। वहाँ उन्होंने शेषशायी भगवान् श्रीमन्नारायण के दर्शन किये। भगवान् के दर्शनों के अनन्तर नारदजी ने उनकी पूजा स्तुति की। उनकी

---

*वैष्णवों के मतानुसार ८ वैकुण्ठ हैं उनमें श्री बद्रीनाथ भी एक भू वैकुण्ठ माने गये हैं।

पूजा स्तुति और तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् ने उनसे वरदान माँगने को कहा। नारदजी ने कहा—"हे प्रभो ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, जिस पूजा पद्धति से आपकी प्राप्ति हो उसे आप मुझसे कहें।" भगवान् ने उन्हें पूजापद्धति बताई और कहा—वेद शास्त्रों के नियमों से पञ्चरात्र विधि से जो मेरी पूजा करते हैं उन्हें मेरी प्राप्ति होती है। यह पूजा द्विजों के लिए ही है शूद्र आदि द्विजेतर जातियों के लिए तो मेरे क्षेत्रों की तीर्थयात्रा और मेरे नामों के जप कीर्तन ही श्रेष्ठ साधन हैं।"*

इस प्रकार पंचरात्र पूजा पद्धति का उद्देश्य ग्रहण करके नारद जी फिर उछले। देखते हैं तो उनके दण्ड कमण्डलु वहीं रखे हैं। और वे अप्सरायें वहीं खड़ी हैं। वे बाबा जी चतुर्भुज रूपधारी साक्षात् श्रीमन्नारायण ही हैं। उनकी पूजा करके नारद जी ने इसका रहस्य पूछा तो भगवान् ने कहा—श्वेत द्वीप में तुमने जिस रूप के दर्शन किये हैं वह मेरा ही रूप है, मुझमें और उसमें कोई अन्तर नहीं। मैंने तुम्हें पूजा पद्धति का उपदेश ग्रहण करने ही भेजा था। तुम इसी पूजा पद्धति से मेरी अर्चा करो। तब नारद जी उसी रूप को उसी पद्धति से सेवा पूजा करने लगे।

नारद जी पंचरात्रि वहाँ रहे इसलिए इसका नाम पांचरात्रि पड़ा। किन्तु वराह पुराण में लिखा है दिव्य वर्षों से हजारों वर्ष ध्यान करने पर तब भगवान् प्रकट हुए। तपस्या करते रहे होंगे।

---

* अलाभे वेदशास्त्राणां पञ्चारात्रोदितेनहि।
मार्गेणमां यजन्तेये ते मां प्राप्स्यन्तिमानवा,
ब्राह्मिणक्षत्रिय विशांपञ्चरात्रं विधीयते
सूद्रादीनांतुमे क्षेत्र पदवीगमतंद्विज !
मन्नाग विहितंतेषां नान्यत पूजादिकं चरेत्

(वराह० पु० ६६ अ० ११, १२, १३ श्लो०)

भगवान् ने उपदेश ५ रात्रि में दिया होगा। पंचरात्र की हजारों शाखा हैं।* अब तो सब लुप्तप्राय हो गईं। १०-२० शाखायें कहीं-कहीं मिलती हैं।

---

* पञ्चरात्रं सहस्राणां यदि कश्चिद् ग्रहीष्यति।

(वाराह० पु० ६६, १४)

श्री भगवान् का वर्तमान विग्रह

पुराकृत युगस्यादौ सर्वभूत हिताय च।
मूर्तिमान्भगवांस्तत्रतपोयोग समाश्रिताः ॥
त्रेतायुगेहिऋषिगणै योगाभ्यासैक तत्परः।
द्वापरे समनुप्राप्ते ज्ञान निष्ठोहि दुर्लभः ॥*

(स्कन्ध० वै० बदरी० ३ अ० ४, ५ श्लो०)

हम पहिले ही कह चुके हैं, कि श्री भगवान् पहिले अपने साक्षात् रूप से बदरिकाश्रम में निवास करते थे। जब आप श्रीकृष्ण और अर्जुन का अवतार ग्रहण करने जाने लगे तब ऋषियों ने कहा—"प्रभो ! आप ही तो हमारे अवलम्ब हैं।" आप इस क्षेत्र को त्याग कर न जायँ। एक रूप से आप यहाँ निवास करें और एक रूप से आप अवतार धारण करें।"

भगवान् बोले—"देवता तथा ऋषियो ! मेरी बात तो सुनो, अब थोड़े दिनों में कलियुग आवेगा। कलियुग के प्राणी बड़े पापी धर्म कर्म हीन, कलह प्रिय और बड़े दम्भी होंगे। उनके सामने मैं साक्षात् रूप से नहीं रह सकता। किन्तु एक काम करो, यहाँ नारद शिला के नीचे अलकनन्दा में मेरी एक दिव्य मूर्ति है उसे निकालकर तुम लोग स्थापित करो। उसे जो कोई दर्शन करेगा उसे साक्षात् दर्शन का फल प्राप्त होगा।"

---

* पहिले सत्ययुग में भगवान् मूर्तिमान् होकर तपस्या करते थे। त्रेता में योगाभ्यासी ऋषियों से दर्शन होते थे। द्वापर आने पर ज्ञाननिष्ठ मुनियों को भी भगवान् के दर्शन दुर्लभ हो गये अर्थात उन्हें भी भगवान् दिखाई नहीं दिये।

ब्रह्मादि देवताओं ने नारदकुण्ड से वह मूर्ति निकाली। मूर्ति शालिग्राम शिला में बनी हुई ध्यानमग्न चतुर्भुज बड़ी ही भव्य थी। देवताओं ने विश्वकर्मा से मन्दिर बनवाया और नारदजी उसके प्रधान अर्चक नियुक्त हुए। ६ महीने तो मनुष्य पूजा करने लगे, जब बरफ पड़ने से मनुष्यों को अगम्य हो जाता है तो ६ महीने देवता पूजा करते हैं। मनुष्य कपाट बन्द करके चले आते हैं।❀

एक पुराण में लिखा है कि ब्रह्मादिक देवताओं ने पहले ही मन्दिर बनाया फिर उस मन्दिर का जीर्णोद्धार राजा पुरुरवा ने किया। यह सम्भव है साक्षात् मूर्तिमान नारायण के मन्दिर के लिये हो। इस मूर्ति की अर्चा तो द्वापर के अन्त में ही हुई।

स्कन्द पुराण में लिखा है जब द्वापर में देवताओं को भगवान् के बदरीवन में दर्शन न हुये तब वे बड़े घबड़ाये और मिलकर ब्रह्माजी के पास गये। ब्रह्माजी सबको साथ लेकर क्षीर सागर पर पहुँचे। सबने मिलकर भगवान् की स्तुति की। तब भगवान् ने दर्शन दिये। भगवान् के दर्शन सब देवताओं को नहीं हुए। केवल ब्रह्माजी को हुए। ब्रह्माजी से जो भगवान् ने कहा वह उन्होंने सबको कह सुनाया। ब्रह्माजी ने कहा था—"देव-

---

❀ यदि वो दर्शने श्रद्धा मण्डपस्य सुरेश्वरः।
गृहीध्वं माकर्कीं मूर्तिशैलीं नारद कुण्डगान्॥
ततस्तां गिरि माकर्ण्यं ब्रह्माद्या हृष्टमानसाः।
निष्कास्य शैलीतां दिव्यां मूर्ति नारद कुण्डगाम्॥
स्थापयामासु रभ्यर्च्यं स्वंस्व धामययुस्ततः।
वैशाखे मास ते देवा गच्छन्ति निजमन्दिरम्॥
कार्तिके तु समागत्य पुनरर्चां चरन्ति च।
ते वैसाखमारभ्य मानवा हिमसंक्षपात्॥

ताओ ! भगवान् मनुष्यों की कुबुद्धि के कारण अन्तर्धान हो गये हैं" इस बात को सुनकर सब देवता स्वर्ग को चले गये ।"[१]

इसके अनन्तर स्वयं शङ्कर जी अपने पुत्र स्कन्द जी से कहते हैं कि हे पुत्र ! (कलियुग आने पर) मैं नारदकुण्ड से भगवान् की मूर्ति को संन्यासी (श्री शङ्कराचार्य) के रूप से उठाकर स्थापित करूँगा। जिसके दर्शन मात्र से कैसे भी पाप क्यों न हों उनके पाप उसी प्रकार भाग जायेंगे जैसे सिंह को देखकर हाथियों के झुण्ड भाग जाते हैं।"❀

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि शङ्कराचार्य भगवान् ने इस मूर्ति को नारदकुण्ड से निकालकर स्थापित किया। क्योंकि भविष्य पुराण में स्पष्ट ही भगवान् शङ्कराचार्य को शङ्कर का अवतार बताया है। भविष्योत्तर पुराण में भी ऐसे ही वचन मिलते हैं, जिसमें श्री शङ्कराचार्य द्वारा बदरीनाथ की मूर्ति को स्थापित करने का उल्लेख है।

एक जगह ऐसा भी उल्लेख है कि ब्रह्मादि देवताओं ने इस

लभन्ते दर्शनं पुण्यं पापकर्म विवर्जिताः ।
षण्मासं देवतैः पूज्या षण्मासं मानवैस्तथा ॥
(वृ नारद-पु० ड० ख० ६७ अ० ३५ से ३९ श्लो०)

१ अन्तर्हितोऽसौ भगवान् दृष्ट्वा लोकान् कुमेधसः ।
श्रुत्वेत्थं वचनंतस्य सर्वेदेवा दिवं वसुः ॥
(स्क० वद० स० अ० ५ श्लो० २३)

❀ ततोऽहं यतिरूपेण तीर्थान्नारद संज्ञकात् ।
उद्धृत्य स्थापयिष्यामि हरिं लोकहितेच्छया ॥
यस्य दर्शनमात्रेण पातकानि महान्त्यपि ।
विलीयन्ते क्षणादेव सिंहदृष्ट्वा मृगाइव ॥
(स्क० बद० म० अ० ५ श्लो० २४-२५)

मूर्ति को नारद कुण्ड से निकालकर स्थापित किया। ६ महीने मनुष्य और ६ महीने देवता उसकी पूजा करने लगे। जब भगवान् ने असुरों को यज्ञ करते देखा तो उन्हें यज्ञादि कर्मों से हटाने के लिये बुद्ध भगवान् का अवतार धारण किया। विष्णु ही यज्ञ स्वरूप हैं इसलिये विष्णु की पूजा का खंडन हुआ। बौद्धों नें विष्णु की पूजा भी बन्द कर दी, किन्तु बदरी विशाल की मूर्ति को देखकर सबने कहा—"यह तो बुद्ध भगवान् की ही मूर्ति है। इसलिये उसे बुद्ध मूर्ति मानकर पूजा करने लगे। जब शङ्कराचार्य भगवान् ने बौद्धों को परास्त किया तो इधर के शक हूए बौद्ध धर्मावलम्बी तिब्बत की ओर भाग गये। भागते समय वे इस भगवान् की मूर्ति को अलकनन्दा के नारदकुण्ड में डाल गये। भगवान् शङ्कराचार्य ने आकर देखा कि मन्दिर में भगवान् की मूर्ति नहीं है, तो उन्होंने ध्यान से देखा। उन्हें मालूम पड़ गया और नारदकुण्ड से निकालकर फिर से उसी मन्दिर में स्थापित कर दिया। बौद्धों द्वारा अलकनन्दा में डालते समय मूर्ति का कुछ भाग खंडित हो गया था वह अभी तक खण्डित है।

मूर्ति के खंडित होने की कथा मैंने ऐसी भी सुनी है, कि पहिले यहाँ कोई यात्री नहीं आते थे। पुजारी बड़े कष्ट से सूखे चावल खाकर पूजा करते थे। एक साल पुजारी को कुछ भी आमदनी नहीं हुई, उसने क्रोध में आकर भगवान् के विग्रह को तप्त कुण्ड में डाल दिया और मन्दिर के कपाट बन्द करके चला गया। पाँडुकेश्वर में किसी के ऊपर घण्टा कर्ण का आवेश हुआ उसने बताया कि भगवान् का विग्रह तप्त कुण्ड में पड़ा है। उसी समय लोग दौड़े आये और फिर भगवान् को मन्दिर में स्थापित किया।

कुछ लोगों का ऐसा भी कहना है कि पहले श्रीबद्रीनाथ की मूर्ति तप्तकुण्ड के पास गरुड़ शिला के समीप भगवान् रामानुजाचार्य ने स्थापित की थी। पहिले रामानुजीय सम्प्रदाय वाले पूजा

करते थे। वर्तमान मन्दिर स्वामी वरदराजाचार्य ने गढ़वाल नरेश से कहकर १५·वीं शताब्दी में बनवाया था। इस पक्ष के भी कई प्रमाण मिलते हैं। पहले यहीं के श्री सम्प्रदाय के उपास्य ही श्रीमन्नारायण हैं। दूसरे इधर श्रीसम्प्रदाय के ही वैष्णव बहुत हैं। उनमें बहुत से रामानन्दी भी हैं और बहुत से रामानुजीय, दोनों ही श्रीसम्प्रदाय के हैं। अब वे गृहस्थ हो गये हैं और वैष्णव जाति एक जाति ही अलग बन गयी हैं। देवप्रयाग का जो श्री रघुनाथजी का मन्दिर है उसमें कोई प्राचीन शिला लेख बताते हैं उसमें लिखा है यह मन्दिर स्वामी वरदराजाचार्य की प्रेरणा से बना। किन्तु देवप्रयाग का मन्दिर श्री बद्रीनाथ के वर्तमान मन्दिर से बहुत प्राचीन मालूम पड़ता है। १५वीं शताब्दी की जो बद्रीनाथ मन्दिर के अधिकारी महन्तों की सूची मिलती है उसमें संन्यासी का उल्लेख कहीं नहीं है उसमें ऐसे ही नाम हैं बालकृष्ण स्वामी, हरिब्रह्म स्वामी, हरिस्करण स्वामी, वृन्दावन स्वामी, अनन्तनारायण स्वामी, भवानन्द स्वामी आदि। दक्षिण में ब्राह्मण मात्र के आगे स्वामी लगाकर बोलने की प्रथा है। रामानुजीय संप्रदाय में भी सभी आचार्य स्वामी कहाते हैं। यह नहीं यही सिद्ध होता है कि ये लोग स्वामी संन्यासी ही थे। लोगों का कहना है पहिले मन्दिर में शङ्खचक्र के चिन्ह भी थे जब से स्मार्तों के अधिकार में पूजा आई तब से लुप्त हो गये। अब भी श्रीबद्रीनाथ की पूजा में रामानुजकोर की बहुत-सी परिचर्या हैं। इत्यादि २, इन अब बातों में कुछ तथ्य नहीं है, हम तो पौराणिक हैं, पुराणों में जो प्रमाण मिलेंगे हम तो उन्हें ही मानेंगे। भगवान् रामानुजाचार्य शेषजी अथवा लक्ष्मणजी के अवतार माने जाते हैं। शङ्करावतार आद्यशङ्कराचार्य भगवान् शङ्कर हैं और पुराण स्पष्ट रूप से कहते हैं कि यति रूप में शङ्कर ने बद्रीनाथ की मूर्ति को स्थापित किया। इसलिये हमारे लिये यही प्रमाण

मान्य है यही बात गढ़वालके घर-घरमें मानी जाती हैं। गढ़वालके मन्दिर-मन्दिर में शङ्कराचार्य व्याप्त हैं। जिस किसी छोटे-से-छोटे मन्दिर में भी जाइये यही कहेंगे। इस मूर्ति को भगवान् शङ्कराचार्य ने स्थापित किया। बद्रीनाथ जी के विषय में तो यह बात निर्विवाद मानी जाती है। वहाँ आदि केदारनाथजी के मन्दिर के सामने ही श्री शङ्कराचार्य जी का बहुत प्राचीन मन्दिर है। अब भी मन्दिर में शङ्कराचार्य की गद्दी की भेंट अलग ली जाती है। मन्दिर में ही शङ्कराचार्य जी की गद्दी स्थापित है। इसलिये यही ठीक मालूम होता है कि इस मूर्ति की पुनः स्थापना तथा मन्दिर का जीर्णोद्धार भगवान् शङ्कराचार्य के समय में ही हुआ।

रही उपासना की बात सो नारायण तो सभी के उपासक हैं। दक्षिण में ब्राह्मण मात्र के आगे स्वामी जरूर लगाते हैं, किन्तु यह मद्रास की ही प्रथा है। कन्याकुमारी की तरफ केरल प्रान्त में नम्बूद्री ब्राह्मणों में वही स्वामी कहलावेगा जिसने संन्यास ले लिया हो। श्री स्वामी शङ्कराचार्य नम्बूद्री ब्राह्मण ही थे। सुनते हैं संन्यास लेते समय अपनी माता से आचार्य ने प्रतिज्ञा की थी, कि संन्यासी होने पर भी मैं तुम्हारा अन्तिम संस्कार करूँगा। माता का जब अन्त समय आया तो शङ्कर वहाँ पहुँच गये। माता की मृत्यु होने पर वे संस्कार करने लगे। इसे धर्म विरुद्ध कार्य समझकर सब जातिवाले इन्हें छोड़कर चले गये, दो शेष रह गये। तब शङ्कर ने अपने घर में ही माता का संस्कार किया और उन लोगों में सें किसी को बद्रीनाथ का अर्चक बनाया। नम्बूद्री ब्राह्मणों के मृतक अब भी स्मशान में नहीं जलाये जाते, घर पर ही जलाये जाते हैं। घर के एक कमरे में जिसे पितृ मंदिर कहना चाहिये वहीं गाड़ देते हैं और वहाँ उनका श्राद्ध-तर्पण पितृ-कर्म किये जाते हैं। अब तक उसी जाति का पुजारी आता है। इससे यह तो प्रत्यक्ष है कि पुनः प्रतिष्ठा तो श्रीशङ्कराचार्य जी के ही द्वारा हुई। ❀❀❀

भगवान् नर-नारायण

धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ठ मूर्त्यां
नारायणो नर ऋषिप्रवरः प्रशान्तः ।
नैष्कर्म्यलक्षणमुवाच चचार कर्म
योऽद्यापि चास्त ऋषिवर्यनिषेविताङ्घ्रिः ॥*

(भा० ११ स्क० ४ अ० ६श्लो०)

जो भारत का शिरोमुकुट है, जो समस्त पर्वतों का पति होने से गिरिराज कहलाता है उसी के एक उत्तुंग शिखर के प्रांगण में बदरीकाश्रम या बदरीवन है। इन चर्म चक्षुओं से न दीखने वाला वह एक उसी तरह बदरी का विशाल वृक्ष है, जिस प्रकार प्रयाग में अक्षयवट है। बदरी वृक्ष में लक्ष्मी का वास है इसीलिये लक्ष्मीपति को यह दिव्य वृक्ष अत्यन्त प्रिय है। उसकी सुखद शीतल छाया में भगवान् ऋषि मुनियों के साथ सदा तपस्या में निरत रहते हैं। बदरी वृक्ष के कारण ही बदरी क्षेत्र कहाता है और नर-नारायण का निवास स्थान होने से इसे नर-नारायण या नारायणाश्रम भी कहते हैं।

सृष्टि के आदि में भगवान् ब्रह्मा ने अपने मन से दस पुत्र उत्पन्न किये। ये संकल्प से ही अयोनिज उत्पन्न हुए थे, इसलिये ब्रह्मा के मानस पुत्र कहाये। उनके नाम मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और नारद हैं। इनके द्वारा ही आगे समस्त सृष्टि उत्पन्न हुई। इसके अतिरिक्त ब्रह्माजी के दायें स्तन से धर्मदेव उत्पन्न हुए और पृष्ठ भाग से अधर्म। अधर्म का भी वंश बढ़ा, उसकी स्त्री का नाम मृषा (झूठ) था,

उसके दम्भ और माया नाम के पुत्र हुए। उन दोनों से लोभ और निकृति (शठता) ये उत्पन्न हुए, फिर उन दोनों से क्रोध और हिंसा दो लड़की लड़के हुए। क्रोध और हिंसा के कलि और दुरुक्ति हुए। उनके भय और मृत्यु तथा मृत्यु से यातना (दुख) और निरय नरक ये हुए। ये सब अधर्म की सन्तति हैं। "दुर्जनं प्रथमं बन्दे सज्जनं तदनन्तरम्" इस न्याय से अधर्म की वंशावली के बाद अब धर्म की सन्तति सुनिये।

ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष प्रजापति का विवाह मनु पुत्री प्रसूती से हुआ। प्रसूती में दक्ष प्रजापति ने सोलह कन्यायें उत्पन्न कीं। उनमें से तेरह का विवाह धर्म के साथ किया। एक कन्या अग्नि को दी, एक पितृगण को, एक भगवान् शिव को। जिनका विवाह धर्म के साथ हुआ उनके नाम ये हैं—श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री और मूर्ति।

धर्म की ये सब पत्नियाँ पुत्रवती हुईं। सबने एक-एक पुत्र रत्न उत्पन्न किया। जैसे श्रद्धा ने शुभ को उत्पन्न किया, मैत्री ने प्रसाद को, दया ने अभय को, शान्ति ने सुख को, तुष्टि ने मोद को, पुष्टि ने अहङ्कार को, क्रिया ने योग को, उन्नति ने दर्प को, बुद्धि ने अर्थ को, मेधा ने स्मृति को, तितिक्षा ने क्षेम को और ह्री (लज्जा) ने प्रश्रय (विनय) को और सबसे छोटी मूर्ति देवी ने भगवान् नर-नारायण को उत्पन्न किया। क्योंकि मूर्ति में ही भगवान् की उत्पत्ति हो सकती है। वह मूर्ति भी धर्म की ही पत्नी है।*

---

* दक्ष प्रजापति की कन्या और धर्म की पत्नी भगवती मूर्तिके गर्भ से शान्तात्मा ऋषिदेव भगवान् नर और नारायण रूप में अवतरित हुए, जिन्होंने आत्मतत्व लक्षण वाला कर्म त्याग रूपी कर्म का उपदेश किया। उन्होंने स्वयं भी उसी का आचरण करके आदर्श स्थापित किया। वे आजकल भी बदरीकाश्रम में विराजमान हैं और ऋषि मुनियों द्वारा उनके चरणों की सेवा होती है। अर्थात् ऋषियों में नारदादि मुनि उनकी पूजा करते हैं।

एक बात और है, धर्म की पत्नियों में न सौतियाडाह है न उनकी सन्तानों में आपस में लड़ाई। अधर्म की सन्तान आपस में लड़ती भिड़ती रहती हैं, किन्तु धर्म के पुत्र नर-नारायण अपने अन्य भाइयों से उतना ही प्यार करते हैं जितना कि अपने सगे भाई नर से करते हैं।

नर-नारायण ने अपनी माता मूर्ति की बहुत अधिक, बड़ी श्रद्धा से सेवा की। अपने पुत्रों की सेवा से सन्तुष्ट होकर माता ने पुत्रों से वर माँगने को कहा। पुत्रों ने कहा—"माँ, यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो वरदान दीजिये कि हमारी रुचि सदा तप में रहे और घरबार छोड़कर हम सदा तप में ही निरत रहें।" माता को यह अच्छा कैसे लगता कि मेरे प्राणों से भी प्यारे पुत्र घर-बार छोड़कर सदा के लिये वनवासी बन जायँ, किन्तु वे वचन हार चुकी थीं। अतः उन्होंने अपने आँखों के तारे आज्ञाकारी पुत्रों को तप करने की आज्ञा दे दी। दोनों भाई बदरिकाश्रम में जाकर तपस्या में निरत हो गये।

बदरिकाश्रम में जाकर दोनों भाई घोर तपस्या करने लगे। इनको तपस्या की क्या जरूरत थी, किन्तु लोक शिक्षा के लिये अपने आप ही अपना भजन करने लगे। इनकी तपस्या के सम्बन्ध में पुराणों में भिन्न-भिन्न प्रकार की कथायें हैं।

श्रीमद्भागवत में कई स्थानों पर भगवान् नर-नारायण का उल्लेख है। देवी भागवत के चतुर्थ स्कन्द में तो नर-नारायण की बड़ी लम्बी कथा है। वहाँ पर हरि, कृष्ण, नर और नारायण ये चार भाई बताये हैं।* हरि और कृष्ण तो पहिले ही घर छोड़-

---

* हरिं कृष्णं नरं चैव तथा नारायणं नृप।
योगाभ्यास रतो नित्यं हरिः कृष्णो बभूवह॥
नर नारायणौ चैव चरेतुस्तप उत्तमम्।
प्रालेयाद्रिं समागत्य तीर्थे बदरिकाश्रमे॥
(देवी भाग० ४ स्क० ५ अ० १२, १३ श्लो०)

कर तपस्या करने चले गये थे। नर-नारायण रह गये थे। उन्होंने भी माता से तपस्या करने का वरदान प्राप्त किया और ये तपस्या करने के लिये नैमिषारण्य क्षेत्र को चले गये।

(१)

नैमिषारण्य में प्रह्लाद जी से युद्ध

नैमिषारण्य परम पुनीत क्षेत्र है। बहुत से ऋषि उस पावन तीर्थ में रहकर तपश्चर्या करते हैं। नर-नारायण ने भी उस अरण्य को पसन्द किया और वे सरस्वती के तट पर एक सघन वृक्ष को देखकर तपस्या करने लगे। ये दोनों भगवान् के अंशावतार हैं, इसलिये स्वाभाविक ही धनुष-बाण धारण करते हैं। वहाँ जाकर इन्होंने अपने शस्त्रास्त्र तो एक ओर रख दिये और अपनी लम्बी-लम्बी जटाओं को बाँधकर घोर तप में निरत हो गये।

एक दिन महर्षि च्यवन नर्मदा नदी में स्नान कर रहे थे। पाताल लोक का कोई नाग उन्हें डसने के लिये पाताल में पकड़ ले गया। सर्वज्ञ ऋषि ने इसे अपना कोई पूर्वजन्म का पाप समझा। पाप को हटाने का एक ही उपाय है "यः स्मरेतु पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यंतरः शुचिः।" पुण्डरीकाक्ष के स्मरण से जन्म जन्मांतर के पाप नष्ट हो जाते हैं और वह भीतर बाहर से शुद्ध हो जाता है, अतः ऋषि बार-बार सच्चे हृदय से प्रेमपूर्वक भगवान् का स्मरण करने लगे। भगवत् स्मरण के माहात्म्य से वह नाग उन्हें पाताल में ही छोड़कर चला गया और उनके शरीर में नाग का विष भी ज्यादा नहीं हुआ।

महर्षि च्यवन ने यहाँ नीचे के लोकों में बड़े-बड़े महल, बाग, बगीचा तथा आमोद-प्रमोद के साज सामान देखे। आनन्द में मग्न होकर महर्षि इधर-उधर घूमने लगे। घूमते-घूमते वे एक दिन सुतल लोक में चले गये जहाँ प्रह्लादजी अपने पौत्र बलि के

सहित सानन्द निवास करते हैं। प्रह्लादजी ने ऋषि को इस तरह बिना कारण घूमते देखकर मन में सोचा—ये ऋषि अकारण इधर-उधर क्यों घूम रहे हैं। कहीं ये हमारे शत्रु इन्द्र के गुप्तचर तो नहीं हैं, जो हमारा भेद लेने आये हों। इनसे पूछना चाहिये इनकी यात्रा का उद्देश्य क्या है। भक्ताग्रगण्य महात्मा प्रह्लाद ने महर्षि को प्रणाम करके उनसे पूछा—"ब्रह्मन्! आप यहाँ किसी उद्देश्य से पधारे हैं? आप किसी अपने काम से आये हैं या आपको देवराज इन्द्र ने हमारा भेद लेने भेजा है? जो सत्य बात हो वह कहिये? मुझसे कुछ छिपाना ठीक नहीं है।"

महर्षि ने कहा—"राजन्! हमें इन्द्र से क्या प्रयोजन? हम इन्द्र के दूत क्यों बनेंगे? आप तो भगवत् भक्तों में श्रेष्ठ हैं, आपके लिये कौन शत्रु है कौन मित्र है? आपका कोई भेद लेकर भी क्या करेगा? हमें किसी चीज का लोभ लालच नहीं। हमारे लिये जैसे आप वैसे ही इन्द्र। हम सदा तपस्या में निरत रहते हैं। तीर्थ यात्रा करते-करते मैं परम पावन महा नदी नर्मदा में आया था। वहाँ स्नान करते समय एक नाग मुझे यहाँ पकड़ लाया। भगवन्नाम के प्रताप से मैं वैसे ही इधर-उधर घूम रहा हूँ। जो सच बात थी वह मैंने आपसे कह दी। अब मुझसे आप और क्या पूछना चाहते हैं?"

प्रह्लादजी ने महर्षि की बातों पर विश्वास किया। उन्हें बड़े आदर से अपने घर ले गये। उनकी विधिवत पूजा की, अब इधर-उधर की बातें होने लगीं। महर्षि च्यवन तीर्थयात्रा को ही निकले थे, अतः तीर्थयात्रा का ही प्रकरण छिड़ गया।

प्रह्लादजी ने पूछा—"महर्षे! आप किस तीर्थ को श्रेष्ठ समझते हैं?"

महर्षि ने कहा—यदि मन में श्रद्धा हो, विश्वास हो, धर्म में रुचि हो, विषयों से वैराग्य हो तो सभी तीर्थ श्रेष्ठ हैं। जो लोग

श्रद्धा हीन हैं, विषयासक्त हैं, भोगासक्त हैं उन्हें किसी भी तीर्थ का पूरा फल नहीं मिलता। तीर्थों में अक्षय करने की सामर्थ्य है। यदि वहाँ थोड़ा भी पुण्य करे तो वह हजार गुना होकर अक्षय कभी नष्ट न होने वाला—बन जाता है। इसी प्रकार तीर्थों में किया हुआ पाप भी कभी नष्ट नहीं होता। अतः सबसे पहिले मन की शुद्धि, सद्भावना, श्रद्धा विश्वास, भक्ति की आवश्यकता है। इसलिये श्रद्धाहीन, दूसरों को ठगने वाले तीर्थवासी कभी पाप रहित नहीं, किन्तु उनके पाप और भी दृढ़ अक्षय बन जाते हैं।[1]

प्रह्लादजी ने पूछा—"तब तो मन की शुद्धि ही आवश्यक है?"

महर्षि ने कहा—"शरीर तो पाप पुण्य से रहित है। सबका कारण तो मन है। कर्म तो मन की प्रेरणा से होते हैं। मन की शुद्धि तो सबसे पहिले आवश्यक ही है। अच्छे कर्म अच्छे ही हैं बुरे-बुरे ही हैं। तीर्थयात्रा महापुण्य को देने वाली है।[2] तीर्थ क्षेत्रों का दर्शन, वहाँ जाकर स्नान, दान, निवास करना ये सब पुण्य के कार्य हैं। पृथ्वी में एक से एक बढ़कर बहुत से तीर्थ हैं।"

प्रह्लादजी ने कहा—"भगवन्! कुछ सर्वश्रेष्ठ तीर्थों के नाम बताइये।"

महर्षि ने कहा—"तीर्थों की तो संख्या ही नहीं। जैसे नैमिषारण्य है, कुरुक्षेत्र है, गया तीर्थ है, प्रयागराज है, काशी, मथुरा, अयोध्या आदि सभी पुण्यप्रद हैं।"

---

१ तीर्थं वासी महा पापी भवेत् तत्रान्य वंचनात्।
तत्रैवाचरितं पापं आनंत्याय प्रकल्पते॥

२ यथेन्द्र वारुणं पक्वमिष्टं नैवोप जायते।
भाव दुष्टस्तथा तीर्थे कोटि स्नातो न शुद्धयति॥

(देवी भाग० ४ स्क० ८ अ० ३५, ३६ श्लो०)

प्रह्लाद जी ने कहा—"मुझे सबसे पहिले नैमिषारण्य में चलना चाहिये। देखें वहाँ की क्या परिस्थिति है। यह कहकर उन्होंने असुरों को तैयार होने को आज्ञा दी। बात-की-बात में तैयारियाँ हो गईं और प्रह्लादजी अपने दलबल सहित नैमिषारण्य पहुँच गये। वहाँ जाकर उन्होंने तीर्थ स्नान किया, यथाशक्ति दान दिया और कुछ दिन सत्सङ्ग के निमित्त वहाँ रह गये।

एक दिन वे घूमते फिरते नर-नारायण के तपस्या स्थान में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने देखा, बड़ी-बड़ी जटाओं को धारण किये ये दोनों ऋषि तपस्या में लगे हुए हैं और सामने धनुष बाण भी रखे हैं। प्रह्लाद जी यह देखकर बहुत हँसे, अपने आप कहने लगे—"ये तपस्वी अजीब हैं, ढोंग तो तपस्या का कर रहे हैं और धनुषबाण पास रखते हैं। तपस्वी तो अहिंसक होता है, उसे अस्त्र-शस्त्रों से क्या काम ? मालूम पड़ता है ये कोई ठग हैं जो लोगों को धोखा देने को तपस्वी का वेष बनाये बैठे हैं।

इन दोनों ऋषियों ने उनकी बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और अपनी तपस्या में लगे रहे। तब प्रह्लादजी ने उनसे ही कहा—"ओ तपस्या को बदनाम करने वालो ! तुमने यह क्या ढोंग बनाया है। ये तपस्या के विरोधी अस्त्र-शस्त्र यहाँ क्यों रख छोड़े हैं ?"

नारायण जी तो शान्त रहे। नर बोले—"हम कुछ भी कर रहे हों, तुझे इस बात से क्या ? हम अपना काम कर रहे हैं तू अपने रास्ते चला जा। हमें तुझसे कुछ लेना देना तो है ही नहीं।"

प्रह्लाद जी ने डाँटकर कहा—"बकबक क्यों करते हो ? लोगों को ठगते हो और कहते हो तुमसे क्या मतलब ? मतलब है तभी तो पूछते हैं। बताओ तुम कौन हो ?"

नर ने कहा—"तू जायगा कि झगड़ा करेगा ? हम ठग हैं, चोर हैं तुमसे क्या ? तू कौन होता है ?"

प्रह्लाजी ने दृढ़ता से कहा—"हम राजा हैं,तुम जैसे पाखंडियों को दंड देना ही हमारा काम है। मैं तुम वञ्चकों को इस पुण्य क्षेत्र से निकाल कर रहूँगा। यह कहकर वे लड़ने को तैयार हो गये।"

बस, नर को भी क्रोध आ गया। दोनों में धनुष बाण चलने लगे, घोर युद्ध होने लगा। जब नर शिथिल पड़े तब नारायण अपना धनुषबाण लेकर लड़ने लगे। इस प्रकार देवताओं के वर्षों से सौ वर्ष तक युद्ध होता रहा। प्रह्लाद जी को नृसिंह भगवान् का वरदान था कि तुम्हारी किसी के हाथों मृत्यु न होगी, नमतुकिसी से पराजित होगे। जब सौ वर्ष तक भी इन दोनों भाइयों को न हरा सके, तब उन्होंने भगवान् का ध्यान किया। उसी समय शङ्खचक्र धारी वनमाली चतुर्भुज रूप से प्रकट हुए और प्रह्लाद से बोले—"वत्स, ये दोनों मेरे ही रूप हैं। मुझमें और इनमें कोई अन्तर नहीं। तुम इन्हें पराजित नहीं कर सकते।

प्रह्लादजी की आँखें खुलीं। उन्होंने देखा, दोनों भाइयों को प्रणाम किया और अपने अपराध की क्षमा प्रार्थना करके अपने लोक को चले गये। नर-नारयण ने भी उस स्थान को निरापद न समझकर त्याग दिया।

पहिले नर तब नारायण

नर नारायण दोनों भाइयों ने कुछ काल तक अवन्तिका (उज्जयनि) में तप किया। दोनों निरन्तर घोर तपस्या में लगे रहते थे। नर तो उग्र तप करने लगे। उनके तप को देखकर नारायण बड़े ही सन्तुष्ट हुए। अत्यन्त प्रसन्न होकर वे नर भगवान् से कहने लगे—"तात! मैं तुम्हारी तपश्चर्या से बहुत ही प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे वर माँगो"

नर ने कहा—"मेरे लिये इससे बढ़कर और क्या वर होगा कि आप मुझ पर प्रसन्न हैं। आपकी प्रसन्नता ही मेरे लिये महान् वर है।"

तब भगवान् नारायण ने कहा—"मैं तुमसे इतना प्रसन्न हूँ कि बड़ा होने पर भी पहिले तुम्हारा नाम लिया जायगा तब मेरा। जो तुम्हारा नाम लेकर तब मेरा नाम लेंगे उन्हें अक्षय पुण्य होगा। जो ऐसा न करेंगे उनको पुण्य न होगा।" इसीलिये जहाँ दोनों भाइयों का नाम लिया जाता है वहाँ पहिले नर तब नारायण कहा जाता है। बड़े होने पर भी 'नारायण-नर' कोई नहीं कहता सब नर-नारायण ही कहते हैं। यह नारायण का वरदान है।

नर ने एक वरदान यह भी माँगा कि यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरे सारथी बनें।

यह सुनकर नारायण हँसे और बोले—"भावी के वश होकर ही तुम ऐसा कह रहे हो। अच्छा, इस जन्म में तो हमने तपस्वी का वेष धारण किया है इसलिये इस जन्म में तो नहीं, अगले जन्म में तुम्हारी इस इच्छा को भी पूर्ण करेंगे।"

इसीलिये अगले जन्म में नर अर्जुन हुए, नारायण ने श्रीकृष्ण का रूप धारण किया और महाभारत में अर्जुन का सारथित्व करके नर के वरदान को पूर्ण किया।

श्री नारायण के उरु से उर्वशी की उत्पत्ति

नर-नारायण भगवान् बदरिकाश्रम में आकर घोर तप करने लगे। उनकी इस तपश्चर्या को देखकर देवता घबरा गये। इन्द्र को बड़ा भय हुआ कि पता नहीं यह किस निमित्त इतना घोर तप कर रहे हैं। ऐसा न हो ये तपस्या के प्रभाव से मेरा इन्द्रासन छीन लें। इसलिये देवराज ऐरावत हाथी पर सवार होकर तपस्या में निरत इन दोनों भाइयों के पास गये और बड़ी मधुर वाणी में कहने लगे—"ओ तपस्वियो! तुम्हारी तपस्या से मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ तुम जो भी वरदान मुझसे माँगना चाहो वह माँग लो।"

इन दोनों ने इन्द्र की ओर आँखें उठाकर भी नहीं देखा,

निरन्तर अपनी तपस्या में ही मग्न रहे, तब तो इन्द्र को बड़ा भय हुआ। उसने सोचा—"अवश्य ही इनका कोई मुझसे भी महान उद्देश्य है। ऐसा न हो मुझे इनके सामने इन्द्रासन त्यागना पड़े। इसलिये जैसे भी हो इनकी तपस्या में विघ्न करना चाहिये।" विषयी पुरुष सदा दूसरों के उत्कर्ष को देखकर जलता रहता है। क्योंकि वह सुख बाहर की वस्तुओं में खोजता है। जिसने भीतर का सुख प्राप्त कर लिया है वह बाह्य वस्तुओं के लिये दूसरों से विरोध न करेगा।

देवराज इन्द्र ने कामदेव, वसन्त, वायु और अप्सराओं को भगवान् नर-नारायण के तप में विघ्न करने के लिये भेजा। वसन्त ने उस वन में अड्डा जमाया। चारों ओर वृक्ष हरे भरे हो गये, वृक्ष लताओं में भाँति-भाँति के पुष्प खिल उठे। उन पर भ्रमर गुञ्जार करने लगे, शीतल मन्द सुगन्धित पवन चलने लगा। सभी प्राणी कामदेव के वश होकर काम क्रीड़ा में रत हो गये। ऐसे सुखद सरस समय में स्वर्ग की अप्सरायें संगीत की तान छोड़ने लगीं। कोई अपने कोकिल कूजित कण्ठ से गान करने लगी, कोई कामोद्दीपक हाव-भाव प्रदर्शित करके नृत्य करने लगीं, कोई मनोहर बाजे बजाने लगीं। गाने बजाने तथा नाचने की ध्वनि सुनकर दोनों ऋषियों ने नेत्र खोले और चारों ओर दृष्टि डाली। असमय में वसन्त ऋतु देखकर और प्राणियों में कामोद्दीपन की प्रबलता जानकर तथा सामने देवाङ्गनाओं की काम क्रीड़ा निहार कर वे समझ गये कि यह सब देवराज इन्द्र की करतूत है। उनकी दृष्टि को देखकर अप्सरायें डर गईं! वसन्त वायु तथा कामदेव थर-थर काँपने लगे! उन्होंने सोचा अब हमारी कुशल नहीं। ये महर्षि हमें अपने तपोबल से भस्म कर देंगे।"

उन्हें भयभीत देखकर भगवान् नारायण अत्यन्त मधुर वाणी

से कहने लगे—"आप लोग डरें नहीं, आनन्द से मेरे आश्रम में पधारिये। मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिये। आप सब हमारे पूजनीय अतिथि हैं। हमारे आश्रम का अतिथि ग्रहण करके सनाथ करें।" यह कहकर उन्होंने उनका आतिथ्य सत्कार किया।

भगवान् नारायण ने उन अप्सराओं के मान मर्दन के लिये कुतूहल वश अपनी जंघा को एक आम्र की डाली से चीरा, चीरते ही उसमें से सैकड़ों हजारों देवाङ्गनायें निकलने लगीं। वे इतनी सुन्दरी थीं कि स्वर्ग की अप्सरायें उनके सामने तुच्छ और कुरूप दिखाई देने लगीं। सभी महर्षि की इस सामर्थ्य को देखकर आश्चर्य चकित हो गये और उनके तप प्रभाव को देखकर लज्जित हुए। उन्हें अपने व्यवहार पर बड़ी ग्लानि हुई।

तब नारायण भगवान् बोले—"इनमें से आप उर्वशी को लेकर स्वर्ग में जाओ। देवराज को हमारी ओर से इसे उपहार में देना। हे अप्सराओ! तुम डरो मत, मैं तुम्हारे ऊपर अप्रसन्न नहीं हूँ। तुम आनन्द पूर्वक स्वर्ग में जाओ। इसके सिवाय तुम और भी मुझसे जो वरदान माँगना चाहती हो माँगो, तुम जो भी माँगोगी मैं दूँगा।"

अप्सरायें भगवान् के त्रिभुवन कमनीय रूप लावण्य को तथा उनकी इस अद्भुत सामर्थ्य को देखकर उनके ऊपर आसक्त हो गईं। उन्होंने अत्यन्त लज्जा के साथ कहा—"प्रभो! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं और हमें वरदान देना चाहते हैं तो यही वरदान दीजिये कि हम सदा आपकी दासी बनी रहें। हमें स्वर्ग न लौटाइये। अपने साथ रखकर हमारे साथ सुख भोग कीजिये। आप वर देने वालों में श्रेष्ठ हैं सत्यवादी हैं। यह वर देकर अपनी प्रतिज्ञा को सत्य कीजिये।"

अब तो भगवान् बड़े चक्कर में फँसे। तपस्या छोड़कर वे काम सुख भोग में फँसते हैं तो अपने तप की प्रतिज्ञा छूटती है।

यह अवतार उन्होंने केवल तप मार्ग प्रदर्शित करने के ही लिये धारण किया था। यदि उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं करते तो अपना वचन झूठ होता है, वे सोचने लगे मुझे पहिले ही क्रोध करके इन्हें भस्म कर देना था या अब भी ऐसा कर सकता हूँ। तब नर भगवान् ने समझाया। प्रभो! क्रोध तो काम से भी बुरा है। क्रोध से तप का नाश होता है। नैमिषारण्यमें हमने प्रह्लादजी से क्रोध करके अपना ही तप क्षय किया। अतः आप शांति से काम लें। तपस्या में क्रोध सबसे बड़ा शत्रु है। क्रोध के बराबर पाप और कोई नहीं। क्रोधी सब कुछ कर सकता है। इसलिये क्रोध की बात आप मन में भी न लावें।

तब भगवान् ने प्रसन्न होकर अप्सराओं से कहा—"देवियो! यह अवतार तो हमने केवल तपस्या के लिये धारण किया है, किन्तु तुम्हारे वरदान को भी मैं सत्य करूँगा। तुम्हें निराश न करूँगा।" श्रीकृष्णावतार में मैं तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करूँगा इतना सुनकर वे उर्वशी को साथ लेकर स्वर्ग में चली गईं। उन दोनों के प्रभाव को सुनकर तथा उर्वशी के रूप लावण्य को देखकर इन्द्र मन ही मन बड़ा लज्जित हुआ।"

दूसरे जन्म में वे ही गोपिकायें हुईं और भगवान् ने उनकी मनोकामना पूर्ण की। इसीलिये भागवत में कहा है कि कामदेव अजेय है। काम को जीत भी ले किन्तु क्रोधको जीतना बड़ा कठिन है। उस क्रोध को भी नर-नारायण मुनियों ने जीत लिया।*

[४]

मार्कण्डेय मुनि को नर-नारायण का वरदान

दीर्घजीवी महामुनि मार्कण्डेय मुनि की अवस्था पहिले विधाता ने १४ वर्ष की लिखी थी उन्होंने शिवजी की आराधना

---

* कामं दहन्ति कृतिनोननुरोष दृष्टया।

करके १४ वर्ष से १४ कल्प को अपनी आयु करा लो। महामुनि मार्कण्डेय भगवान् नर-नारायण के ही उपासक थे। उनका आश्रम गंगोत्री के रास्ते में पुष्पभद्रा नदी के तट पर था। वहाँ वे बड़े नियम से रहकर बदरीनाथ भगवान् नारायण की तपस्या में निरत रहते। इस प्रकार तपस्या करते-करते उन्हें बहुत वर्ष बीत गये। उनकी तपस्या की सिद्धि के निमित्त उन्हें वरदान देने के लिये भगवान् नर-नारायण उनके आश्रम पर गये। वहाँ जाकर उन्होंने मुनि को अपने ध्यान में मग्न देखा। ऋषि को ध्यानमग्न देखकर भगवान् नर-नारायण बड़े ही प्रसन्न रहे। भगवान् को देखकर ऋषि ने उनका आदर किया पूजा की स्तुति की। तब उनकी पूजा और तपस्या से सन्तुष्ट होकर भगवान् ने उनसे वर माँगने को कहा। उन्होंने भगवान् से अपनी माया के दर्शन कराने की इच्छा की। तब भगवान् ने उन्हें अपनी माया दिखाई। जिस प्रकार श्री नर-नारायण भगवान् ने महामुनि मार्कण्डेय की इच्छा पूर्ति की, अपनी माया दिखाकर फिर उसका नाश करके अपनी भक्ति प्रदान की इसी प्रकार भगवान् हमारी माया को मेंटकर अपनी अहैतुकी भक्ति प्रदान करें, यही हमारी उन बदरीक्षेत्राधिपति के चरणों में प्रार्थना है। अतः जिस रूप से बदरीनाथ महामुनि मार्कण्डेय को दर्शन देने गये थे उस रूप का ध्यान करते हुए उन श्लोकों को लिखकर हम इस अध्याय को समाप्त करते हैं।

तौ शुक्ल कृष्णौ नवकंज लोचनौ,
चतुर्भुजो रौरव वल्कलाम्बरौ।
पवित्र पाणी उपवीतकं त्रिवृत्
कमण्डलुं दण्डमृजुं च वैण्वम्॥
पद्माक्ष माला मुत जन्तुमार्जनं
वेदं च साक्षात् तप एव रूपिणौ।
तपत् तडिद् वर्णौ पिशङ्ग रोचिषा
प्रांशू दधानौ विबुधर्ष मार्चितौ॥

७—घंटा कर्ण

यत्र विष्णुर्जगन्नाथस्तपस्तप्त्वा सुदारुणम् ।
द्विधाकरोत् स्यमात्मानं नर नारायणाख्यया ॥
सिद्ध क्षेत्रमिदं प्राहुऋषयो वीत मत्सराः ।
विशालां वदरीं विष्णुस्तां द्रष्टुं सकलेश्वरः ॥

(श्री हरिवंश ५ स्क० २१, २१ श्लोक)

भगवान् बदरी विशाल के मन्दिर में दाईं ओर परिक्रमा में कथा मण्डप के समीप घंटा कर्ण की बिना धड़ की एक मूर्ति है। उन्हें भगवान् का द्वारपाल या कोतवाल कहते हैं। घंटाकर्ण कौन थे और यहाँ आकर कोतवाल क्यों हुए इनकी हरिवंश पुराण में ७६ वें अध्याय से ८८वें अध्याय तक वड़ी ही सुन्दर कथा है। घंटाकर्ण की कथा से पता चलता है कि भगवान् नर-नारायण भावग्राही हैं। संसार में भावना ही प्रधान है। बहुत-सी लड़कियाँ चली जा रही हैं उनमें हमारी सगी बहिन भी है। लड़की-लड़की सब एक-सी, किन्तु बहिन के प्रति दूसरी भावना होगी और अन्यों के प्रति दूसरी ही। यह संसार भावनामय है। हमारी भावना ही फलवती हुआ करती है। भावहीन कर्म निष्फल हैं। घंटाकर्ण रुधिर मांस खाने वाला पिशाच था, क्रूरकर्मा और हिंसक था। अपने शुद्ध भाव से ही वह मुक्ति का अधिकारी हुआ और साक्षात् नारायण ने उसे प्रत्यक्ष दर्शन देकर उसके मनोरथ को पूर्ण किया।

घंटाकर्ण पिशाच था। शिवजी का अनुचर और अनन्य शिव भक्त था। शिवजी में ही एकमात्र उसकी भक्ति थी। वह

अपने दोनों कानों में बड़े-बड़े घंटा बाँधे रहता था कि कहीं मेरे कानों में विष्णु का नाम सुनाई न दे। वह निरन्तर शिवजी के ही नाम का जप कीर्तन करता था। हजारों वर्ष उन्होंने अनन्य भाव से भूतपति भवानीनाथ शंकर की आराधना की। उसकी आराधना से प्रसन्न होकर शिव ने उससे कहा—"वत्स! मैं तुम्हारी भक्ति से सन्तुष्ट हूँ, तुम जो मुझसे चाहो वर मागो।"

घंटाकर्ण ने कहा—"हे प्रभो! हे देवाधिदेव! यदि आप मुझसे प्रसन्न हैं तो मुझे मुक्ति प्रदान कीजिये।"

मुक्ति के जो एकमात्र स्वामी हैं, उन चन्द्रशेखर कैलाशपति शिवजी ने सोचा—"अभी इसके मन में मेरे तथा विष्णु के प्रति भेद बुद्धि है, जिसके मन में भेद भाव है, वह कैसा भी भक्त क्यों न हो मुक्ति का अधिकारी नहीं। भेद भाव मिटे बिना कोई मुक्ति पा ही नहीं सकता।" यही सब सोचकर पार्वती पति भोलानाथ बोले—"वत्स! तुम धन ऐश्वर्य और जो चाहो सो माँग लो, मुक्ति के एकमात्र दाता तो श्रीहरि ही हैं। मैं मुक्ति नहीं दे सकता। यदि तुम्हें मुक्ति की इच्छा है, तो श्रीमन्नारायण की शरण जाओ, उनकी आराधना से ही कैवल्य प्राप्त हो सकता है।"

यह सुनकर घंटाकर्ण चौंक पड़ा। उसने कहा—"हाय! भगवन्! यह तो बड़ी भूल हुई। मैं तो आपको ही सब कुछ समझता था। मुझे धन ऐश्वर्य कुछ भी नहीं चाहिये। मैं तो एक मात्र मुक्ति का ही इच्छुक हूँ। जिन वैकुण्ठनाथ श्रीमन्नारायण को आप मुक्ति का स्वामी बताते हैं, उनका तो मैं सदा विरोधी रहा हूँ। मैं तो उनका नाम भी कभी नहीं सुनता था। इसलिये अपने कानों में घंटा बाँधे रहता था, इस पाप का प्रायश्चित्त कैसे हो? मुझ पापकर्मा को श्रीमन्नारायण के कैसे दर्शन हों?" यह कह कर वह फूट-फूटकर रोने लगा।

शिवजी ने कहा—"वत्स! घबड़ाओ मत। श्रीहरि करुणा-

सागर हैं भक्तवत्सल हैं। वे एक बार सच्चे हृदय से शरण जाने वालों के सब अपराधों को क्षमा कर देते हैं। तुम उन्हीं की शरण जाओ।"

घंटाकर्ण ने कहा—"मुझ पापी को, विष्णुद्रोही को भगवान् जनार्दन के कहाँ दर्शन होंगे?"

शिवजी ने कहा—"आज कल वे द्वारिका में अवतीर्ण हुए हैं तुम उन द्वारकाधीश श्रीकृष्ण की ही शरण में जाओ।"

यह सुनकर घंटाकर्ण अपने भाई तथा बहुत से भूत पिशाचों को साथ लेकर द्वारिका की ओर चला। उनके साथ बहुत-से शिकारी कुत्ते थे। रास्ते में बहुत-से मनुष्यों को मारते खाते और उनकी आँतड़ियों की माला पहिने घंटाकर्ण अपने दल के साथ द्वारिका में पहुँचा। वह निरन्तर अच्युत! नारायण! जनार्दन! श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव! इन नामों को रटता जाता था। निरन्तर उसकी आँखों से अश्रु धारा बहती रहती। वह आर्तस्वर से चिल्लाता। दीनों के रक्षक, भक्तों के प्रतिपालक, मुक्ति के एकमात्र स्वामी भगवान् वासुदेव के मुझे कब दर्शन होंगे! कब वे मुझे अपनी शरण में लेंगे?

द्वारिकापुरी में पहुँचकर उसे पता चला कि भगवान् वासुदेव तो पुत्र की इच्छा से शिवजी की आराधना करके उन्हें प्रसन्न करने कैलाश पर्वत पर गये हैं। तब तो उनकी उत्कंठा और भी बढ़ी। वह वहाँ से रोता-रोता कैलाश की ओर चला। चलते-चलते वह रास्ते में वदरिकाश्रम में पहुँचा। वहाँ उन दिनों असंख्यों ऋषि महर्षि रहकर प्रत्यक्ष श्री नारायण की आराधना करते थे। वह स्थान एकमात्र तपस्वियों और ब्रह्मवादियों के द्वारा ही सेवित था। घंटाकर्ण के कुत्तों को देखकर सिंह, व्याघ्र तथा मृग भागने लगे। मनुष्य चिल्लाने लगे। सभी ओर हाहाकार मच गया। प्रेत, पिशाच मनुष्यों को मार-मारकर उनका रक्तपान

करने लगे। उनकी आँतड़ियों को बाहर निकाल-निकालकर पहिनने लगे। मृगों का कोलाहल, मरने वाले मनुष्यों की चीत्कार, सिंह व्याघ्रों की गर्जना से वह शान्त वन अशान्त हो गया। सर्वत्र हाहाकर मच गया। उस हाहाकार तथा कोलाहल के बीच में घंटा कर्ण की हे कृष्ण ! हे जनार्दन ! हे नारायण ! हे मुक्तिनाथ, ऐसी करुणापूर्ण वाणी भी सुनाई पड़ती थी।

द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण ऋषि मुनियों द्वारा सेवित उस बदरिकाश्रम में ठहर कर समाधि में लीन थे। उन्होंने समाधि में ये शब्द सुनकर अपने नेत्र खोले। सामने घंटाकर्ण और भूत पिशाचों को देखा। कुत्ते भी इधर-उधर दौड़ रहे थे। भगवान् ने उनके पास जाकर पूछा—"भाई तुम कौन हो ? क्यों इन तपस्वियों द्वारा सेवित शान्त वन में अशान्ति मचाने आये हो। इस भूमि में पुण्यवान, शान्तचित्त, तपस्वी ही आ सकते हैं। हिंसक, शिकारी, परपीड़क तथा पापी इसमें प्रवेश नहीं कर सकते। तुम अपने आने का कारण बताओ।"

घंटाकर्ण ने कहा—"तुम कौन हो ?"

भगवान् ने कहा—"मैं यहाँ का रक्षक हूँ। यहाँ के लोगों की दुःख से रक्षा करता हूँ, जो लोग पापी हैं दूसरे को दुख देते हैं उन्हें दण्ड भी देता हूँ।"

यह सुनकर घंटा कर्ण ने सब वृत्तान्त सुनाया। वह बोला—"मेरा नाम घंटा कर्ण है मैं पिशाच हूँ, यह मेरा भाई है, यह मेरे साथी हैं, मैं शिवजी का अनन्य भक्त हूँ, मुक्ति का इच्छुक हूँ। शिवजी की आज्ञा से मुक्तिदाता श्रीहरि की शरण आया हूँ। वे कृपा के सागर, भक्तवत्सल, अशरण शरण जनार्दन मुझे कब मिलेंगे ? कब मुझ पापकर्मा पिशाच को अपने दर्शन देंगे ? हे मनुष्य ! तुम सुखपूर्वक अपने काम में लगो, मैं उन अचिन्त्य परमात्मा श्रीमन्नारायण के ध्यान में मग्न होता हूँ।" यह कहकर

उसने रक्त और मांस को अलग रखा। मुर्दों को दूसरी ओर रखा, गले से आँतड़ियों की माला उतार दी और वह गङ्गाजी के किनारे ध्यान में मग्न हो गया। भगवान् के ध्यान में वह ऐसा लीन हुआ कि उसे शरीर की सुध तक नहीं रही, वह एक दम समाधि मग्न हो गया। उसके ऐसे भाव को देखकर भक्तवत्सल श्रीहरि बड़े प्रसन्न हुए, उन्होंने सोचा—"इस मांसाहारी पिशाच की कैसी आश्चर्यजनक भक्ति है। इसका कैसा शुद्ध भाव है, कैसी उत्कृष्ट प्रीति है। ऐसी समाधि तो बड़े-बड़े योगियों की भी नहीं लगती। मैं इसे योगियों को भी दुर्लभ मुक्ति को प्रदान करूँगा।" यह सोचकर भगवान् उसके हृदय में चतुर्भुज रूप से प्रकट हुए। हृदय में भगवान् के दर्शन पाकर वह पिशाच प्रेम में गद्गद हो गया। शङ्ख चक्रधारी, बनवारी मुरारी के अद्भुत दर्शन पाकर वह रोने लगा। आँसुओं से उसके वस्त्र भीग गये। रुद्ध कण्ठ से भगवान् की मन-ही-मन स्तुति करने लगा। संसार को वह एक दम भूल गया और भगवान् के देव दुर्लभ सौंदर्य माधुर्य का श्रद्धा भक्ति के साथ पान करने लगा।

भगवान् के रूप माधुर्य में जब वह इतना मग्न हुआ कि उसकी समाधि खुली ही नहीं तब भगवान् ने अपना रूप खींच लिया, सहसा हृदय से भगवान् की मनोहर मूर्ति के अन्तरध्यान होने पर वह एकदम घबड़ा गया और भौचक्का-सा होकर इधर-उधर देखने लगा। जब उसने आँखें खोलकर बाहर देखा तो वही मूर्ति उसके सामने प्रत्यक्ष खड़ी है। भगवान् के चारों हाथों में शङ्ख, चक्र और गदा आदि आयुध शोभित हैं। पीतवस्त्र धारण किये हुए हैं। कानों में कुण्डल हैं, गले में वैयजन्ती माला है। हृदय की मूर्ति को सम्मुख देखकर वह प्रेम में विभोर हो उठा और उल्लास के साथ नृत्य करने लगा। कभी नाचता, कभी जोर-जोर से भगवान के नामों का उच्चारण करता, कभी स्तुति

करता। इस प्रकार वह बड़ी देर तक प्रेम में बेसुध बना रहा। नाचते-नाचते वह भगवान् के चरणों में गिर पड़ा और फूट-फूट-कर रोने लगा। भगवान् ने उसे अपने कर कमलों से उठाया, सान्त्वना दी और वरदान माँगने को कहा।

घंटा कर्ण को थोड़ी देर में बाह्य ज्ञान हुआ। अब उसे भगवान् की पूजा करने की याद आई। उसने पुष्प, धूप, दीप से भगवान् की विधिवत पूजा की और बोला—"प्रभो! मैं कोई उचित उपहार नहीं ला सका। रास्ते में मैंने सोचा—नैवेद्य के लिये प्रभु को कोई सर्वश्रेष्ठ वस्तु ले चलूँ। हमारे यहाँ मांस को ही सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, तिस पर भी ब्रह्मवादी ब्राह्मण का मांस तो परम पवित्र होता है। इसलिये मैं इस वेदज्ञ विशुद्ध ब्राह्मण को मारकर उसे आपके लिये उपहार में लाया हूँ। आप उसके मांस को ग्रहण कीजिये। यह कहकर उसने मरे हुए ब्राह्मण के शरीर से चमड़ी बाल हटा मांस काटकर गङ्गाजी में धोकर भगवान् को अर्पण किया।

कहावत है, "यदन्नो पुरुषो अत्ति, तदन्न तस्यदेवता।" जो स्वयं खाता है वही देवता को भी खिलाता है। उसके शुद्ध भाव को देखकर भगवान् अप्रसन्न नहीं हुए। बड़े प्रेम से बोले—"देखो मांस अखाद्य वस्तु है जिस पर मनुष्य मांस और वह भी वेदज्ञ ब्राह्मण का। ब्राह्मण सदा अवध्य हैं। ब्राह्मण को कभी भी नहीं मारना चाहिये। आज से तुम इस काम को छोड़ दो। अब तुम कभी हिंसा मत करना, अब तुम स्वर्ग का सुख भोगो, इस इन्द्र के बाद तुम मेरे धाम को जाओगे।

ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये, तब तो घंटा कर्ण क्षेत्रपाल होकर बदरीवन में ही वास करने लगा। अब भी लोगों पर घंटा कर्ण का आवेश होता है। अब तो कम हो गया है, नहीं पहले घंटा कर्ण का इतना प्रभाव था, कि कोई चीज चोरी चली

जाय या कोई अनिष्ट होने वाला हो तो लोग घंटा कर्ण का आवाहन करते, किसी पर घंटा कर्ण का आवेश होता और सब सच्ची-सच्ची बात बता देता।

घंटा कर्ण का अब भी गढ़वाल में बड़ा प्रचार है, जगह-जगह उसके मन्दिर बने हैं, पूजा होती है। अब उसे घंट्याल अर्थात् घंटा वाला कहते हैं। अभी भी जब घंटा कर्ण की पूजा होती है तो कुछ जगह स्त्रियाँ अपनी छाती आदि पर घंटियाँ बाँधती हैं और उसी तरह तामसी द्रव्यों से उसकी पूजा भी होती है। यह शिव जी की क्रीड़ा भूमि है। जब से नारायण यहाँ आकर बसे हैं तब से सात्विक पूजा पद्धति चली है। नहीं तो शिवजी के गण डाकिनी, शाकिनी, भूत, पिशाच, बैताल, जोगिनी आदि का ही इस खण्ड में प्रचार था। पहिले इधर किरात, हूण, खस, कङ्क, असुर, दानव ऐसे ही अधिक रहते थे। नारायण के निवास करने पर इनका प्रभाव कम हुआ फिर भी वैसी पद्धति देहातों में अभी बहुत हैं।

इस प्रकार भक्तवत्सल भगवान् नारायण ने पिशाच योनि वाले इस घंटाकर्ण को अपना सामीप्य प्रदान करके अपना अनुचर बनाया। भगवान् बड़े ही दयालु हैं। मारने की इच्छा से आई हुई रक्त पीने वाली राक्षसी पूतना को भी जिन्होंने मुक्ति दे दी तो मुक्ति की इच्छा से आये हुए भक्त घंटाकर्ण को मुक्ति देना कौन आश्चर्य की बात है।

अहो बकीयंस्तन कालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥

—:—

८—श्री बद्रीनाथजी के अन्य तीर्थ

[१—अलकनन्दा गङ्गा]

सा गन्ध मादन लता कुसुमौघ लक्ष्मीः
सा दिव्य तुङ्ग हिमवन्नग शृंग पंक्तिः ।
गङ्गा च पुण्य सलिला किमुयस्त्ररम्य
त्वामागतोऽस्मिशरणं बदरीवनेऽस्मिन् ॥*

श्री वदरीनाथ की शोभा वही समझ सकता है जिसने कभी सौभाग्य से बद्रीनाथ की यात्रा की हो। वहाँ की पर्वत श्रेणियाँ कितनी रम्य हैं, वहाँ की कल-कल नादिनी भगवती अलकनन्दा चपला बाला की तरह कैसी कमनीय क्रीड़ा करती है, वहाँ के प्रत्येक पत्र पुष्प में कैसी दिव्य गन्ध है। वहाँ के वातावरण में कितनी शान्ति है। ये सब अनुभव की चीजें हैं। जब हम वहाँ के जंगलों में भाँति-भाँति की सुगन्ध वाले पुष्पों को सूँघते हैं तब उसका सचमुच गन्धमादन नाम सार्थक प्रतीत होता है।

बदरीनाथ में असंख्यों गुप्त और प्रकट तीर्थ हैं। उनमें से बहुत प्रसिद्ध तीर्थों का हम यहाँ संक्षेप में वर्णन करेंगे। पुराणों में भिन्न-भिन्न प्रकार से बदरीश स्थिति तीर्थों का वर्णन है, वाराह पुराण एक सौ इक्तालीसवें अध्याय में प्रायः सभी तीर्थों का वर्णन है किन्तु स्कन्दपुराण के आठ अध्यायों में बहुत सुन्दर क्रम पूर्वक वर्णन है। इसके पूर्व आप बदरीनाथ की भूमि के सम्बन्ध में समझ लीजिये। बदरी पुरी दो पर्वतों के बीच में बसी है। खास बदरीपुरी में मैदान नहीं है। बदरीपुरी से जब माणा की ओर बढ़ते हैं तो हमें सुन्दर हरा-भरा मैदान दिखाई देता

है जिधर बदरीपुरी है उधर के पर्वत को नारायण पर्वत कहते हैं। और उसके सामने के पर्वत को नर पर्वत कहते हैं। बीच में तीक्ष्ण धारा वाली हर-हर शब्द का अखण्ड कीर्तन करते-करते दौड़ने वाली पुण्य सलिल अलकनन्दा ही हैं। दोनों भाइयों के बीच में एक सीमा रूपिणी हैं। अलकनन्दा गंगा यहीं होकर क्यों बहीं इस विषय में एक बड़ी ही सुन्दर पौराणिक गाथा है।

भगवान् विष्णु की चार पत्नियाँ हैं। श्रीदेवी (लक्ष्मी), भूदेवी (पृथ्वी), वृन्दादेवी (तुलसी) और गङ्गा देवी। भगवान् की कौन पत्नी कौन प्यारी, संसार ही उनके लिये क्रीड़ा है। किन्तु जब उन्हें कोई नवीन लीला करनी पड़ती है तो वे किसी को निमित्त बना लेते हैं। कोई एक राक्षस था। तपस्या करके उसने ब्रह्माजी से वरदान माँगा कि मेरी मृत्यु किसी से भी न हो यदि हो भी तो ऐसे मनुष्य से हो जिसका सिर घोड़े का हो धड़ सब मनुष्य का हो। ऐसा पुरुष तो संसार में कोई है नहीं। इसलिये वह किसी से नहीं मरता था। वह असुर देवताओं को बहुत पीड़ा देने लगा। देवताओं के एकमात्र आधार श्रीहरि ही हैं उनके सम्मुख आकर अपना दुखड़ा रोया। सबके कहने से भगवान् ही उससे लड़ने गये। हजारों वर्ष लड़ते रहे किन्तु उसे पराजित न कर सके। अन्त में युद्ध छोड़कर भाग आये। देवता और भी घबड़ाये कि जब भगवान् से ही यह नहीं मरता तब कैसे मरेगा। असुर का मद और भी बढ़ गया। फिर देवताओं ने प्रार्थना की, भगवान् बोले—"जब तक मेरा घोड़े का सिर न होगा तब तक असुर मर नहीं सकता। अच्छी बात है तुम लोग चिन्ता मत करो सोचूँगा कोई तरकीब। बनाऊँगा किसी को निमित्त, रचूँगा कोई अद्भुत लीला। दिखाऊँगा कोई अद्भुत कौतूहल।" यह सुनकर देवता चले गये।

एक दिन भगवान् शेष-शय्या पर पड़े हुए थे। चारों महारानियाँ चरण सेवा में लगी थीं, भगवान् के कमल के समान अरुण सुकोमल चरणों को अपनी गुदगुदी जंघाओं पर रखकर अपने अत्यन्त सुकुमार कर-कमलों से जगतजननी, वे चारों जगन्माताएँ धीरे-धीरे दबा रही थीं। लक्ष्मीजी भगवान् की विशेष मुँह लगी हैं। वे अपने को सर्वश्रेष्ठ समझती हैं। उन्हें इस बात का अभिमान है कि मैं भगवान् की अत्यन्त प्रियवल्लभा हूँ। आज भगवान् को इसी मद को चूर्ण करना था। इसीलिये आज वे लक्ष्मीजी की ओर ताकते भी नहीं थे। तुलसीजी और गंगाजी की ओर देखकर बार-बार हँसते हैं। कभी-कभी कनखियों से लक्ष्मीजी की ओर भी देख लेते हैं। लक्ष्मीजी बार-बार पूछती हैं—"महाराज! आज क्यों इतने जोरों से हँस रहे हैं। मुझे भी बताइये।" किन्तु भगवान् मानों आज सुनते ही नहीं। वे न कुछ उत्तर देते हैं न लक्ष्मीजी की ओर देखते ही हैं। बड़े जोर से हि-हि करके कहकहा मारते हैं और गंगाजी को टोंच देते हैं वे भी हँस पड़ती हैं। तुलसी जी भी इनकी हँसी में हँसी मिला देती हैं। सौतिया डाह तो सनातन से चली आ रही है। लक्ष्मीजी के ओठ फड़कने लगे, क्रोध ने अपना अधिकार जमा लिया। रोष ने विवेक को नष्ट कर दिया, संमोह ने स्मृति में विभ्रम उत्पन्न कर दिया। वे क्रोध में भरकर भगवान् से कहने लगीं—"आप बार-बार ही-ही करके घोड़ों की तरह हँसते हैं और मुझे कुछ बताते नहीं, इसलिये मैं शाप देती हूँ आपका सिर घोड़े का हो जाय। गंगे! तू मेरे ऊपर हँसती है तू वृक्ष होकर पृथ्वी में उत्पन्न हो।"

घर भर को शाप देकर जब लक्ष्मीजी को होश आया तो अपने अपराध की क्षमा माँगने लगीं। भगवान् ने कहा—"यह सब तो मेरी ही लीला है। मेरी इच्छा से तुमने यह सब कहा है। चिन्ता मत करो।" अस्तु—

कथा बहुत बड़ी है अब हमें अपने प्रयोजन पर आना है। भगवान् ने जाकर उस राक्षस से फिर युद्ध किया। युद्ध करते-करते थक गये। एक पर्वत को गुफा में गले में चढ़ा धनुष डालकर सो गये। देवताओं ने दीमक को उत्पन्न किया, उन्होंने धनुष की प्रत्यञ्चा को काटा इससे भगवान् का सिर धड़ से अलग हो गया, तब देवताओं ने उस धड़ पर घोड़े का सिर रखा। वहीं हयग्रीवावतार हुआ। इस शरीर से भगवान् ने उस राक्षस को मारा। यह कथा तो हयग्रीवावतार की हुई।

अब गंगाजी घबड़ाईं कि मुझे व्यर्थ में ही शाप मिला। सचमुच यदि माँ लक्ष्मी जगज्जननी गंगादेवी को न भेजतीं तो हम पापियों का कभी भी निस्तार नहीं था। गंगाजी ने भगवान् से प्रार्थना की—"प्रभो! मैं नदी होकर पृथ्वी पर जाऊँगी तो सही किन्तु अब मुझे आपके चरण कमलों के दर्शन कहाँ होंगे?" भगवान् ने कहा—"गंगे! तुम सदा मेरे हृदय में ही हो तुम मुझसे कभी अलग हो ही नहीं। फिर भी हम धर्म के यहाँ नर-नारायण रूप में अवतीर्ण होंगे वहाँ तुम हमारा हमेशा दर्शन करोगी।" इसीलिये गंगाजी बदरिकाश्रम होकर निकलीं, नहीं तो उन्हें और भी अनेक रास्ते थे। यह बात स्मरण रखने की है, कि समस्त पुराणों में विष्णुपत्नी गंगा अलकनन्दा को ही बताया है। आदि गंगा ये ही हैं। जब महाराज भगीरथ को अपने पितरों को नरक से निकालने की आवश्यकता पड़ी तब वह गंगाजी की दूसरी शाखा को लाये जो भगीरथ गंगा के नाम से विख्यात हुई और देव प्रयाग में आकर दोनों बहिनें फिर मिल गईं। पहिले ये अलकनन्दा गंगा कहीं दूसरी जगह समुद्र में मिलती होंगी। जो जगह सगर के पुत्रों की अस्थियों से बहुत दूर होगी। इसलिये वे गंगाजी की दूसरी धारा को लाये।

भगवती अलकनन्दा का जल इतना शीतल है कि उँगली

डालते ही सुन्न हो जाती है। गोता लगाने पर पता नहीं रहता किधर सिर है, किधर पैर हैं। इसलिये किसी महात्मा ने गंगा के किनारे जाड़े में खड़े-खड़े कहा था—"गंगे तव दर्शनात् मुक्तिः स्नाने जाने किं फलम्" हे गंगे! तुम्हारे दर्शन मात्र से ही जब मुक्ति हो जाती है, तो पता नहीं स्नान करने से क्या गति हो। इसी से मैं तो स्नान करता नहीं। मुझे मुक्ति से आगे कुछ नहीं चाहिये।

६—मन्दिर से बाहर के तीर्थ

अलकनन्दा

सचमुच बद्रीनाथ में अलकनन्दा गंगा दर्शन की ही चीज है। स्नान तो कोई विरला ही करता होगा। हम तो इतने दिन रहे, कई बार महीनों रहे, इने गिने दिन ही स्नान किया होगा। यात्री भी केवल प्रोक्षण ही कर लेते हैं। भगवान् ने भी जब उद्धवजी को बदरिकाश्रम को भेजा तो चलते समय सावधानी के साथ स्पष्ट कह दिया था। देखना उद्धव! सावधान, तुम अब बदरिकाश्रम चले जाओ। वहाँ भगवती अलकनन्दा जी बहती हैं जिनके दर्शन मात्र से ही समस्त पाप कट जाते हैं। भगवान् ने स्पष्ट कहा—

> गच्छोद्धवमयाऽऽदिष्टो बदर्याख्यं ममाश्रमम्।
> तत्र मत्पादतीर्थोदे स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः॥
> ईक्षयालकनन्दाया विधूताशेषकल्मषः।
> वसानो वल्कलान्यङ्ग वन्यभुक् सुखनिःस्पृहः॥१

(श्री भा० ११ स्क० २९ अ० ४१-४२ श्लोक)

---

१ भगवान् ने कहा—"हे उद्धव! तुम मेरी आज्ञा से मेरे परम पवित्र बदरिकाश्रम को चले जाओ। वहाँ मेरे चरण कमलों से उत्पन्न हुई श्री गङ्गाजी के परम पावन जल के स्नान और पान से तुम पवित्र हो जाओगे। अलकनन्दा जी के तो दर्शन मात्र से ही तुम्हारे सब पाप दूर हो जायँगे। हे प्रिय! तुम वहाँ वल्कल वस्त्र धारण करना, कन्द मूल फल आहार करते हुए निःस्पृह होकर आनन्द के साथ रहना। (अर्थात् वहाँ अलकनन्दा में बहुत स्नान मत करना, भूखे मत रहना, नंगे भी रहने का हठ मत करना)।"

"ईच्चयालकनन्दाया" कहकर भगवान् ने साफ चेतावनी दे दी कि उद्धवजी ! कहीं रोज स्नान करने की गलती न कर डालें। क्योंकि भगवान् भी वहाँ तपस्या करने गये थे। तब अनुभव होगा हो। इसीलिये पहिले तो कह दिया कि वहाँ के जल के स्नान और पान से पवित्र हो जाओगे। पीछे कह दिया अलकनन्दा के तो देखने मात्र से ही समस्त पाप कट जाते हैं। स्नान करने को तो वहाँ बड़ा सुन्दर अग्नि तीर्थ या तप्त कुण्ड है। उसमें चाहे घण्टों पड़े रहो। सचमुच बदरीवन में अग्निदेव तपस्या करने न आते और यहाँ तप्त कुण्ड न बनता तो यहाँ के लोग साल भर में भी कभी दो चार दिन स्नान करते इसमें सन्देह ही है। अब यहाँ अग्नि तीर्थ क्यों हुआ, अग्नि ने तपस्या क्यों की इसका वर्णन आगे होगा। अब हम श्रीविष्णु के पादपद्मों से प्रवाहित हुई पापनाशिनी त्रिपथगामिनी श्री गङ्गाजी के चरण कमलों में प्रार्थना करके इस प्रकरण को समाप्त करते हैं—

विष्णुपादाब्ज संभूते ! गंगे ! त्रिपथगामिनी ।

९—आदि केदारनाथ

श्री तत्र केदार रूपेण ममलिङ्ग प्रतिष्ठितम् ।
केदार दर्शनात् स्पर्शा दर्शनात् भक्ति भावतः ॥
कोटि जन्मकृतं पापं भस्मी भवति तत्क्षणात् ।
कलामात्रेण तिष्ठामि तत्र क्षेत्रे । विशेषतः ॥*

(श्री स्क० पु० व० २ अ० १३-१४ श्लोक)

---

* श्री शिवजी, स्कन्दजी से कहते हैं—"हे पुत्र ! श्री बदरीवन में मेरा केदार नामक लिङ्ग प्रतिष्ठित है। जो उस केदार लिङ्ग के भक्ति भाव से दर्शन, स्पर्श तथा पूजन करते हैं उनके करोड़ों जन्म के पाप उसी क्षण नाश हो जाते हैं। उस क्षेत्र में विशेष कर कलामात्र से ही रहता हूँ।"

श्री बद्रीनाथ जी के प्रधान, सिंह द्वार से नीचे उतरिये। जो सीढ़ियाँ नीचे तप्त कुण्ड तथा अलकनन्दा को जाती हैं उन्हीं सीढ़ियों को ४-५ उतर कर श्री शङ्कराचार्य का मन्दिर दाईं ओर मिलता है। उसमें श्री श्री आदि शङ्कराचार्य लिंग रूप से प्रतिष्ठित हैं। उसमें और ३-४ सीढ़ी नीचे भगवान् आदि केदार का मन्दिर है। इस बदरी क्षेत्र में शिवजी आकर क्यों बसे? इसकी एक पौराणिक कथा है। स्कन्द पुराण में शिवजी ने खुद ही अपनी करतूत का वर्णन किया है।

शिवजी कहते हैं कि प्राचीनकाल में जब ब्रह्माजी अपनी रूप यौवन सम्पन्ना सरस्वती नाम्नी पुत्री पर आसक्त हो गये तब मैंने क्रोध में भरकर उनका सिर काट डाला। वह सिर मेरे हाथ में चिपट गया। कपाल हाथ में रहने से मेरा नाम कपाली पड़ गया और ब्रह्महत्या भी मेरे शरीर में घुस गई। सब तीर्थों में घूमा किन्तु न तो ब्रह्महत्या ही दूर हुई और न वह कपाल ही मेरे हाथ से गिरा। मैं सब तीर्थों में जाकर हाथ को झाड़ता, फरफराता, किन्तु वह शरीर से चमड़े की तरह मेरे हाथ में चिपट गया। मैं उससे बड़ा परेशान हो गया। सब तीर्थों में घूमता-घूमता भगवान् के आश्रम में आया। यहाँ आते ही ब्रह्महत्या भी मेरे शरीर से निकलकर भाग गई और वह कपाल भी मेरे हाथ से छूटकर अलकनन्दा के समीप जा पड़ा। (जिससे ब्रह्म कपाली तीर्थ हुआ उसका वर्णन आगे होगा) तब से मैं भी यहीं रहने लगा हूँ।

इसलिये श्री बद्रीनाथ जी के दर्शन के पूर्व श्री आदि केदार भगवान् के दर्शन अवश्य कर लेने चाहिये। जो लोग आदि केदार के दर्शन नहीं करते उन पर भगवान् बद्रीनाथ प्रसन्न नहीं होते।

यह तो शिवजी द्वारा सुनाई हुई कथा है। हमने आदि केदार-नाथ के सम्बन्ध में एक पौराणिक कथा और भी सुनी है। यह

हमें याद नहीं कि किस पुराण या उपपुराण की है। असल में तो यह क्षेत्र शिवजी का ही है। विष्णु भगवान् ने तो यहाँ चालाकी से कब्जा कर लिया है। इस खंड का नाम केदार खंड ही है। हिमालय के पाँच खंड बताये हैं।

खण्डा पञ्च हिमालयस्थ प्रोक्ता नैपाल कूर्माचलौ।
केदारोऽथ जलन्धरोऽथरुचिरः काश्मीर संज्ञाऽन्तिमः॥

(१) नैपाल (२) कूर्मांचल (कुमायूँ) (३) केदारखंड (गढ़वाल) (४) जालन्धर (कोट कांगड़ा आदि) और (५) काश्मीर था। इसलिये पहिले इन सब अखंड पर शिवजी का ही आधिपत्य था विष्णु भगवान् को यह क्षेत्र बड़ा अच्छा लगा। अब सोचने लगे किसी तरह इस पर चालाकी से कब्जा करना चाहिये। वैसे तो शिवजी इसे देंगे नहीं। कोई चालाकी खेलनी चाहिये। बस झट एक छोटे बालक का रूप बनाकर शिवजी के दरवाजे पर हाथ पैर को हिलाकर पैरों को पीटकर जोर-जोर से रोने लगे। शिवजी पार्वती जी के साथ अलकनन्दा में स्नान करने के लिये निकले। देखा तो बालक रो रहा है। शिवजी तो समझ गये यह बालक साधारण बालक नहीं है। कोई महामायावी है, इसलिये वे तो चुपचाप आगे बढ़ गये, किन्तु पार्वती जी भला कैसे उपेक्षा कर सकती हैं। माता का हृदय तो दया से परिपूर्ण होता है। भगवान् ने माता का हृदय कितना ममतामय, दया और प्रेम से परिपूर्ण बनाया है। सन्तान के रुदन को सुनकर माँ का हृदय पिघलने लगता है। हाय! मातृहृदय भी विधाता की कैसी अतुलनीय अद्भुत कारीगरी है। पार्वतीजी ने शिवजी को रोककर कहा— "नाथ! तनिक ठहरो तो सही, यह बालक कैसा रो रहा है, पता नहीं किस वज्र हृदय माता ने इस फूल से नन्हें बालक को यहाँ अकेला छोड़ दिया है।"

शिवजी ने उपेक्षा के साथ कहा—"तुम्हें इन झंझटों से क्या मतलब ? यह तो संसार है कोई रोता है, कोई हँसता है। जिसका होगा उठा ले जायगा। आओ चलो चलें, गङ्गाजी में स्नान करने में देर होती है।"

भला माँ, जननी कब मानने वाली थीं उन्होंने बड़ी दीनता से कहा—"हाय ! नाथ ! आपको थोड़ी भी दया नहीं। कैसा भोला बालक है, बरफ में ठिठुर रहा है। इसे आप आश्रय दीजिए।"

शिवजी ने हँसकर कहा—"यह बालक नहीं बड़ा मायावी है। सब दया मया भूल जाओगी। जहाँ तुमने इसे उठाया कि बस फिर सब जगह कब्जा कर लेगा। हाथ मलती रह जाओगी। सीधे से अपना काम करो। इसका रोना सच्चा नहीं। बनावटी है, बड़ा कांइयाँ है। इसके चक्कर में मत फँसो।"

पार्वतीजी कब मानने वाली थीं। वे बोलीं—"नहीं महाराज ! चाहे जो हो मैं तो इस बालक को आश्रय दूँगी ही।"

शिवजी हँस पड़े। भगवान् की इच्छा को कौन मेंट सकता है। बोले—"तुम्हारी इच्छा, उठा लो किन्तु मैं कहता हूँ तुम पछताओगी।" पार्वती ने नहीं माना। बच्चे को उठाकर बड़ी सावधानी से घर में सुला आईं और फिर गंगा स्नान को चली आईं। बस, इतने में ही भगवान् ने पूरे घर पर दखल जमा लिया। पार्वतीजी चकित रह गईं। शिवजी हँस पड़े। बोले क्यों ? देखी इस बालक की चालबाजी। अच्छा, अब ये यहीं रहें हम अपना अड्डा दूसरी जगह जमावेंगे। यह कहकर शिवजी पास ही ढाई योजन की दूरी पर दूसरे पहाड़ की चोटी पर जाकर रहने लगे जो 'केदारनाथ' के नाम से विख्यात है। केदारनाथ सचमुच बद्रीनाथ जी से दूर नहीं हैं। १०।१५ मील ही होगा। एक किंवदन्ती है कि पहिले बद्रीनाथ, केदारनाथ,

गङ्गोत्री तथा यमुनोत्री का एक ही पुजारी रहता था। उसे ऐसी शक्ति प्राप्त थी कि वह चारों जगह एक दिन में पूजा कर आता था। एक दिन जाते समय रास्ते में उसने कुछ खा लिया। जूठा मुँह जाने से और लोलुपता करने से उसकी वह शक्ति नष्ट हो गई और तब से चारों धाम के पृथक्-पृथक् पुजारी नियुक्त हुए।

× × × ×

इस किंवदन्ती में चाहे कुछ तत्व हो या न हो, किन्तु यह तो निर्विवाद है कि ये चारों ही चोटियाँ बिलकुल पास-पास ही हैं। अब भी वहाँ के भेड़ वाले चले जाते हैं। थोड़े दिन हुए पर्वतारोही विदेशी यात्री १८-१९ कुलियों को लेकर सतपथ के रास्ते से नारायण पर्वत की घाटी से केदारनाथ जी के लिए चढ़े थे। उन्हें रास्ता नहीं मिला इसलिये ठीक केदारनाथ तो नहीं पहुँच सके किन्तु वे केदारनाथ के पास ऊखीमठ में तीसरे दिन पहुँचे गए थे। तुङ्गनाथजी की चोटी से चारों चोटियाँ दिखाई देती हैं। तुङ्गनाथ सचमुच इन सब चोटियों से ऊँची चोटी है और यहाँ से जैसा पर्वतों का मनोहर दृश्य दिखाई देता है वैसा कहीं से भी दिखाई नहीं देता।

× × × ×

हाँ, तो शिवजी छले तो गये,किन्तु फिर भी घर तो उनका ही था। अपना सनातन स्वत्व-वंश परम्परा का कब्जा कायम रखने के लिये अपना पुराना घर यहाँ भी रख छोड़ा। अंश रूप से यहाँ भी रहते हैं। जो आदि केदार के नाम से विख्यात है। न्याय तो यही कहता है कि पहिले पुराने घर वाले से पूछकर मिलकर तब दूसरी जगह जाना चाहिये। आगे जैसी जिसकी इच्छा। आज भी श्रावण के दिनों में आदि केदारजी की मूर्ति जब स्थल कमलों से सुसज्जित की जाती है और पंडितगण उनकी वेदमन्त्रों से पूजा करते हैं उस समय का दृश्य बड़ा ही मनोहर होता है—

कर धृत जपमालाः शान्ति सन्तोष भाजः ।
कृतनति परनित्य प्रार्थनाश्चन्द्र मौलौ ॥
हर चरण सरोज ध्यान विज्ञान मूर्तिं ।
व्यथित जन मनोजाः सर्वभावान्नितान्तम् ॥*

(स्क० पु० व० २ अ० १९ श्लोक०)

---

* जिन्होंने हाथों में जपमाला धारण की है, जो शान्ति सन्तोष के भाजन हैं, जो नम्र होकर चन्द्रमौलि भगवान् की प्रार्थना करते हैं, ऐसे बहुत से भव्य भक्तगण ।

१०—अग्नि तीर्थ वा तप्त कुण्ड

वह्नितीर्थं परि भ्राजद् भगवच्चरणान्तिके ।
केदाराख्यं महालिङ्ग दृष्ट्वानो जन्म भाग्भवेत् ॥
(स्क० पु० व० २ अ० २१ श्लो०)

हाँ, तो अब आप आदि केदार भगवान् के दर्शन करके नीचे २-४ सीढ़ी और उतरिये । बस, आपको धूएँ से, ज्यादा यात्रियों के कोलाहल से पूर्ण, गरम जल से लबालब भरा अग्नि तीर्थ या तप्त कुण्ड मिलेगा । यह परम पावन तीर्थ है । इसके माहात्म्य के बारे में लिखा है, कि जैसे सुवर्ण में कितना मैल ही क्यों न भरा हो जैसे वह सोना अग्नि में पड़ने से पवित्र हो जाता है, उसी प्रकार कितना भी पापी क्यों न हो इस अग्नि कुण्ड में स्नान करने से उसके सब पाप धुल जाते हैं । अलग हो जाते हैं । अग्नि को इस बरफ से पूर्ण देश में इतने नद नदियों और पर्वतों को लाँघकर आने की क्यों आवश्यकता हुई इस सम्बन्ध में पौराणिक गाथा है ।

भृगु महर्षि की पत्नी पर कोई असुर आसक्त हो गया । शायद कुमारावस्था में भृगु की पत्नी की उस राक्षस से विवाह की बात चली होगी । वह असुर तभी से ताड़ में था कि मैं किसी तरह भृगु की पत्नी को ले आऊँ । एक दिन भृगु आश्रम में नहीं थे । आश्रम में केवल अग्निहोत्र का अग्नि था । उस राक्षस ने इसे ही उपयुक्त समय समझकर आश्रम में प्रवेश किया । "अग्निदेव स्त्री से सगाई की बात हुई थी न ?" अग्नि ने सीधे स्वभाव से कह दिया—"हाँ, हुई तो थी ।" बस अग्नि को साक्षी बनाकर वह गर्भवती पत्नी को उठा ले गया । मुनि पत्नी

रोती चिल्लाती जाती थी। रास्ते में उसका गर्भ च्यवित [प्रसव] हो गया उससे च्यवन महर्षि हुए। उनकी दृष्टि पड़ते ही उनके ब्रह्म तेज से वह राक्षस भस्म हो गया। थोड़ी देर बाद महर्षि आए अपनी पत्नी को आश्रम में न देखकर महर्षि ने अग्नि से पूछा—"अग्निदेव! मेरी पत्नी कहाँ गई?" अग्नि ने कहा—"महाराज जी, ऐसे-ऐसे वह राक्षस आया था। मुझसे उसने पूछा। मैंने जो बात सत्य थी वह कह दी।"

अब क्या था, ऋषि के रोष का ठिकाना नहीं रहा। ऋषि मारे क्रोध से काँपने लगे। वे अग्निदेव को डाँटकर बोले—"तुमने क्यों कहा? मेरे पीछे तुमने यह गोलमाल क्यों होने दी? जाओ मैं तुम्हें शाप देता हूँ तुम सर्वभक्षी हो जाओ।"

अग्नि के होश उड़ गये। इन ऋषियों की भी उलटी खोपड़ी है, पता नहीं ये लोग किस समय किस धुन में भर जाते हैं। इनकी न उलटी मालूम पड़े न सीधी। सच कहो तो आफत झूठ कहो तो भी। अपना-सा मुँह लेकर अग्नि चुप हो गए।

एक बार तीर्थों के राज प्रयागराज में समस्त ऋषि मुनियों का एक महा सम्मेलन हुआ। आजकल जहाँ दारागञ्ज है वहीं पर एक दशाश्वमेध घाट है जहाँ दशाश्वमेधेश्वर शिवजी का अब भी मन्दिर है। वहीं ऋषि मुनियों का पड़ाव पड़ा, वहीं विशाल पंडाल बनाया गया। ऐसा मालूम पड़ता है कि सम्मेलन के सभापति भगवान् व्यासजी थे। अग्नि ने आकर ऋषि मुनियों से प्रार्थना की। महाराज ऐसे-ऐसे भृगु महर्षि ने मुझे सर्वभक्षी बना दिया है। उसका कोई उपाय बताइये। व्यास भगवान् उस समय गङ्गा स्नान को गये थे। जब लौटकर आये तो अग्नि ने अपना प्रस्ताव उपस्थित किया। सब सुनकर व्यास जी बोले—"अग्निदेव! तुम घबड़ाओ मत यह तो कोई बड़ी बात नहीं। मैं तो बद्रीनाथ में ही रहता हूँ। इसीलिये मैं बदरी विशाल के

विशाल प्रभाव को जानता हूँ। तुम एक काम करो बदरीनाथ धाम में चले जाओ। वहाँ तुम्हारे सब दोष छूट जायंगे।"

अग्निदेव ने भगवान् व्यास को आज्ञा शिरोधार्य की और सीधे बद्री आश्रम पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने घोर तप किया। तप से श्रीमन्नारायण सन्तुष्ट हुए और अग्नि को दर्शन दिया। अग्नि ने भगवान् की स्तुति की तब भगवान् ने वर माँगने को कहा।

अग्नि हाथ जोड़कर नम्रता से बोले—"प्रभो! यही वरदान हमें दीजिये कि हमारा सर्वभक्षीपने का दोष छूट जाय।"

भगवान् हँसे और बोले—"अरे, तुम यह क्या वर माँगते हो? तुम्हारा दोष तो क्षेत्र के दर्शन मात्रसे ही छूट गया, अब तुम निष्पाप हो गये। अब तुम यहाँ पर आकर यहाँ आने वालों के सब पापों को छुड़ाया करो।"

तबसे अग्नि एक रूप से वहीं जलधारा के रूप में रहने लगे। पाप को छुड़ाते हैं या नहीं इसे तो अग्नि जाने और भगवान् जाने किन्तु इतना तो प्रत्यक्ष है कि कैसा भी थका हुआ प्राणी जावे तप्त कुण्ड में स्नान करते ही सब थकावट दूर हो जाती है। शरीर एकदम हलका हो जाता है मानों शरीर से मनों भार दूर हो गया हो। गरम जलका बहुत बड़ा स्रोत निकलता है। वह तीन नलियों में तीन तरफ निकाला जाता है। एक धारा तो अलकनन्दा जी की ओर गिरती है जो वहाँ के दो छोटे छोटे कुण्डों में भरकर निरन्तर अलकनन्दा में गिरती रहती है। एक नाली तप्त कुण्ड के उस ओर जाती है जिसमें लोग वस्त्र आदि धोते हैं। एक धारा पत्थर के मुख से निकलकर तप्त कुण्ड में पड़ती है। उसे चाहे जब बन्द करदें चाहे जब खोल दें। हाल का निकाला हुआ जल बहुत अधिक गरम होता, किन्तु थोड़ी देर तप्त कुण्ड में भरा रहने से ठंडी हवा लगने से वह नहाने योग्य हो जाता है। पहिले तो शरीर डालते ही बड़ा गरम लगता

है जहाँ कुण्ड के अन्दर उतर गये फिर चाहे घंटों स्नान करते रहो। बदरीनाथ की ठंड में तप्त कुण्ड का जल बड़ा ही सुखद प्रतीत होता है। वहाँ का जीवन अमृत है। लोग उस जल को पीते नहीं। उसमें कुछ गन्धक का अंश है। पित्त प्रकृति वालों के लिये वह विशेष अनुकूल नहीं पड़ता। उन्हें बहुत देर जल में रहने से बेहोशी हो सकती है। किन्तु वात और कफ प्रकृति वालों के वह बहुत ही अनुकूल है। एक तो बराबर पीते भी रहे।

तप्त कुण्ड का पुराणों में बड़ा महत्व है। वहाँ दान देने का, ब्राह्मण भोजन कराने का अक्षय पुण्य है। और तीर्थोंसे वहाँ दान, पुण्य, स्नान, जप, होम, सन्ध्या, देवार्चन का कोटिगुणा फल बताया गया है। वहाँ के स्नान का फल बताते हुये यहाँ तक कहा है—

चान्द्रायण सहस्रैस्तु कृच्छैः कोटि भिरेव च।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तत्स्नात् वन्हितीर्थतः॥

(स्क० पु०)

अर्थात हजारों चन्द्रायण व्रतों से तथा करोड़ों कृच्छ व्रतों से जो फल मिलता है वह फल अग्नि-तीर्थ में स्नान करने से मिलता है।

आप कहेंगे तब तो वहाँ रहने वालों के पाप रहेंगे ही नहीं। बात तो ठीक ही है, किन्तु एक बात और है। तीर्थों में तीर्थ बुद्धि से ही रहने पर फल होता है। मनुष्य अजितेन्द्रिय होने से तीर्थों में रहकर पाप करते हैं यह बड़ा अपराध है। जैसे तीर्थों में पुण्य क्षय होता है वैसे पाप भी क्षय होता है। दूसरे जगह किया हुआ पाप तीर्थों में नष्ट हो जाता है किन्तु तीर्थों में किया हुआ पाप वज्रलेप होता है वह फिर कभी मिटता नहीं। इसलिये प्रायः तीर्थ वासी मछली, कछुए होकर जन्मते हैं। अग्नितीर्थ के महात्म्य में स्पष्ट लिखा है—

ज्ञानेन मोहवशतः पापं कुर्वंति येऽधमाः ।
पैशाची योनिमायान्ति यावदिन्द्राश्चतुर्दश: ॥
अनाश्रमी चाश्रमी वा यावद् देहस्य धारणम् ।
न तीर्थे पावके कुर्यात् पातकं बुद्धि पूर्वकम् ॥*

(स्क० पु० व० ३ अ० ११,१२ श्लोक)

यक तेषां बहुभिर्यज्ञैः किं मानैर्नियमैर्यमैः ।
येषां पावकतीर्थेऽस्मिन् स्नानदशदिने भवेत् ॥+

---

* ज्ञान से या मोह से जो अग्नि तीर्थ में पाप करते हैं वे तब तक पिशाच योनि को प्राप्त होते हैं जब तक १४ इन्द्र बदलते हैं । कल्पपर्यन्त चाहे आश्रमी हो या यति परमहंस ही क्यों न हो जब तक देह रहे तब तक अग्नि तीर्थ में कभी-भी बुद्धिपूर्वक पाप नहीं करने चाहिये ।

+ उन लोगों को यज्ञों से क्या प्रयोजन ? बहुत सी दान, यम, नियम की भी आवश्यकता नहीं । जिनका १० दिन अग्नितीर्थ में स्नान हो गया ।

—:—

११—पञ्चशिला

नारदी नारसिंही च वाराही गरुड़ी तथा।
मार्कंडेयीती विख्याताः शिला सर्वार्थ सिद्धिदाः ॥*

(स्क० पु० ३ अ० २०)

तप्त कुण्ड के समीप परम पावन पौराणिक पञ्च शिलायें हैं। इनके दर्शन का बड़ा माहात्म्य है। सबसे पहिली गरुड़ शिला है। आदि केदार जी के मन्दिर को अलकनन्दा जी की तरफ से जो शिला रोके हुए खड़ी है, उसी का नाम गरुड़ शिला है। वह तप्त कुण्ड के सामने पड़ती है। अग्नि तीर्थ का उष्ण स्रोत इसी शिला के नीचे से निकल कर तीन चार नालियों द्वारा तप्त कुण्ड में तथा इधर जाता है। आजकल मन्दिर के सेवक उसमें बैठकर श्री भगवान् के लिये केसर चन्दन घिसते हैं और प्रसादी चंदन की टिकिया बनाकर गरम जल से गरम हुए पत्थरों पर रखकर उन्हें सुखाते हैं।

१—गरुड़ शिला

वध्र्याः दक्षिणे भागे गंधमादनशृंगके।
गरुड़स्तपश्चातेपे हरिवाहनकाम्यया ॥+

(स्क० पुराण)

---

* नारद शिला, नृसिंहशिला, वाराही शिला, गरुड़ शिला और मार्कण्डेय शिला ये पाँच सिद्धि देने वाली पांच शिलायें हैं।

+ बदरिका आश्रम के दक्षिण भाग में गंधमादन पर्वत के शृंग पर गरुड़ जी ने भगवान् का वाहन बनने की इच्छा से तप किया था।

जब बदरीनाथ जी को जाते हैं तो पीपल चट्टी से ४ मील ऊपर गरुड़ गंगा मिलती हैं। वहाँ गरुड़जी का मंदिर है। विष्णु रूप में गरुड़ जी की बड़ी ही मनोहर मूर्ति है। यहाँ से आगे पाताल गंगा हैं और फिर जोशीमठ। गरुड़ गंगा से बदरीनाथ २३-२४ मील है। गरुड़ गंगा से वदरीनाथ उत्तर में है।

गरुड़ गंगा भगवती अलकनन्दा में मिली हैं। संगम होने से इसका नाम गरुड़ प्रयाग भी है। गरुड़ गंगा यहाँ से ४-५ मील ऊपर से ही निकली हैं। जहाँ से गरुड़ गंगा निकलती हैं वह गंधमादन पर्वत का ऊँचा शिखर है। वहाँ कई कोस लम्बा पहाड़ के उपर मैदान भी है, जाड़ों में वह बरफ से ढक जाता है, गरमियों में वहाँ पहाड़ी लोग बकरी आदि चराने जाते हैं। गरुड़ गंगा से थोड़ा पीछे हटकर धर्मशाला के पास खड़े होकर जहाँ से गरुड़ गंगा निकलती हैं वहाँ से देखो तो दोनों पहाड़ प्रत्यक्ष ऐसे दिखाई देते हैं मानों गरुड़ जी अपने पङ्खों को फैलाये बैठे हैं। इस लिये इस गाँव का नाम पङ्खी है। यहाँ भगवान् का एक मन्दिर है, जो श्री वदरीनाथ मन्दिर के ही अन्तर्गत है और जिसे मन्दिर से सालाना बन्धान मिलता है। इस गंगा का नाम गरुड़ गंगा क्यों पड़ा और गरुड़ जी यहाँ तप करने क्यों आये इस सम्बन्ध में एक पौराणिक कथा है।

भगवान् कश्यप जी की पत्नियों में से विनता और कद्रू दो बहिनें थीं। विनता बड़ी थीं कद्रू छोटी थी। एक दिन दोनों बहिनों में विवाद चला कि सूर्य भगवान् के घोड़े का रंग कैसा है। विनता ने कहा सफेद है कद्रू ने कहा काला है। विवाद यहाँ तक बढ़ा कि आपस में शर्त लगी। विनता ने कहा यदि काला हो तो मैं तुम्हारी आजन्म दासी हो जाऊँगी और सफेद हो तो तुम मेरी दासी हो जाना। विनता के दो पुत्र थे अरुण और गरुड़, कद्रू के असंख्यों नाग थे। बात यह थी यह दोनों सन्तान की

इच्छा से कश्यप जी के समीप गईं। कश्यप जी ने कहा—"तुममें से एक तो सर्वगुण सम्पन्न दो पुत्र माँग लो और एक दूसरे बहुत से पुत्र माँग लो।" कद्रू ने बहुत से माँगे, सो उसके तो क्रूरकर्मा नाग और सर्प हुए। विनता के दो अण्डे हुए कश्यप जी ने कहा—इनकी हजार वर्ष तक सेवा करना तब इसमें से दो तेजस्वी पुत्र होंगे। बीच में ही विनता का धैर्य टूट गया। उसने सोचा—मेरी बहिन कद्रू के तो असंख्यों लड़के हो गये हैं। कोई उसके पैरों से चिपटे हैं कोई गोद में बैठते हैं, किन्तु मेरे ये अण्डे बढ़ते ही नहीं पता नहीं मेरे पति ने मुझसे हँसी तो नहीं की। देखूँ तो सही अण्डों में है क्या ?" यह सोचकर जो बड़ा अण्डा था उसे बीच से फोड़ दिया। अभी आधे ही दिन हुए थे इसलिए उसमें से एक आधे शरीर का ही बड़ा तेजस्वी बालक निकला। उसका ऊपर का शरीर सब था। पैर आदि नहीं थे माता बड़ी घबड़ाई। तब उस तेजस्वी लाल रङ्ग के बालक ने कहा—"माता तुमने लोलुपता वश बीच में ही अंडे को फोड़ दिया इससे मेरा शरीर पूरा भी नहीं बन पाया। अस्तु अब इसे बीच से मत फोड़ना। इस दूसरे अंडे से एक परम बलवान पुत्र होगा, जो तुम्हारा उद्धार करेगा।" इतना कहकर उन्होंने सूर्य भगवान् की स्तुति की। सूर्य ने उन्हें अपना सारथी बना लिया। जो बिना पैर के बैठे बैठे भूमण्डल की रोज प्रदक्षिणा कर लेते हैं। प्रातःकाल सूर्योदय से पहिले अरुणोदय होते हैं। अब विनता के तो कोई बच्चा नहीं। जब उपरोक्त शर्त लगी थी तब कद्रू के बहुत से सर्प थे। उनसे उसने सब बात कही, सर्पों ने कहा—"सूर्य के घोड़े का रङ्ग तो सफेद है।" यह सुनकर कद्रू बड़ी घबड़ाई। उसने कहा—"तुम सब नाग, काले हो जाकर सूर्य के घोड़ों से लिपट जाओ।" कुछ ने इसे स्वीकार नहीं किया। इस पर माता ने उन्हें शाप दिया। "तुम जन्मेजय के सर्प यज्ञ में जल मरोगे।"

कुछ ने मान लिया और वे जाकर घोड़ों से लिपट गये। विनता विचारी ठगी गई उसे दासी बनना पड़ा। बड़ी बहिन होकर भी सेवा करती रहती।

हजार वर्ष पूरे होने पर दूसरे अंडे को फोड़कर गरुड़ जी उत्पन्न हुए। वे महाबली थे, किन्तु सर्प उन्हें दासी पुत्र कहकर उनसे सेवा कराते उनकी पीठ पर चढ़ कर इधर-उधर जाते। अपनी माता से दासीपने का सब समाचार सुनकर गरुड़ जी दुखी हुए उन्होंने सर्पों से कहा—"तुम लोग हमें किसी भी शर्त पर दासत्व से मुक्त कर सकते हो ?" सर्पों ने कहा—"हाँ" यदि तुम स्वर्ग में से हमें अमृत ला दो तो हम तुम्हें दासत्व से मुक्त कर देंगे।"

महाभारत तथा अन्य पुराणों में गरुड़ जी की बड़ी लम्बी कथा है यहाँ उस सबका प्रयोजन नहीं। अन्त में गरुड़जी अपने पराक्रम से देवताओं से लड़-भिड़कर स्वर्ग से अमृत का कलश ले आये। सर्पों के सामने रखकर वे माता के सहित सर्पों के दासत्व से मुक्त हुए। जैसे को तैसा फल मिलता है, अमृत को इन्द्र फिर उठा ले गये। सर्प कोरे ही रह गये। जैसे उन्होंने छल से विनता को दासी बनाया था उसी प्रकार वे भी छले गये।

अब गरुड़ जी ने भगवान् के वाहन होने की इच्छा से बदरिकाश्रम के समीप जाकर ३२ हजार वर्ष तक एक पैर से खड़े होकर घोर तप किया। उनके तप से प्रसन्न होकर भक्त वत्सल भगवान् विष्णु उनके सम्मुख प्रकट हुए। अपने सामने भगवान् को देखकर गरुड़जी पाद्य, अर्घ्य, आचमन के लिये जल खोजने लगे। वहाँ जल कहाँ था। इसलिये पर्वत फोड़कर त्रिपथगामिनी पंचमुखी गङ्गा प्रकट हुईं। उनसे गरुड़जी ने भगवान् की पूजा की। पूजा के अनन्तर गद्‌गद कण्ठ से उन्होंने भगवान् की स्तुति की। उनकी पूजा स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् ने वर

माँगने को कहा। तब गरुड़ जी ने तीन वर माँगे। (१) मैं आपका वाहन होऊँ। (२) मुझे देवता, गन्धर्व, मनुष्य कोई भी न जीत सकें। (३) यह शिला मेरे नाम से विख्यात हो इसके स्मरण से मनुष्य को विष से भी व्याधि न हो। भगवान् ने तथास्तु कहा। उसी दिन से वह गङ्गा,गरुड़ गङ्गा कहलाई। यात्री अब भी बुड़की मार के गरुड़ गङ्गा में से पत्थर ले जाते हैं। पंडों का कहना है इस पत्थर से सर्प विष का भय नहीं होता।

भगवान् ने तीनों वर देकर कहा—"तुम नारद सेवित मेरे वदरिकाश्रम परम पावन क्षेत्र में जाकर ३ दिन उपवास करो। वहाँ मेरे दर्शन अत्यन्त सुलभ हैं।" इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। गरुड़ जी भी अग्नि तीर्थ के समीप वदरिकाश्रम में जाकर एक शिला पर बैठकर व्रत उपवास करने लगे। उस क्षेत्र में भगवान् की स्थिति समझ और भगवान् के दर्शन पाकर परम प्रसन्न होते हुए वे अपने स्थान को चले गये। जिस शिला पर बैठकर गरुड़जी ने व्रत उपवास किया था उस शिला का नाम गरुड़ शिला हुआ। आज भी जो उस शिला के दर्शन करते हैं परम पुण्य के भागी बनते हैं।

२—नारद शिला

नारदो भगवांस्तेपे तपः परम दारुणम्।
दर्शनार्थं महाविष्णोः शिलायां वायु भोजनः ॥*

नाम नारद शिला विख्यात है। वही शिला अलकनन्दाजी तक है, उसके नीचे गंगाजी के बीच में ही नारद कुण्ड है। उसमें होकर अलकनन्दा की वेगवती तीक्ष्ण धारा सदा वहती रहती है।

---

* भगवान् नारद ने विष्णु भगवान् के दर्शनों के निमित्त केवल वायु का आहार करते हुए जिस शिला पर बैठकर परम दारुण तप किया है, वह नारदीय शिला प्रसिद्ध है।

उसमें कोई मनुष्य घुस नहीं सकता। हाँ, जब कार्तिक में अलकनन्दा का जल घट जाता है और धारा की तीक्ष्णता कम हो जाती है तो लोग उस धारा में घुसकर भी स्नान करते हैं। कार्तिक में हमने उसमें स्नान किया है। नीचे भगवती गंगाकी शीतलवाहिनी धारा है ऊपर से गरम जल की धारा गिरती है। बीच नदी में गुफा-सी दीख पड़ती है। उसमें स्नान करने में बड़ा आनन्द आता है। क्वार के दशहरे के बाद उस गुफा रूपी कुण्ड में प्रवेश कर सकते हैं। वैशाख ज्येष्ठ में जाने वाले यात्रियों को तो नारद कुण्ड के दर्शन भी दुर्लभ हैं।

इस नारद शिला पर नारद जी ने भगवान् के दर्शन की इच्छा से ६० हजार वर्ष तक तप किया था। तब भगवान् की मूर्ति नहीं थी। तपस्या से प्रसन्न होकर वृद्ध ब्राह्मण के रूप में भगवान् ने उन्हें दर्शन दिया। तब नारद जी ने पूछा—"हे प्रभो! आप इस निर्जन वन में कैसे आये? आप कौन हैं?" तब भगवान् ने अपना चतुर्भुज रूप दिखाया। भगवान के दर्शन पाकर नारद जी आनन्द में विभोर होकर उनकी स्तुति करने लगे। उनके तप से तथा उनकी प्रेममयी स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् ने उनसे वर माँगने को कहा। नारदजी ने दीनता के साथ तीन वर माँगे—(१) आपके चरणों में मेरी अचला भक्ति रहे। (२) मेरी शिला के समीप आपकी स्थिति सदा रहे। (३) जो मेरे इस तीर्थ का दर्शन करे, इसमें स्नान करे, आचमन करे अथवा पूजन करे उसे फिर मनुष्य देह प्राप्त हो।

भगवान् ने तीनों वर दिये। तभी से इस शिला का नाम नारद शिला और इस कुण्ड का नाम नारद कुण्ड पड़ा। भगवान् की वर्तमान मूर्ति इसी नारद कुण्ड से निकाल कर स्थापित की गई है।

३—मार्कण्डेय शिला

किमिति क्लिश्यते माभोतीर्थाटनपरिश्रमैः ।
वदर्यारण्यं महाक्षेत्रं सान्निध्यं नित्यतो हरे ॥*

नारद कुण्ड के समीप ही अलकनन्दा की धारा में मार्कण्डेय शिला है। मार्कण्डेय जी का मार्कण्डेय पुराण ही अलग है और सभी पुराणों में उनकी बड़ी विस्तार से कथा है पहिले ये अल्पायु थे। भगवान् की आराधना से इन्होंने ७ कल्प की आयु प्राप्त की। ये बड़े पुराने ऋषि हैं। प्रलय में भी ये बने ही रहते हैं।

एक वार मार्कण्डेय जी अनेक तीर्थों की यात्रा करते हुए श्री मथुरापुरी में आये। इधर तप से निवृत्त होकर और भगवान् से वर पाकर बद्रिकाश्रम से घूमते घामते नारदजी भी मथुरा पहुँच गये। दोनों भाई की भेंट हुई। कुशल प्रश्न के अनन्तर बातें होने लगीं। नारदजी ने पूछा—"कहो मुनिवर! कहाँ-कहाँ से आना हुआ?" मार्कण्डेयजी बोले—"अजी क्या बतावें? यह तीर्थ-यात्रा भी बड़ी कठिन साधना है। दिन भर चलते रहो, चलते २ पैर थक जाते हैं, शरीर शिथिल हो जाता है। मैं प्रभास, गया, काशी, प्रयाग, अयोध्या, मायापुरी, कांची, उज्जैन, द्वारिका सभी जगह घूमघाम कर यहाँ मथुरापुरी में आया हूँ।"

नारदजी ने कहा—"तुम क्यों व्यर्थ भटक रहे हो। एकहि साधे सब सधे। तुम मूल को क्यों नहीं पकड़ लेते। बद्रिकाश्रम में चले जाओ, सब तीर्थों का फल इकट्ठा ही मिल जाय। वहाँ तो भगवान् सदा ही बने रहते हैं। और क्षेत्रों को भले ही भगवान् छोड़ भी दें, किन्तु बद्रिकाश्रम को कभी नहीं छोड़ते।"

---

* साधो! तुम इधर-उधर तीर्थ यात्रा के श्रम से दुखी होकर क्यों भटकते फिरते हो? अरे, तुम बद्रिकाश्रम क्यों नहीं जाते, जहाँ नित्य ही भगवान् का सान्निध्य है।

मार्कण्डेय जी के ध्यान में बात बैठ गई। वे तीनों धाम तो कर ही आये थे। बद्रिकाश्रम उन्हें जाना ही था। नारदजी से वहाँ का माहात्म्य सुनकर उत्साह और बढ़ गया। जैसे-तैसे बद्रिकाश्रम पहुँचे। नारद बाबा ने अपनी शिला का पता ठिकाना बता ही दिया था। उसी के एक दम समीप सटी हुई दूसरी शिला पर मार्कण्डेयजी बैठ गये। सम्भव है क्वार कार्तिक का ही महीना हो, बरसात में तो मार्कण्डेय शिला के दर्शन भी दुर्लभ हैं। तीन दिन उपवास किया, झट तीसरे दिन भगवान् प्रकट हो गये। मार्कण्डेय जी को बहुत तपस्या भी न करनी पड़ी। स्तुति पूजन के अनन्तर वरदान देने की बारी आई। भगवान् के कहने पर मार्कण्डेय जी ने तीन वर माँगे। (१) आपके दर्शन तथा पूजन में मेरी अविचल भक्ति हो और (२) मेरी शिला के पूजन से मेरी अविचल भक्ति हो और (३) मेरी शिला के समीप आपकी स्थिति रहे।" तथास्तु कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। मार्कण्डेय जी भी वरदान पाकर कृत कार्य होकर अपने पिता के आश्रम को चले गये। तब से इस शिला का नाम मार्कण्डेय शिला हुआ। किन्तु नारदजी ने एक बड़ा गजब किया। अपनी नारद पुराण में मार्कण्डेय शिला का नाम भी नहीं लिया। वहाँ नारद, नारसिंही, बाराही, गारुड़ी और नर-नारायण ये पाँच शिला गिनाई हैं। नर-नारायणी शिला को अग्नि कुण्ड के समीप बताया है। या तो मार्कण्डेयी शिला को ही नर-नारायणी शिला कहा हो या नर-नारायणी शिला कोई दूसरी ही हो। किन्तु नारदजी की यह बात हमारी समझ में आई नहीं कि अपने ही आप तो मार्कण्डेयजी को बदरी महात्म्य सुनाकर भेजा और फिर स्वयं ही नाम भूल गये। अब लोगों के नाम से शिला नहीं होती तो इधर-उधर कोयले से नाम ही लिख आते हैं नाम अमर रहने की भी कैसी प्रबल लालसा है।

४—नरसिंह शिला

नृसिंहोऽपि शिलारूपी जलक्रीडा परोऽभवत् ।

(स्क० पु०)

श्री अलकनन्दा गङ्गा के बीच में नारद कुण्ड से कुछ ऊपर जल में सिंहाकृति एक शिला अवस्थित है । उसी का नाम नृसिंह शिला है । नृसिंह जी यहाँ क्यों आये, इस सम्बन्ध में भी एक पौराणिक गाथा है ।

हिरण्यकशिपु को मार कर, प्रह्लाद की रक्षा करके तथा उन्हें अभय दान देकर भगवान् हिरण्यकशिपु के सिंहासन पर जा बैठे । देवता इस अद्भुत रूप को देखकर थर-थर काँपने लगे । एक दूसरे से संकेत से कहने लगे—तुम आगे बढ़ो, तुम आगे बढ़ो, किन्तु आगे बढ़ने की हिम्मत किसी की भी न पड़ी । सबने ब्रह्माजी से कहा । वे बोले—"भाई, मैं तो बूढ़ा हूँ तुम जवानों को पैर बढ़ाना चाहिए । तुम लोग चढ़ती उमर के हो हिम्मत बाँधो । साहस के सामने कौन काम कठिन है ।" सब देवता चन्द्रशेखर भोले बाबा की ओर ताकने लगे । वृज मकर-ध्वज शङ्कर बोले—"बात तो कोई बड़ी भारी है नहीं, किन्तु डर एक है ये भी आज तामसी स्वभाव के बने हैं, हम तो जन्म के ही तमोगुणी हैं । दोनों लड़ पड़े तो तुममें से बीच बिचाव कौन करेगा ? है किसी में हिम्मत ?" सब घबड़ाये, अभी तक एक थे अब एक और एक ग्यारह होना चाहते हैं । क्रोध हमेशा काम से शान्त होता है । काम क्रोध से शान्त होता है । इस समय रौद्र रस की आवश्यकता नहीं शृङ्गार से ही काम चलेगा । लक्ष्मीजी से प्रार्थना की—"आप के तो प्राणनाथ ही हैं, लाओ ठीक ठिकाने पर ।" लक्ष्मी जी को अपने ऊपर बड़ा अभिमान था वे आगे बढ़ीं, की नृसिंह ने हुँकार भर के आँखें निकालीं, अपने बड़े-बड़े

नख उठाकर जीभ से ओठों को चाटते हुए जोरों से घुड़क दिया। लक्ष्मीजी भागीं कि बाप रे बाप ये तो कोई दूसरे ही हैं।

जब सब हिम्मत हार गये तब धीरे-धीरे ब्रह्माजी से बोले—"तुम लोग क्या चाहते हो मुझसे वर माँगो।"

देवताओं ने एक स्वर से कहा—"प्रभो! हम लोग यही वर माँगते हैं कि अपने इस अद्भुत रूप को समेट लीजिये। हम डरे हुए हैं अपना वही मनोहर चतुर्भुज रूप हमें दिखाइये।

नृसिंह भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है, लो अब मैं बहुत ठण्डे देश में जाता हूँ। जहाँ मेरी यह क्रोध की गरमी शान्त हो जाय।" यह कहकर भगवान् दौड़ते-दौड़ते विशालापुरी बदरिकाश्रम में आ गये। वहाँ क्रोध शान्त करने के लिये अलकनन्दा के जल में घुस गये। ठंडे-ठंडे जल में क्रीड़ा करने से नृसिंह भगवान् बड़े सौम्य सुन्दर और भोले बन गये। उनके इस सौम्य रूप को देखकर और प्रणाम करके जो आकाश मार्ग से देवता साथ आये थे वे अपने-अपने स्थान को लौट गये। जब बदरिकाश्रम के ऋषि मुनियों ने सुना कि नृसिंह भगवान् भी इस पुण्य भूमि में पधारे हैं तो सब अलकनन्दा के दोनों किनारों पर खड़े होकर नृसिंह भगवान् की स्तुति करने लगे। भगवान् हँसे और बोले—"तुम क्या चाहते हो? ऋषि मुनियो!"

ऋषियों ने कहा—"भगवन्! हम और क्या चाहेंगे इस जंगल में। हमें तो एक साथी चाहिये जो सब भयों से हमारी रक्षा करता रहे। इसलिये हमारी यही प्रार्थना है आप अब विशाला-बदरीपुरी को छोड़कर कहीं न जायँ।"

भगवान् बोले—"अच्छी बात है, रहेंगे हम। किन्तु हमारे इस रूप से सब लोग डर भी सकते हैं। हम शिला रूप में रहेंगे, जिससे कि किसी को डर भी न लगे और हमारी स्थिति भी बनी रहे।"

उसी दिन से नृसिंह भगवान् यहाँ शिला रूप से निवास करते हैं। जो यात्री भक्ति भाव से नृसिंह शिला के दर्शन करते हैं वे सब पापों से छूट जाते हैं।

५—वाराही शिला

रसातलात् समुद्धृत्य महीं दैवतवैरिणम्।
हिरण्याक्षं रणे हत्वा बदरीं समुपागतः ॥*

(स्क० पु०)

अलकनन्दाजी के जल में एक ऊँची शिला है। उसे बहुत देर तक ध्यानपूर्वक देखते रहें तो उसमें सूकराकृति का आभास होता है। उसी को वाराही शिला कहते हैं।

जब भगवान् पृथ्वी को रसातल से ले आये और हिरण्याक्ष को रण में मार डाला तब सूकर भगवान् सीधे बदरिकाश्रम को चले आये। यहाँ आकर वे अलकनन्दा जी के जल में शिला रूप से रहने लगे। इस शिला के समीप पृथ्वी दान तथा अन्य दानों का बड़ा भारी माहात्म्य है, जो उपवास करके भक्तिभाव से वाराही शिला का पूजन करता है, दर्शन करता है उसकी सभी मनोकामनायें पूर्ण होती हैं। यह पञ्चशिलाओं का माहात्म्य हुआ।

यं एतद् श्रद्धया मर्त्यः श्रणोयश्रावयेत् शुचिः।
सर्व पाप विनिर्मुक्तो वैकुण्ठे वसतिलभेत् ॥१

---

* वाराह भगवान् रसातल से पृथ्वी को लाकर तथा युद्ध में सब देवताओं के शत्रु हिरण्याक्ष को मारकर बदरीवन में चले आये।

१ जो इस पञ्चशिला के माहात्म को सुनता सुनाता है वह सब पापों से छूटकर वैकुण्ठ से आनन्द में वास करता है।

१२—कपाल मोचन या ब्रह्मकपाल तीर्थ

अति गुह्यमिदं तीर्थं सुरासुर नमस्कृतम् ।
ब्रह्महाऽपि नरोयत्र स्नान मात्रेण शुद्ध्यति ॥

अब फिर तप्त कुण्ड की सीढ़ियों को चढ़कर सड़क पर आ जाइये और सड़क-सड़क सीधे २००-३०० गज चलिये। फिर अलकनन्दा के नीचे उतरिये वहाँ आपको एक शिला दिखाई देगी जहाँ कपाल मोचन या ब्रह्म कपाल तीर्थ है। यहाँ पितरों का श्राद्ध करने का अनन्त फल है। यहाँ शिवजी के हाथ से ब्रह्माजी के कपाल का मोचन हुआ था। शिवजी के हाथ में ब्रह्माजी का कपाल क्यों आ गया। इस सम्बन्ध में अनेक पुराणों में भिन्न-भिन्न अनेक कथायें हैं। इन भिन्न-भिन्न कथाओं को सुनकर विधर्मी या नास्तिक भले ही मोहित हो जायँ, हम लोग जो सृष्टि को नित्य बनती, नित्य बिगड़ती मानने वाले हैं उन्हें इस भिन्नता में कुछ भी आश्चर्य नहीं होता क्योंकि कल्प-कल्प की भिन्न-भिन्न कथायें हैं।

हाँ तो शिवजी ने ब्रह्माजी के पंचम सिर को काट लिया। क्यों काटा इसमें भी भिन्न-भिन्न पुराणों में भिन्न-भिन्न कारण हैं। किसी पुराण में बताया है, जब सरस्वती जी के प्रति ब्रह्माजी मोहयुक्त हुए तब क्रोध में भरकर सिर काटा। कहीं लिखा है मुख से तो चार वेद निकल रहे थे पाँचवाँ चुप था इसलिये काटा। कहीं ऐसा है कि शिवजी ने ब्रह्माजी से उनके माता, पिता, प्रपितामह का नाम पूछा इस पर पंचम मुख ने भली बुरी बात सुनाई इसलिये काटा। कहीं ऐसा भी है कि शिवजी भी पंचमुखी हैं।

ब्रह्माजी के भी पाँच मुख थे। हमारी बराबरी न हो इसलिये एक सिर काट लिया। कुछ भी क्यों न हो। बात इतनी है कि शिवजी ने अपने पिता ब्रह्माजी का पंचम सिर काट लिया। काटते ही वह सिर शिवजी के हाथ से चिपट गया और ब्रह्महत्या उनके शरीर में घुस गई। इससे दुखी होकर वे चौदह भुवनों में घूमे किन्तु न तो ब्रह्महत्या ही दूर हुई न वह सिर ही हाथ से छूटा तब वे श्रीभगवान् की शरण में गये।

पद्मपुराण में नरोत्पत्ति की बड़ी ही अद्भुत और मनोरञ्जक कथा है। बात यह हुई कि ब्रह्माजी के पंचम मुख के तेज से देवताओं का तेज हत हो गया। इस पर सब देवता मिलकर शिवजी के पास गये। सब हाल कह सुनाया। शिवजी को आया रोष झट से जाकर पट्ट से ब्रह्माजी के पंचम सिर को नख से काट लिया। वह हाथ में चिपक गया। ब्रह्माजी को रोष आया उनके सिर पर पसीना आ गया। पसीने को जो हाथ से छिड़का कि एक भयङ्कर पुरुष उत्पन्न हुआ। ब्रह्माजी ने कहा—तुम शिवजी को मारो, शिवजी मुट्ठी बाँधकर जोर से भागे।

दौड़ते-दौड़ते बदरी क्षेत्र गये। अपना सब दुख श्रीमन्नारायण के सम्मुख कहा। भगवान् ने हुँकार मारकर उस पुरुष को अचेतन कर दिया। तब शिवजी ने भूख से पीड़ित होकर भिक्षा माँगी, कपाली को तो रक्त की भिक्षा देनी चाहिये। भगवान् ने अपनी दक्षिण भुजा भिक्षा में उठा दी। उनके कहने से शिवजी ने त्रिशूल से उसमें प्रहार किया। उसमें से एक सुवर्ण वर्ण की बड़ी वेगवती रक्तधारा निकली जिसे शिवजी ने कपाल में लिया। शिवजी ने उस रक्त का मन्थन किया उसमें से एक पुरुष उत्पन्न हुआ, जिसका नाम 'नर' पड़ा। जो नारायण का सखा हुआ जिससे भगवान् नर-नारायण कहलाये।

उसने पूछा—"मैं क्या करूँ ?" शिवजी ने जल्दी से कहा—इस

ब्रह्माजी के आदमी को मार तो डालो। उसने उस अचेत पुरुष को चेतन किया। दोनों में बहुत वर्षों तक घोर युद्ध हुआ। अन्त में नर ने उस ब्रह्माजीके आदमी को पछाड़ डाला। भगवान्‌ हँसते-हँसते ब्रह्माजी के यहाँ पहुँचे और बोले—"ब्रह्माजी! कुछ सुना आपके आदमी को नर ने हरा दिया।" ब्रह्माजी बड़े दुखी हुए। बोले—"महाराज, यह तो आपने बड़ी गड़बड़ की। अच्छा अगले जन्म में मेरा आदमी आपके नर को पछाड़ दे। ऐसा वरदान दीजिये।" भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है ऐसा ही होगा।" भगवान् लौट आये और उन दोनों पुरुषों को सूर्य और इन्द्र को देकर कहा—"इनकी सावधानी से रक्षा करना।"

जब भगवान् ने श्रीरामावतार लिया तो जो ब्रह्माजी का उत्पन्न पुरुष था वह तो सुग्रीव हुआ और रक्त से जो नर उत्पन्न हुआ था वह वालि हुआ। भगवान् ने सुग्रीव के लिये वालि को मारा। इस पर इन्द्र बहुत नाराज हुए। भगवान् से बोले—"महाराज! आपने मेरे लड़के को सुग्रीव के निमित्त मार डाला यह अच्छा नहीं किया।" भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है अब के तुम्हारे लड़के से सूर्य के लड़के को मरवा देंगे और तुम्हारे लड़के के सारथी भी बनेंगे वही नर अर्जुन हुए और सूर्यपुत्र कर्ण हुए। भगवान् की सहायता से अर्जुन ने कर्ण को संग्राम में मारा। भगवान् को भी बैठे ठाले कैसे खेल सूझते हैं। उनके लिये न जय है न पराजय सब खिलौने हैं।

हाँ, कपाल वाली बात तो रह ही गयी, शिवजी का कपाल फिर भी नहीं छूटा। फिर बहुत तीर्थों में भगवान् के कहने से घूमने के पश्चात् काशीजी में वह कपाल छूटा। इसलिये काशीजी में भी एक कपाल मोचन तीर्थ है।

वामनपुराण के आरम्भ में ही नारदजी के पूछने पर पुलस्त्य जी ने शिवजी के कपाली होने की कथा कही है। वहाँ पर शिव

जी के सिर काटने का कारण अहंकार को बताया है। ब्रह्माजी से जब शिवजी उत्पन्न हुए तो उसी समय अहंकार भी उत्पन्न हुआ। दोनों अहंकार में भरकर वाद विवाद करने लगे। उसमें शिवजी पराजित की तरह मुख नीचा करके बैठ गये। इस पर ब्रह्माजी के पंचम सिर ने उनकी कुछ हँसी-सी उड़ाई। शिवजी ने आव गिना न ताव उस सिर को नख से कतर लिया। शेष कथा प्रायः पद्म पुराण की सी ही है। हाँ कपाल हाथ से न छूटने पर फिर वे बदरिकाश्रम गये। वहाँ उन्हें नारायण भगवान् के दर्शन ही न हुए फिर जमुना में स्नान करने गये तो जमुना ही सूख गई। जिस नदी में जायँ वही ब्रह्महत्या के भय से सूख जाय। अन्त में कुरुक्षेत्र में भगवान् के दर्शन हुए। उनके कहने से काशी में कपाल मोचन तीर्थ जाने पर वह कपाल हाथ से गिरा। इस तरह की कुछ थोड़े हेर-फेर से कई कथायें हैं।

× × × ×

स्कन्द पुराण में शिवजी ने स्वयं ही स्वीकार किया है कि मेरा कपाल बदरी क्षेत्र में ही जाकर गिरा।* कपाल मोचन तीर्थ में जप तर्पण श्राद्ध करने का अनन्त फल बताया है। यहाँ ऐसी प्रसिद्धि है कि बदरी क्षेत्र में श्राद्ध करने के अनन्तर फिर कभी श्राद्ध करने की आवश्यकता नहीं। गयाजी में श्राद्ध करने का सब से श्रेष्ठ फल बताया है, किन्तु यहाँ बदरिकाश्रम में गया से भी अष्टगुणा फल होता है। इसीलिये जो यात्री बदरीनाथ जाते हैं, वे यहाँ श्राद्ध अवश्य करते हैं। संन्यासियों को श्राद्ध की जरूरत है ही नहीं। गृहस्थियों को यहाँ अवश्य श्राद्ध करना चाहिये।

---

* तस्योपदेष्टमादाय बदरी समुपागतः तत्क्षणात् ब्रह्म हत्वा मे वेपमाना मुहुर्मुहुः अन्तर्हित कपालं तत् करात् विगलितं मम।

(स्क० पु० व० म० अ० ६ श्लोक)

पिण्डं विधाय विधिवत् नरकात् तारयेत् पितॄन ।
पितृ तीर्थमिदंप्रोक्तं गयातोऽष्टगुणाधिकम् ।।*

---

* ब्रह्म कपाली पितृ तीर्थ है, यहाँ जो विधिवत् पिंडदान करता है वह अपने पितरों को नरक से तारता है। यहाँ पर पिंडदान का गया से अष्टगुना फल बताया है।

१३—ब्रह्मकुण्ड से मातामूर्ति तक के तीर्थ

ब्रह्मकुण्ड सात्रह्मतीर्थ ।

ब्रह्म कुण्डमितिख्यातं त्रिलोकेषु विश्रुतम् ॥

ब्रह्म कपाली के नीचे ब्रह्मकुण्ड है। इसकी पौराणिक कथा इस प्रकार है कि जब ब्रह्माजी भगवान् के नाभि कमल से उत्पन्न हुये तब चारों ओर देखने से उनके चार मुख हो गये। उन चारों मुखों से स्वतः ही चारों वेदों का गान होने लगा। उसी समय भगवान् के अङ्ग से मधु और कैटभ नाम के दो राक्षस पैदा हुए वे ब्रह्माजी से मूर्तिमान चारों वेदों को लेकर भाग गये। अब बिचारे वेदहीन ब्रह्मा कर ही क्या सकते थे। उन्हें आदेश हुआ कि तप करो, इसलिए वे तप करने बदरिकाश्रम में आये। उनके तप से सन्तुष्ट होकर भगवान् हयशीर्षरूप में इस कुण्ड से उत्पन्न हुए। ब्रह्माजी ने उनकी स्तुति की। तब ब्रह्माजी की प्रार्थना पर उन दोनों दैत्यों को मारकर भगवान् उनसे वेदों को छीन लाये। यह हमने संक्षेप में कथा कही, वेदोद्धार की कई तरह की कई कथायें हैं। एक हयशीर्ष दैत्य हुआ है, एक शङ्खासुर दैत्य हुआ है, मधुकैटभ भी दैत्य हुआ है। इस प्रकार कभी हयशीर्ष रूप से कभी मत्स्यरूप से और कभी विष्णुरूप से वेदों का उद्धार किया है। तभी से यह ब्रह्म कुण्ड के नाम से तीर्थ विख्यात हुआ। इसके स्नान के फल के सम्बन्ध में स्कन्ध पुराण में लिखा है—

यस्य दर्शन मात्रेण महापातकिन्तेजनाः ।
विमुक्त किल्विषाः सद्यो ब्रह्मलोके महीयतेः ॥

अत्रि अनसूयातीर्थं

द्वितीयान्य पतत्भूमौ तां जग्राह तपोधनः ।
अत्रिस्तस्मात् समुद्भूतो दुर्वासाः शङ्कराशतः ॥

(वामन पु० २ अ० २८ श्लोक)

ब्रह्मकुण्ड से आगे गङ्गा जी के किनारे-किनारे ऊपर की ओर जहाँ से आगे गङ्गाजी मुड़ती हैं। इन्द्रधारा के इसी ओर एक कुटी बनी है। ऊपर सड़क से तो वह दिखाई नहीं देती। हाँ इन्द्रधारा से दिखाई देती है, ठीक गंगाजी के तट पर उस तीर्थ का नाम अब भी अत्रि अनुसूया तीर्थ प्रसिद्ध है। यहाँ अत्रि भगवान् ने कब तप किया, इसकी हमें कोई पौराणिक कथा नहीं मिली। हाँ, वामन पुराण में नरोत्पत्ति प्रकरण में यह कथा आई है कि जब कपाली शङ्कर ने भगवान् नारायण से भिक्षा माँगी और उनकी दक्षिण भुजा को त्रिशूल से ताड़न किया तो उसमें से रक्त की तीन धारायें निकलीं। एक धारा तो ताराओं से व्याप्त आकाश में चली गई। जो आकाश गङ्गा हुई। दूसरी धारा को तपोधन अत्रि ऋषि ने धारण किया। जिसमें शङ्कर जी के अन्शावतार दुर्वासा मुनि उत्पन्न हुए। तीसरी कपाल पर पड़ी जिससे नारायण के सखा नर उत्पन्न हुए।

उसी समय अत्रि महर्षि यहाँ तप करते होंगे। स्थान बड़ा ही शांत, एकांत, दिव्य है। एकांत चिन्तन और अनुष्ठान के लिये बहुत ही उपयुक्त है। श्री बदरीनाथ मन्दिर की ओर से एक सुन्दर कुटी भी बनी है।

इन्द्र पद तीर्थ या इन्द्र धारा

ततोऽग्रेदक्षिणे भागे द्रवधारेतिथिश्रुम्।
तीर्थमिन्द्रपदं यत्रतपश्चाक्रे पुरंदरः ॥*

(स्क० पु०)

अत्रि आश्रम से फिर माणा की सड़क पर आ जाइये। दूर से पहाड़ पर सफेद पारे की तरह गिरती हुई एक वेगवती धारा

* इससे आगे दक्षिण भाग द्रवधारा के रूप में इन्द्रपद नामक तीर्थ विख्यात है। जहाँ इन्द्र ने तप किया था।

दिखाई देगी। उत्तुंगगिरि शिखर के पत्थरों से टकराती हुई वह धारा ऐसी प्रतीत होती है मानों पिघली हुई चांदी वह रही हो। उसे इन्द्र धारा कहते हैं। अब वहाँ कुछ मारचों के मकान भी वन गये हैं। खूब विशाल मैदान है। गोचर के वाद इस यात्रा में पहाड़ पर इतना सुन्दर विस्तृत मैदान कहीं नहीं दिखाई देता। आषाढ़ श्रावण में जब आलू फाफर (ऊआ) एक प्रकार के जौ और गेहूँ की लहलहाती खेती चारों ओर दिखाई देती है तो यहाँ की शोभा बड़ी अद्भुत मालूम पड़ती है, फूलों की तो भरमार है। सड़क के किनारे-किनारे लाल पीले हरे असंख्यों छोटे-छोटे फूल खिले हुए होते हैं। देखते-देखते तबियत भरती ही नहीं, इधर आषाढ़ श्रावण में ही गेहूँ जौ पैदा होते हैं। भादों क्वार में खेती काट कूटकर ये लोग कार्तिक अगहन में सब नीचे उतर जाते हैं। फिर वैशाख ज्येष्ठ में वरफ कम होने पर आ सकते हैं। घूमने फिरने के लिये बड़ी मनोहर जगह है। अरे मैं कहाँ चला गया। अच्छा तो इन्द्रधारा की पौराणिक कथा सुनिये। यहाँ इन्द्र ने तप किया था। यह शायद तब की बात है जब इन्द्र को ब्रह्म-हत्या लगी थी और उसके डर से वे इन्द्रासन छोड़कर इधर-उधर भागते फिरे थे। यहीं तपस्या करके उन्होंने फिर से इन्द्र पद प्राप्त किया। यहाँ पर जप, दान, तप का अनन्त गुणा फल वताया गया है। किसी भी मास को शुक्ला त्रयोदशी को यहाँ स्नान करके विधिवत वेदाध्ययन करे विष्णु का पूजन करे और दो उपवास करे तो उसे इन्द्रलोक मिलता है।

धर्मक्षेत्र या माता मूर्ति

संगमात् दक्षिणेभागे धर्म क्षेत्रं प्रकीर्तितम्।
यत्रमूर्त्यां श्रुतौजातौ नरनारायणावृषी ॥*

---

* अलकनन्दा और सरस्वती के संगम के दक्षिण भाग में धर्मक्षेत्र कहा गया है। ऐसा सुना जाता है कि मूर्ति में नर नारायण उत्पन्न हुए हैं।

इन्द्रधारा से सड़क-सड़क आगे चले चलिये। थोड़ी दूर से ही उस पार मणिभद्रपुर या माणा गाँव दिखायी देगा। माणा आने के लिये यहाँ अलकनन्दा पुर (झूला) पुल है। अभी आप उस पार न जायँ, इसी पार पुल के सामने ही खेतों में होकर पगडंडी से चले चलिये। सामने एक छोटा-सा सफेद मन्दिर दिखायी देगा। बस, यही नर-नारायण की माता जी भगवती मूर्ति का स्थान है। यहाँ इस घोर जङ्गल में मूर्ति माता जी क्यों आकर वैठीं इस सम्बन्ध में एक पौराणिक कथा है।

नर-नारायण भगवान् माताजी से आज्ञा लेकर तप करने चले आये। माता ने चलते समय आँखों में आँसू भरकर कहा—"देखना बेटा! ऐसे निर्मोही मत बन जाना, कभी-कभी अपनी माता समझकर मुझे दर्शन देते रहना।" भगवान् ने हाँ तो कह दिया, किन्तु तपस्या में और परिजनों के ममत्व में घोर विरोध है। तपस्वियों को कुटुम्बियों की याद आना उनकी तपस्या में विघ्न है। नर-नारायण अपनी तपस्या में मग्न हो गये। उन्हें माता-पिता की याद ही भूल गयी।

पुत्र भले ही भूल जाय, किन्तु माता-पिता अपने हृदय के टुकड़े को अपनी बाह्य आत्मा को कैसे भूल सकते हैं। एक दिन माता मूर्ति ने अपने पति धर्म से कहा—"प्राणनाथ! मेरे प्राणों से भी प्यारे पुत्र तपस्या करने चले गये हैं। अभी तक उन्होंने हमारी सुध तक न ली। मैंने सुना है वे बदरिकाश्रम में हैं, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं वहाँ जाकर उन्हें देख आऊँ। एक पन्थ दो काज हो जायँगे, उस पुण्य भूमि की यात्रा भी हो जायगी, अपने बच्चों का मुख भी देख आऊँगी।"

धर्म ने कहा—"अच्छी बात है, तुम अकेली उन पहाड़ों में कहाँ भटकती फिरोगी, चलो मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।" दोनों पति-पत्नी बदरिकाश्रम की यात्रा के लिये तैयार हुए।

सदा सर्वदा भगवान् के वक्षस्थल पर विहार करने वाली लक्ष्मी जी बड़ी उदास रहती थीं। प्रत्येक अवतार में भगवान् उन्हें अपने हृदय का हार बना कर रखते, इन्हें प्राणों से अधिक प्यार करते। लक्ष्मी जी भी उनके सुकोमल चरणों को अपनी चूड़ियों को खनखनाती हुई सदा सोते जागते दबाती रहती थीं। यह अजीब अवतार लिया कि अभी तक कभी दृष्टि भर के देखा तक नहीं। उन्होंने भी इसे अच्छा अवसर समझा। जब सास ससुर भी जा रहे हैं, तो उनके साथ बहू को जाने में कोई लोकापवाद की बात नहीं। सकुचाती हुई लक्ष्मी जी ने कहा—"सासजी, यदि आज्ञा हो तो मैं भी चलूँ?"

मूर्ति माता ने कहा—"बेटी मेरी भी इच्छा यही थी, किन्तु मैंने सोचा तू बहुत सुकुमारी है, पता नहीं उस ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी रास्ते में चल सकेगी या नहीं, इसलिये मैंने नहीं कहा। बड़ी अच्छी बात है बेटी तू भी चल।"

अब तीनों पति, पत्नी और पुत्रवधू ने बदरिकाश्रम की ओर प्रस्थान किया। धर कूँच धर मँजल चलते-चलते तीनों बदरीवन में पहुँचे। नर-नारायण भगवान् ने जब माता-पिता का आगमन सुना तो वे आगे बढ़ कर उनके सामने गये। माता-पिता के चरण छुए। बहुत दिनों के बाद माता-पिता ने अपने प्यारे बच्चे को जटा बढ़ाये वल्कल वस्त्र पहिने देखा तो उनके हृदय भर आये। मूर्ति माता फूट-फूट कर रोने लगीं। गोदी में बिठाकर उनके शरीर पर हाथ फेरने लगीं। रोते-रोते माता ने अपने पुत्रों के वल्कल वस्त्र भिगो दिये। नर-नारायण भगवान् को भी माता को रोते देख कर छाती भर आई, उनकी आँखों में भी आँसू आ गये, किन्तु हाय री तपस्या! भगवान् ने इस पत्थर से भी कठोर तपस्या को क्यों बनाया, जो अपने सगे सम्बन्धियों को भी विघ्न समझती है।

भगवान् थोड़ी देर में सम्हले उन्होंने सोचा—अरे, यह तो हमारी तपस्या में बड़ा विघ्न हुआ। माता की गोद से उठ कर वे खड़े हो गये। माता-पिता के उन्होंने चरण छुए और बोले—"पिता जी, माता जी! आपका इस घोर वन में कैसे आना हुआ?"

माता-पिता ने रुँधे हुए कण्ठ से कहा—"बेटा! तुम लोगों के मुख-कमल को देखने के लिये ही हम इतनी दूर दौड़े आये हैं।"

भगवान् बोले—"हाँ, तो देख लिया न?"

मूर्ति माता ने कहा—"क्या देख लिया, तुम लोग तो हमें भूल ही गये। अच्छा है, भैया, तुम लोग समर्थ हो जो चाहो करो। हमारी यही प्रार्थना है कि माता-पिता के नाते कभी-कभी हमारी भी सुधि ले लिया करो।"

भगवान् ने तो कठोर तपस्वी का वेष बनाया था। उसी के अनुरूप उन्हें व्यवहार भी करना था। इसलिये बोले—"अच्छा, अब हमें नित्य कर्म सन्ध्या उपासना तर्पण आदि करना है। आप लोग अब लौट जायँ।"

माता को बड़ा दुख हुआ। उन्होंने प्रेम-पूर्ण कोप के स्वर में कहा—"तुम लोग बड़े निर्दयी हो रे! हम लोग तो इतनी दूर से आये और तुम हमें भगाना चाहते हो। यह भी कोई बात है, हम तुम्हारी तपस्या को छीने थोड़े ही लेते हैं।"

भगवान् हँस पड़े और बोले—"अच्छी बात है, मैं कब कहता हूँ तुम लोग चले ही जाओ। मैं सोचता था आप लोगों को यहाँ कष्ट होगा। यदि आपकी इच्छा है तो आप भी यहाँ रहें तपस्या करें तपोवन तो है ही।"

लक्ष्मी घूँघट मारे सिकुड़ी हुई अपनी सास के पीछे बैठी हुई थीं। वे बार-बार कनखियों से सास ससुर की दृष्टि बचाकर भगवान् की ओर देख लेतीं कि कभी ये कमल-नयन मेरी इन

कजरारी अँखियों के सामने हो जायँ, वस एक ही दृष्टि पड़ जाय तो वेड़ा पार हो जाय। किन्तु हाय रे निर्दयता ! उन्होंने भूल के भी लक्ष्मी की ओर दृष्टि नहीं की। पलक उठाकर भी नहीं देखा कि पीछे चमचमाती साड़ी की गठरी में से ये जो वार-वार चमकीले तारे चूड़ियों की खनखनाहट करते हुए शीतल प्रकाश छोड़ रहे हैं सो क्या वस्तु है।

लक्ष्मी जी निराश हो गईं। उनकी एक शब्द भी कहने की हिम्मत नहीं पड़ी। भगवान् की बात सुनकर मूर्ति माता ने सोचा चारों वेटे तो वावाजी हो गये। वहू अपने साथ है ही, पोते का मुख देखने की आशा है नहीं, अब घर चलकर क्या करेंगे। हम भी यहीं तपस्या करें। यह सोच विचार कर माता बोली—"अच्छो वात है, हम भी यहीं रहते हैं, किन्तु एक वचन दो कि साल में एक बार आकर तुम हमें दर्शन दिया करोगे।"

भगवान् ने इसे स्वीकार कर लिया। भगवान् माता-पिता को यह वचन देकर अपनी तपस्या में लग गये। माता मूर्ति तपस्या के लिये स्थान खोजती हुई आगे चलीं। आगे उन्होंने देखा कि भगवती सरस्वती गङ्गा और अलकनन्दा गङ्गा दोनों छातीसे छाती लगाकर प्रेम से मिल रही हैं। उनके स्नेह संगम को देखकर माता यहाँ पर रुक गईं और बोली—"वहिनो, तुम दोनों में बड़ा स्नेह है। ये पुरुष तो वड़े कठोर होते हैं। यदि पुरुषों में भी कोई तपस्वी हो गया तो उसका हृदय तो इस्पात फौलाद का हो जाता है। स्त्रियों में यह वात नहीं, वे चाहे कैसे भी तपस्विनी हो जायँ उनमें फिर भी दया माया रहती है। अब तुम दोनों इस घोर जङ्गल में कैसी प्रेम से मिल रही हो। तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं भी यहीं तुम्हारे पास बस जाऊँ ?"

दोनों नदियों ने कहा—"अहो भाग्य हमारा देवि ! आप सुख से रहो। आपके पीछें हमारा भी सम्मान होगा। गङ्गाजी तो

मूर्ति माता की बहू ही ठहरीं। लक्ष्मीजी की सौत ज़रूर थीं, किन्तु सब दिन होत न एक समान। आज लक्ष्मी को गङ्गा की शरण आना पड़ा। सास बहू की बात समाप्त होने पर लक्ष्मीजी ने कहा—"बहिन! मुझे तो तुम स्थान दोगी नहीं, मैंने तो तुम्हारा बड़ा अपराध किया है, मुझे सरस्वती की शरण लेनी पड़ेगी।"

गंगाजी ने कहा—"बहिन! कैसी बातें करती हो। वह उस समय की बात थी। जिनके ऊपर हम लोगों का मान था, सौतिया डाह था, वे तो अब बाबाजी बन गये। अब क्या झगड़ा अब तो हमारी तुम्हारी दोनों की एक हालत है। तुम्हें मैं अपने सिर के पास सबसे उत्तम जगह दूँगी।" यह सुनकर लक्ष्मीजी प्रसन्न हुईं माता मूर्ति तो संगम से कुछ हटकर वहीं रह गयीं। तपस्या में बिल्कुल पास-पास रहना ठीक नहीं, इसलिये माता मूर्ति से दो तीन कोस की दूरी पर इसी पार लक्ष्मीजी बस गईं। कितने आश्चर्य की बात है कि बदरीपुरी में एक पेड़ नहीं, माता मूर्ति तक छोटा-सा भी एक पेड़ नहीं। बरफ से सब गल जाते हैं, कोई पेड़ होता ही नहीं, किन्तु जहाँ से लक्ष्मी वन की सीमा लगती है यहाँ से पेड़ों की भरमार है। बड़े मोटे-मोटे भोजपत्र के वृक्ष खड़े हैं पूरा वन है। हम तो लक्ष्मी वन को देखकर चकित रह गये। बदरीपुरी में जहाँ गीली लकड़ियों से भोग बनता है वहाँ लक्ष्मी वन में जहाँ बदरीनाथ से बहुत अधिक ठण्ड है और अधिक बर्फ पड़ती है वहाँ इतने मोटे वृक्ष! सचमुच भाग्यशाली जहाँ भी जाता है उसका भाग्य भी साथ जाता है। श्रीलक्ष्मी का शोभायुक्त वन होना ही चाहिये।

हाँ, तो लक्ष्मीजी अपनी सास से दो कोस दूर रहीं और माता मूर्ति ने वहीं अपना स्थान बनाया। पति रहते हुए स्थान का नाम उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध होना चाहिये इसलिये इस क्षेत्र का नाम धर्मक्षेत्र पड़ा है। आपने अपनी माता को वचन दिया है,

इसलिये वर्ष में एक बार शुक्ला द्वादशी-वामन द्वादशी के दिन भगवान् वहाँ अपनी माताजी से मिलने आते हैं। उस दिन यहाँ पर बड़ा भारी मेला होता है। भगवान् की उत्सव मूर्ति यहाँ पर आती है। उस दिन साल में एक बार माता की पूजा होती है, भोग लगता है, खूब नाच गान होता है, रावल सवारी के साथ आते हैं। पहाड़ियों का एक बड़ा खान-पान और आनन्द का मेला है, उस दिन पुरी के सभी लोग मूर्ति के मेले में जाते हैं। किसी पुराण का वचन है जो उस मेले में पुरी में रहता हुआ नहीं जाता उसे पाप लगता है।

तपश्चर्या में पति-पत्नी को अलग-अलग रहना चाहिये। इसलिये धर्मदेव संगम के उस पार व्यासजी के सम्याप्रास से कुछ हटकर वसुधारा के पास रहने लगे।

१४—मातामूर्ति से सतूपथ तक के तीर्थ

सतूपथ या स्वर्गारोहण

ततः सत्यपद नाम तीर्थं सर्वमनोहरम् ।
त्रिकोणाकारमेवैतत् कुण्डं कल्मषनाशनम् ॥
एकादश्यां हरिस्तत्र स्वयमायाति पावने ।

(स्क० पु० व० ७ अ० ४७ श्लोक)

अच्छा अब बताइये कि अलकनन्दा का पुल पार करके माता की ओर चलना है या लक्ष्मी-वन की ओर। नारद पुराण, वामन पुराण, स्कन्दपुराण इन तीनों में सतूपथ तक के कुछ मुख्य, मुख्य तीर्थों का वर्णन है। उनकी वर्णन-शैली ऐसी है कि कुछ इस पार के तीर्थों को कहते हैं कुछ उस पार के। कभी दूर चले जाते हैं और फिर आ जाते हैं। केदारखंड में भी संक्षेप में वर्णन है। उनकी भी शैली ऐसी है। हमारी सम्मति ऐसी है कि पहिले इस पार से लक्ष्मी वन होते हुए स्वर्गारोहण तक चलें नारायण पर्वत के सहारे-सहारे। फिर विष्णुकुण्ड से नर पर्वत के सहारे-सहारे वसुधारा माता होकर बदरिकाश्रम के सामने से ऋषि गंगा के सामने अलकनन्दा के पुल को पार करके बदरीपुरी में लौट आवें इससे सीधी परिक्रमा भी हो जायगी और क्रम से तीर्थों का वर्णन भी होगा अपने तो तीर्थयात्री हैं। माता के पुल को पार करने की जरूरत ही क्या? हाँ, तो अब तक आप बदरीनाथ से लगभग दो कोश ऊपर आ चुके हैं। मूर्ति माता के सामने से उस पार सरस्वती और अलकनन्दा का संगम दिखाई देता है, उस पार तो वसुधारा जाने के लिये मन्दिर की तरफ से मरम्मत

करके साधारण सी सड़क बनाई गई है। किन्तु इधर तो पहाड़ी पगडंडी से ही जाना पड़ता है जिसमें पग-पग पर प्राणों का भय रहता है।

पहाड़ी लोग मैदान में रहने वालों को देश वाले कहते हैं। पहाड़ को पहाड़ और मैदान को देश कहने की प्रथा है। तो जिस प्रकार हम देश वाले बदरीनाथ की यात्रा को एक बड़ी भारी कठिन चीज समझते हैं उसी प्रकार बदरी पुरी वासी कैलाश और सत्पथ की यात्रा को महान् कठिन समझते हैं और सचमुच है भी कठिन। सत्पथ की यात्रा तो कठिनता की साक्षात् मूर्ति ही है। बहुत कम, हजारों में कोई एक आध सत्पथ जाते हैं। साल में मुश्किल से १०-११ आदमी जाते होंगे। उनमें अधिकांश ऐसे होते हैं जिनके आगे नाथ न पीछे पगहा। साधु वैरागी जो घर बार से हीन, दुनियाँ से बेमतलब और गृहस्थियों के भार भूत। साहसी गृहस्थी भी जाते हैं, किन्तु उनकी संख्या उँगलियों पर गिनने के योग्य होती हैं। इस वर्ष हमारी यात्रा बड़े ठाठ बाठ से हुई। ३-४ तम्बू साथ थे। हम १५-१६ आदमी थे। कुली सामान सभी साथ था, क्योंकि यहाँ तीन ही चीजें हैं। पत्थर, पानी और पाला (वर्फ)। बाकी सब आवश्यकीय वस्तुएँ साथ ले जानी पड़ती हैं। हमने इसी तरह यात्रा की। नारायण पर्वत के सहारे-सहारे गये। नर पर्वत के सहारे-सहारे लौटे। तीन दिन में लौटकर बद्रीनाथ आ गये। बद्रीनाथ से सत्पथ १७-१८ मील बताते हैं। दो तीन मील ऊपर स्वर्गारोहण है। वहाँ नर-नारायण दोनों पर्वत मिलकर दीवाल की तरह खड़े हो गये हैं। आगे रास्ता नहीं है। दोनों पर्वतों की चोटियों के बीच में थोड़ी जगह है। बहुत ऊँचे बरफ पर चढ़कर कोई साहसी आदमी उस पार केदारनाथ जा सकता है। कई पहाड़ी कुली एक अँग्रेज के साथ सामान लादकर गये थे। हमारे साथ कुली भी एक-एक कर

बोझ लादकर उस विकट रास्ते में सतूपथ तक गये थे। हमारे साथ चार पर्वतीय मातायें भी थीं। दो अलमोड़े की दो गढ़वाल की। उन ६०-६० वर्ष की वृद्धा माताओं के साहस को देख कर मैं चकित रह गया। बिना जूते के नङ्गे पैरों से उस विकट रास्ते में हँसती खेलती चलती थीं। एक तो उनमें बहुत सुकुमार प्रतिष्ठित परिवार की थीं। मैं यह कहकर उन्हें ले गया था कि जहाँ वे थक जायँगी मैं उन्हें पहाड़ से गिराकर चला आऊँगा। बात यह हँसी की ही थी किन्तु सचमुच उनकी हमारे ऊपर बड़ी जिम्मेवारी थी। वे सचमुच ही मरने को सोच कर गई थीं। जहाँ भी वे थकतीं व्याकुल हो जातीं वहीं मैं कह देता—"माताजी! अब मैं फेंकता हूँ नीचे।" वे हँसतीं, बैठ जातीं और चाय बनाकर पीकर चल देतीं। इसी तरह उन चारों ने बड़े साहस से वह यात्रा सम्पन्न की। यही नहीं हम जब लौट रहे थे तो एक व्यापारी की अधेड़ स्त्री हमें रास्ते में मिली। हमारे साथ की एक माता उसकी पथ प्रदर्शिका बनकर फिर लौटी और उसे भी सतूपथ की यात्रा करा दूसरे दिन सकुशल आ गई।

सतूपथ व स्वर्गारोहण की यात्रा के दो ही उपयुक्त समय हैं। या तो वैशाख के अन्त में या ज्येष्ठ के आरम्भ में, जब बरफ खूब पत्थर की तरह कड़ी रहती है। तब पूरी यात्रा बरफ पर से ही करनी पड़ती है। या क्वार में जब बरफ सब गल जाय और नई बरफ पड़ने का भय न हो। क्वार के अन्त में नई बरफ पड़नी शुरू हो जाती है। बरफ पड़ गई तो प्राणों की बाजी लगानी पड़ती है और उसमें बरफ की ही विजय होती है। सतूपथ और स्वर्गारोहण के समीप की बरफ तो कभी गलती ही नहीं, वह तो बारहों महीने बनी रहती है।

अच्छा, तो अब चलिये माता मूर्ति से आगे किनारे-किनारे बहुत से झरने नदी नालों को लांघते, पार करते, कभी चढ़ते कभी

उतरते, सुन्दर पर्वतों के दृश्य देखते, अलकनन्दा का हर-हर शब्द सुनते आगे बढ़ते चलिये। दूर से ही उस पार वसुधारा की उत्तुङ्ग शिखर से गिरती हुई धारा दिखाई देगी, जो यहाँ से उस पार तीन चार मील की दूरी पर होगी। थोड़ी देर में हम लक्ष्मी वन में पहुँच जाते हैं।

लक्ष्मी-वन

लक्ष्मी वन में लक्ष्मीजी प्रकृति का ही रूप बनाकर वास करती हैं। वहाँ उनकी कोई मूर्ति नहीं। बड़े-बड़े भोजपत्र के वृक्ष लक्ष्मीजी की शोभा की याद दिला रहे हैं। सत्पथ के यात्री एक दिन यहीं निवास करते हैं। इससे सुन्दर जगह कोई नहीं। सबसे सुख और प्रसन्नता की बात यह है कि यहाँ जलाने को लकड़ी खूब मिलती हैं। छोटा-सा मैदान भी है। अलकनन्दा यहाँ शान्त सी दीखती है। एक छोटा झरना भी है। जिसे लक्ष्मीधारा कह लीजिये।

लक्ष्मी-धारा से आगे धीरे-धीरे चढ़ाई चढ़ते-चढ़ते पहाड़ के बीच में पतली धारा-सी मिलती है। उसी पर सावधानी से चलना पड़ता है। नजर चूकी कि धड़ाम से नीचे। प्रकृति का ऐसा निर्मल सौन्दर्य! अहा! ऐसा संसार में शायद ही कहीं हो, हम क्वार में गये थे। तब तक सब बर्फ पिघल गई थी। यहाँ से नारायण पर्वत पत्थर की एक दीवार की तरह बन गया है। बिलकुल महान किले की दीवार सी दिखाई देती है। उस पर से निर्मल स्वच्छ सैकड़ों हजारों धारायें बह रही हैं। हजारों तो अत्युक्ति है, किन्तु सैकड़ों तो जरूर होंगी। उनका नाम है सहस्र धारा। कितना नयनों का सुखकर दृश्य है! नेत्रों को साफल्य यहीं प्रतीत होता है। धारायें जाड़ों में जम जाती हैं। वैशाख ज्येष्ठ में ज्यों-ज्यों बर्फ गलती जाती है, ये फिर द्रव होकर बहने लगती हैं। ये धारायें कब से बह रही हैं, यह जल कहाँ से आ रहा है,

ये क्यों बह रही हैं, ये प्रश्न ऐसे असंदिग्ध हैं कि इनका ठीक-ठीक कोई उत्तर नहीं।

सहस्रधारा

पुराणों में मैंने बहुत खोजा सहस्र धारा नाम का कोई तीर्थ नहीं मिला। इधर इतनी धाराओं का नाम मिलता है (१) पञ्च धारा तीर्थ (२) द्वादशादित्य तीर्थ (३) चतुःस्रोत तीर्थ। पहिले पञ्चधारा को लीजिये। पञ्चधारा के लिये लिखा है—

ततो नैऋर्त्यदिग्भागे पञ्चधाराः पतन्त्यधः।
प्रभासं पुष्करं चैव गयां नैमिषमेव च॥
कुरुक्षेत्रं विजानीहि द्रवरूपं षडानन।

अर्थात् वसुधारा से नैऋर्त्य भाग में पञ्चधारायें गिरती हैं। उनके नाम प्रभास, पुष्कर, गया, नैमिष और कुरुक्षेत्र धारा हैं। अब विचारणीय विषय यह है कि वसुधारा से नैऋर्त्य कोण में ये धारायें इस पार हैं या उस पार? वसुधारा को तरफ तो इकट्ठी पाँच धारायें नैऋर्त्यकोण में कहीं नहीं दीखतीं वसुधारा से आगे दो धारायें तो हैं। इकट्ठी धारायें तो पाँच यही हैं। इनमें ही ये पाँचों होंगी। इस हिमाच्छादित घोर एकान्त पर्वतीय प्रदेश में ये पाँचों प्रसिद्ध पुण्य पवित्र तीर्थ क्यों आकर बस गये इस सम्बन्ध में एक पौराणिक कथा है।

ये पाँच बड़े पावन तीर्थ हैं। इनमें स्नान करते ही पाप कट जाते हैं। मनुष्यों के तो पाप कट जायँ, किन्तु सहनशीलता की भी तो कोई हद होती है। तीर्थ भी आखिर देवयोनि वाले हैं। कहाँ तक पापों को वहन करें। पाप ग्रहण करते-करते इनका रङ्ग काला पड़ गया, तेज हीन हो गया। क्या करें, कुछ समझ में नहीं आता। कितना भी पुण्यात्मा पुरुष क्यों न हो, दान लेते-लेते उसका पुण्य नष्ट हो जाता है। तीर्थ कुछ करते तो थे

नहीं। अन्त में बेचारे सब मिलकर ब्रह्माजी के पास गये। आपत्ति विपत्ति में देवताओं के ये ही एकमात्र आधार हैं। जाकर पितामह के सामने अपना दुखड़ा रोया। सब बोले—"महाराज, हम सब बड़े दुखी हैं, हमारा तेज नष्ट हो गया। कोई उपाय बताइये कि हमें फिर अपना तेज प्राप्त हो।"

ब्रह्माजी ने थोड़ी देर ध्यान किया और फिर बोले—"भाई! तुम लोग एक काम करो। खाली बैठे-बैठे काम न चलेगा। तुम भी कुछ तपस्या किया करो और ऐसे क्षेत्र में तपस्या करो जहाँ थोड़ी तपस्या का भी अक्षय फल हो जाय।"

सबने कहा—"तब महाराज! ऐसा क्षेत्र आप ही बताइये।" ब्रह्माजी ने कहा—"भाई, ऐसा क्षेत्र तो बदरिकाश्रम है, वहीं तुम लोग चले जाओ।"

ब्रह्माजी की आज्ञा शिरोधार्य करके ये पाँचों मूर्तिमान देव रूपी तीर्थ यहाँ बदरिकाश्रम में आये। आते ही इन सबके पाप तो धुल गये। तपस्या करने से फिर वैसे ही तेजस्वी हो गये। ऐसा पवित्र तीर्थ समझकर और इस क्षेत्र की इतनी भारी महिमा जान कर इन लोगों ने अपने दो रूप बनाए। एक रूप से तो ये लोग यहाँ रहते हैं और एक रूप से अपने-अपने क्षेत्र में रहते हैं।

ऐसा मालूम पड़ता है कि जाड़ों में तो ये लोग अपने-अपने क्षेत्रों में चले जाते होंगे। इतनी ठण्डी कौन यहाँ सहे। इसीलिये जाड़ों में ये सब धारायें बरफ जमने से बन्द हो जाती हैं। गर्मियों में फिर चले आते होंगे। गर्मियों में इन धाराओं की शोभा का क्या कहना है। इन्हीं सहस्रधारा वाली पाँच धाराओं में से ये पञ्चतीर्थ वाली धारायें होंगी। इनके नाम प्रसिद्ध नहीं हैं।

एक बात और समझ लेनी चाहिये। इन पुराणों में इन धाराओं में स्नान का और दान का, निवास करके उपवास करने

का बड़ा पुण्य लिखा है। ये धारायें इतनी अगम्य हैं कि हम साधारण मनुष्यों को तो उनके पास पहुँचना ही बड़ा कठिन है। स्नान तो दूर की बात है। इनके पास रहने और उपवास करने से स्वर्ग तो जरूर मिल जायगा, किन्तु इस शरीर को जिसको अभी रखने की इच्छा होती है यहीं से सीधे स्वर्ग में जाने का साहस करना कठिन काम हो जाता है। अतः इन धाराओं का दर्शन करना और इन्हें दूर से हाथ जोड़ देना हम साधारण लोगों के लिए बहुत है।

द्वादशादित्य तीर्थ

ततस्तु द्वादशादित्यतीर्थं पापहरं परम् ।
यत्र तप्त्वा पुनः कृच्छ्रं कश्यपः सूर्यतां ययौ ॥

अर्थात् चन्द्रकुंड के द्वादशादित्य तीर्थ हैं जहाँ कश्यप के पुत्रों ने सूर्य पदवी को फिर से प्राप्त किया। सत्पथ से आगे चन्द्र कुण्ड, सूर्य कुण्ड, विष्णुकुंड ये तीन कुंड तो प्रसिद्ध हैं। यह द्वादशादित्य तीर्थ कहाँ है इसका ठीक-ठीक पता नहीं। सम्भव है इनमें से ही बारह धारायें हों। इसी प्रकार इसके आगे लिखा है—

चतुःस्रोत तीर्थ

चतुःस्रोतमयं तीर्थं त्रिलोचन मनोहरम् ।
धर्मार्थकाममोक्षास्ते तिष्ठन्ति द्रवरूपिणः ॥

इन चारों की स्थिति चारों दिशाओं में बताई गई है जहाँ नर-नारायण पर्वत आपस में मिल गये हैं। जिसे स्वर्गारोहण कहते हैं। उधर भी बहुत से स्रोत हैं। बरफ के नीचे भी तो असंख्यों स्रोत बह रहे हैं। इसमें से कोई चतुःस्रोत होंगे। भगवान् ही जाने। स्नान करने की तो सबमें हिम्मत नहीं। नमस्कार हम

चारों ओर घूमकर कर लेते हैं। हे द्रव रूप धर्म काम अर्थ और मोक्ष रूपी देवताओ, जहाँ भी तुम हो तुम्हें नमस्कार है। इन सब धाराओं को पार करने पर चक्र तीर्थ आता है।

चक्र तीर्थ

चक्र तीर्थ का वर्णन इन पुराणों में से किसी में नहीं है। हाँ, जो अलग केदारखंड नामक पुस्तक है, उसमें चक्र तीर्थ का उल्लेख जरूर है। उसमें बताया है कि चक्र तीर्थ में स्नान करने के महात्म्य से ही अर्जुन ने अस्त्र-विद्या प्राप्त करके अपने शत्रु दुर्योधनादिकों को रण में परास्त किया। चक्र तीर्थ बहुत ही रम्य स्थान है। चक्र के आकार का चारों ओर तालाब की तरह मैदान है। वर्षा में वह गीला हो जाता है। उसमें एक जल की धारा भी बह रही है। इस ऊबड़ खाबड़ भूमि में यही एक समतल नयनाभिराम जगह है। पहाड़ी बकरी वाले तथा यात्री यहाँ तम्बू लगाकर विश्राम करते हैं। इससे आगे ही तीन चार मील पर सत्पथ तीर्थ है। यहाँ से आगे का रास्ता बहुत कठिन है। एक पहाड़ पर चढ़कर नीचे बरफ के मैदान में उतरना पड़ता है। नीचे जल बह रहा है, ऊपर असंख्यों टूटे हुए पहाड़ के टुकड़े पड़े हैं। पता नहीं कब इन पहाड़ों का चूर्ण हुआ है। छोटी बड़ी लाखों करोड़ों अरबों पहाड़ की छोटी बड़ी शिलायें पड़ी हैं। जाड़ों में यह सब बरफ से ढक जाती हैं जब बरफ गल जाती है तो कहीं पत्थर निकल आते हैं और कहीं जमी की जमी बरफ ही रह जाती है। पाषाण खण्डों के नीचे से शब्द करता हुआ जल बहता मालूम पड़ता है। एक पत्थर से दूसरे पत्थर पर कूदकर जाना पड़ता है। सबसे अन्तिम रास्ता यही है और यही सबसे विकट। इस रास्ते को पार करके सामने ही त्रिकोण सत्पथ का नयनाभिराम तालाब दिखाई देता है। यात्री का हृदय सत्पथ के दर्शन करके प्रेम में विभोर हो जाता है। जिस तीर्थ के लिये

इतना कष्ट सहकर, इतनी विकट यात्रा करके हम आये थे वह नयनों के सामने आ गया, मानों कङ्गाल को निधि मिल गई। तपस्वी साधक के सामने मूर्तिमती सिद्धि आकर खड़ी हो गई। इस बर्फ से ढके प्रदेश में इतना बड़ा स्वच्छ काँच के समान हरे रङ्ग के जल से भरा सरोवर देखकर मन प्रफुल्लित हो उठता है। विधाता की कारीगरी को धन्यवाद है। बद्रीनारायण की महिमा अपार है।

१५—सत्यपद, सत्पथ या सतोपंथ

त्रिकोणमंडितं तीर्थं नाम्ना सत्यपदप्रदम् ।
दर्शनीयं प्रयत्नेन सर्वैः पापमुमुक्षुभिः ॥*

(स्कन्द पु०)

जो त्रिकोण-मंडित तीर्थ है, जिसका नाम सत्यपद तीर्थ है और जो सत्यपद को देने वाला भी है जो अपने सब पापों से छूटने की इच्छा रखते हों उन्हें इस परम पावन पवित्रतम-पाप-नाशक तीर्थ को प्रयत्न के साथ देखना चाहिये। सचमुच में बात तो ऐसी ही है। बड़े प्रयत्न से बड़े साहस से सत्यपथ के दर्शन होते हैं, और होते हैं सच्ची लगन वाले साहसी पुरुषों को। लग-भग २०० हाथ लम्बा यह सुन्दर स्वच्छ सरोवर होगा। एकदम निर्मल जल है, आस-पास गुफायें बनी हैं उन्हीं में यात्री ठहरते हैं। एक दण्डी स्वामी कई वर्ष यहाँ अकेले बारहों महीने रहते थे। वे कच्चा आटा और कच्चे आलू खा लेते थे। उनकी गुफा भी बनी है।

स्कन्द पुराण में लिखा है, एकादशी के दिन यहाँ साक्षात् विष्णु स्नान करने आते हैं और पीछे सब देवता ऋषि भी इसमें स्नान करते हैं। तीनों कोनों पर तीनों देवता तप करते हैं। इसके माहात्म्य के सम्बन्ध में यहाँ तक लिखा है कि यहाँ पर जो जप, तप, स्तुति पूजा, नमस्कार आदि पुण्य क्रिया की जाती है उसके फल को ब्रह्मा भी नहीं कह सकते। फिर हम अल्पज्ञ प्राणी इसके सम्बन्ध में और अधिक कह ही क्या सकते हैं।

जपं तपो हरिःक्षेत्रं पूजां स्तुत्यभिवन्दनम् ।
माहात्म्यं कुर्वतां वक्तुं ब्रह्माणाऽपि न शक्यते ॥

सोमकुंड तीर्थ

ततस्तु विमल तीर्थं सोमकुंडाभिधं परम् ।
तपश्चकार भगवान् सोमो यत्र कलानिधिः ॥*

(स्क० पु० व० ७० अ० ११ श्लोक)

अच्छा तो अब सत्पथ कुण्ड से आगे चलिये। जो यात्री सत्पथ को कहीं भूले भटके साल में आ जाते हैं वे प्रायः सत्पथ तक ही जाते हैं। स्वर्गारोहण कोई नहीं जाता। जैसी हमारे यहाँ प्रसिद्धि है कि जो जाय बद्री वह न हो उद्री, उसी तरह वहाँ भी ऐसी प्रसिद्धि है कि जो स्वर्गारोहण जाता है वह लौटकर नहीं आता। श्री बद्रीनाथ के पोस्टमास्टर मेरे साथ सत्पथ स्वर्गारोहण जाने वाले थे, किन्तु उनकी छुट्टी मेरे लौट आने के बाद आई। मुझसे कई दिन बाद वे गये। उनके बड़े भाई डाकखाने के ओवरसियर हैं, अच्छे समझदार हैं, किन्तु उन्हें भी यही भ्रम था। उन्होंने अपने छोटे भाई से साग्रह अनुरोध कर लिया था कि तुम सत्पथ ही जाना,स्वर्गारोहण कभी मत जाना, जब तक तुम लौटकर न आवोगे मैं यहीं प्रतीक्षा करूँगा। बेचारे क्या करते, भाई की आज्ञा शिरोधार्य करके इच्छा रहने पर भी सत्पथ ही से लौट आये। स्वर्गारोहण नहीं गये। हमारे भी सभी साथी कुली यहीं से लौटे। हमने निर्देश कर दिया था कि अमुक स्थान पर रात्रि वास होगा, हम भी स्वर्गारोहण से होकर लौटकर वहीं आ जायँगे। केवल खजांचीजी (चंदूलालजी) और एक मारचा हमारा पथप्रदर्शक हमारे साथ आ गया था। हमारे सौभाग्य से उन ३।४ दिनों में वर्षा नहीं हुई, एकदम बादल खुला रहा जैसा कि उधर बहुत ही कम होता है।

---

* इसके अनन्तर परम विमल सोमकुण्ड नाम का तीर्थ है जहाँ कलानिधि भगवान् चन्द्रदेव ने तपस्या की थी।

वहाँ बारह महीने ३६० दिन ठंड, वर्षा और बर्फ का दौर-दौरा रहता है। ऐसी कहावत है कि पांडव इसी पर्वत पर चढ़कर गल गये, किन्तु महाभारत में उनका गलना सुमेरु पर्वत पर लिखा है जो गिरिराज हिमालय से भिन्न सबसे बड़ा दिव्य पर्वत है। यह उल्लेख तो मिलता है कि हिमालय को पार करके पांडव सुमेरु पर गए। ❀ सम्भव है बदरिकाश्रम होकर यहाँ से चढ़े होंगे और उधर केदार होकर सुमेरु को गये होंगे, क्योंकि मैंने केदारनाथ में भी सुना है कि पांडव इधर से ही गये। गंगोत्री में भी एक सबसे ऊँचा पहाड़ बताया जाता है जहाँ से सुमेरु दर्शन होते हैं। किन्तु सुमेरु तो दिव्य पर्वत है, उसके दर्शन साधारण लोगों को नहीं हो सकते। या तो देवताओं को होते हैं या सिद्ध योगियों को। सम्भव है उस पर्वत का प्रभाव हो कि वहाँ जाने वाले की दिव्य दृष्टि हो जाती हो। हम तो वहाँ गये नहीं। हमारे एक साथी सुमेरु दर्शन के लोभ से गए थे, पता नहीं उन्हें दर्शन हुए या नहीं। सत्पथ से स्वर्गारोहण पर्वत दीखता है और बताया जाता है कि वहाँ बरफ की सीढ़ियाँ हैं। कुछ सीढ़ियों की झलक मालूम तो हमें भी पड़ी। बरफ कट कर सीढ़ियों के आकार की बनी हुई थी। किन्तु स्पष्ट नहीं थी। सम्भव है ज्येष्ठ वैशाख में जब खूब भरी हुई पत्थर की तरह बर्फ जमी हो तो सीढ़ियाँ स्पष्ट दीखती हों।

हाँ, तो सत्पथ के किनारे से ऊपर चढ़कर तलवार की धार के समान पर्वत की लम्बी धार पर बड़ी सावधानी से जाना

❀ ददृशुर्योगयुक्ताश्च हिमवन्तं महागिरिम्।
तं चाप्यतिक्रमन्तस्ते ददृशुर्वालुकार्णवम्॥
अवैक्षन्त महाशैलं मेरुं शिखरिणां वरम्।
तेषां तु गच्छतां शीघ्रं सर्वेषां योगधर्मिणाम्॥
(महाभा० महाप्र० प० २ अ० १, २ श्लो०)

पड़ता है। तनिक भी पैर डगमगाया तो राम नाम सत्य का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाता है। फिर शरीर एक दम असत्य हो जाता है, केवल राम नाम ही सत्य रह जाता है। सत्पथ ही ठहरा। यहाँ झूठ का क्या काम। बरफ गल कर बहती है। पहाड़ों की चट्टानों से बड़े-बड़े पत्थर टूट-टूटकर अड़ड़ड़धुं करके गिरते रहते हैं। क्वार कार्तिक में तो कम गिरते हैं। ज्येष्ठ वैशाख में तो सुनते हैं प्रतिक्षण भयंकर शब्द सुनाई देते हैं। हमने भी इन शब्दों को खूब सुना और पहाड़ों को टूट कर गिरते देखा ऐसा मालूम पड़ता है मानों तोप के गोले छूट रहे हों। महा-समर का प्रत्यक्ष दृश्य दिखाई देता है। यूरोपीय युद्ध का बिना लड़ाई में गये जिन्हें दृश्य देखना और सुनना होवे सत्पथ चले जाँय। वहाँ सदा युद्ध होता रहता है। मालूम पड़ता है जब देवता सत्पथ के तालाव में स्नान करके आते हैं तो असुर उन पर पत्थर फेंकते रहते हैं। यह लड़ाई रात दिन होती रहती है दिन में ज्यों-ज्यों सूर्य चढ़ते हैं यह लड़ाई भयंकर रूप धारण कर लेती है।

धीरे-धीरे बड़ी सावधानी से चल कर आगे बहुत नीचे एक गोल-सा कुण्ड दिखाई देता है। यही सोमकुण्ड तीर्थ है। हम जब गये थे उसमें जल नहीं था। बहुत थोड़ा पानी था। ऐसा सुना है कि अमावस्या को इसमें बिल्कुल जल नहीं रहता। प्रतिपदा से थोड़ा-थोड़ा जमा होता है और पूर्णिमा को पूर्ण हो जाता है। हो सकता है ऐसा हो। हम अमावस्या के लगभग ही गये थे। यहाँ इस जनशून्य घोर जंगल में चन्द्रमा को क्यों आना पड़ा इस सम्बन्ध में एक पौराणिक कथा है—

ये चन्द्रमा अत्रि के पुत्र हैं। महर्षि अत्रि के आश्रम में देवता, यक्ष, गन्धर्व आदि आते ही रहते थे। उनसे उन्होंने स्वर्ग की बड़ी प्रशंसा सुनी। उन्हें भी लालसा हुई कि मैं भी स्वर्ग जाकर

सुख भोगूँ। उन्होंने हाथ जोड़कर अपने पिता से कहा—"पिताजी, मैं चाहता हूँ कि स्वर्ग के दिव्य सुखों का आनन्द से उपभोग करूँ। वह भी स्वर्गीय साधारण देवता नहीं। ग्रह, नक्षत्र, तारा, औषधियों तथा ब्राह्मणों का राजा बनकर अमृत बर्षाता हुआ स्वर्ग में निवास करूँ। कोई उपाय मुझे बताइये कि मेरी यह मनोकामना पूर्ण हो।"

अत्रि महर्षि ने कहा—"बेटा तप से सब साध्य है, तप से दुर्लभ कार्य भी सुलभ हो जाता है। तुम कहीं जाकर तप करो।"

चन्द्रमा चक्कर में पड़ गये, कहाँ तप करूँ जो मेरा यह दुर्घट मनोरथ शीघ्र सिद्ध हो। यह सोच ही रहे थे कि नारदजी कहीं से घूमते-घूमते राम कृष्ण कहते तम्बूरा बजाते आ पहुँचे। चन्द्रमा ने नारद जी का स्वागत किया और बोले—"कहिये नारदजी! कहाँ से आना हुआ?"

नारदजी ने कहा—"भाई मैं तो बदरिकाश्रम से आ रहा हूँ, तुम किस चिन्ता में मग्न हो?"

चन्द्रमा ने कहा—"क्या बतायें नारदजी, ऐसा हमारा मनोरथ है। पिताजी तप करने को कहते हैं, यही सोच रहा हूँ कहाँ जाकर तप करूँ?"

नारदजी का चेहरा खिल उठा। वे अपनी बस्ती बढ़ाने की सदा चिन्ता में रहते हैं, वे उल्लास के साथ बोल उठे—"अरे, इस तनिक-सी चिन्ता के लिये इतने चिन्तातुर हो रहे हो। चलो मेरे साथ बदरिकाश्रम, वहाँ तपस्या का करोड़ गुना फल होता है।

चन्द्रमाजी चल पड़े और सतोपंथ के आगे स्वर्गारोहण के नीचे बैठकर तपस्या करने लगे। एक दो वर्ष नहीं ८८ हजार वर्ष तक अष्टाक्षर मंत्र का जप करते हुए वे वहाँ बैठे रहे। अन्त में भगवान् ने प्रकट होकर वर माँगने को कहा। चन्द्रमा ने वही अपना अभीष्ट वर माँगा।

भगवान् बोले—"ग्रह नक्षत्र, ताराओं तथा औषधियों और ब्राह्मणों का आधिपत्य अत्यन्त दुर्लभ है। तुम कोई और अच्छा सा वरदान माँग लो।"

चन्द्रमा ने कहा—"महाराज ! मुझे इसके सिवाय और कुछ नहीं चाहिये।" भगवान् अन्तर्धान हो गये। चन्द्रमा फिर तप में लग गये। ३० हजार वर्ष बाद फिर विष्णु भगवान् पधारे। चन्द्रमा ने फिर वही अपना पुराना वर दुहराया। भगवान् फिर अन्तर्धान हो गये। तीसरी बार ४० हजार वर्ष और तप करने पर भगवान् ने प्रसन्न होकर उनकी मनोकामना पूर्ण कर दी। तब से चन्द्रमा ग्रह, नक्षत्र, तारा तथा औषधियों और ब्राह्मणों के राजा हुए। उसी दिन से यह कुण्ड सोमकुण्ड के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जो इस सोमकुण्ड के दर्शन करते हैं, इसमें स्नान करते हैं उनके सब पाप छूट जाते हैं।

कर्मणा मनसा वाचयत् कृतं पातकं नृभिः।
तत्सर्वं क्षयमाप्नोति सोमकुंडे क्षणादिह ॥

[मन, कर्म तथा वचन से जो मनुष्य द्वारा पाप होते हैं वे सब पाप इस सोमकुण्ड के दर्शनमात्र से क्षण में नाश हो जाते हैं।]

सूर्यकुण्ड तथा विष्णुकुण्ड

सोमतीर्थ से आगे चलिये। अब पहाड़ पर चलना नहीं होता। अब तो बिछी हुई बरफ पर से रास्ता है। रास्ता क्या है सीध लगाकर चलना होता है। कहीं बरफ के नीचे से पानी बह रहा है, कहीं दोनों ओर से बरफ की नाली बनी है, उसमें जल बह रहा है। बरफ की सफेद नालियाँ ऐसी मालूम पड़ती हैं मानों चाँदी के चौक में नीलम की नालियाँ बनाकर उसमें पारा लगाकर बहाया गया हो। कहीं बरफ का रङ्ग नीला है, कहीं लाल है,

कहीं भँवर पड़ रहे हैं, कहीं नाली नीचे धँस गई है और कहीं पत्थर निकल आये हैं। विचित्र दृश्य है। अवर्णनीय शोभा है। प्रकृति नंगी होकर नाच रही है। उसने घूँघट के पट को हटा दिया है। वहाँ वृक्ष नहीं घास नहीं, पेड़ नहीं पत्ता नहीं, पशु-पक्षी नहीं मनुष्य की जाति नहीं। हैं केवल पत्थर, पानी और हिमखंड।

× × × ×

सूर्यकुण्ड छोटा-सा कुण्ड है। उसी में से एक स्रोत वह रहा है। जल बड़ा स्वच्छ है। शीतलता का तो कहना ही क्या। पिघली हुई बरफ ही है। शरीर काँपने लगता है, आँख पलक नहीं मारना चाहतीं; कान फटने लगते हैं, मन नाचने लगता है और बुद्धि किंकर्तव्यविमूढ़ बन जाती है। यहीं रहने को मिले और संसारी लोगों को, संसारी वस्तुओं की याद न आवे तो यही मुक्ति है, यही वैकुण्ठ है। साक्षात् नारायण के पादपद्मों के सान्निध्य में सामीप्यमुक्ति ऐसी ही होती होगी। यह मलमूत्र का थैला पाँच भौतिक शरीर न रहता होगा, जो नाना व्याधियों का घर है। शेष शान्ति नीरवता और मन की प्रसन्नता तो ऐसी ही होती होगी।

× × × ×

हमने वहाँ स्नान किया। धूप खूब थी। नर-नारायण दोनों पर्वत मिल गये थे, बीच में बरफ से भरा मैदान था। सूर्य की किरणों से नर और नारायण पर्वत की बरफ से ढकी चोटियाँ चमक रही थीं। बालू झिलमिला रही थी। पाषाण खड़खड़ा रहे थे। कहीं-कहीं पहाड़ों से फूलों से एक आध वृक्ष फूटकर अपना अस्तित्व प्रकट कर रहे थे। नहा धोकर आगे बढ़े। हमारे पथ प्रदर्शक ने सामने विष्णुकुण्ड बताया। दूर से ही प्रणाम करके बरफ के समुद्र को लाँघकर आगे बढ़े। हमारा ठहरने का निश्चय एक बड़ी गुफा में हुआ था। वहीं को सीध बाँधकर चलने लगे।

श्रीराम गुफा

आनन्द रामायण में भगवान् रामचन्द्रजी के सत्पथ गमन का स्पष्ट वर्णन है।

गत्वा देवप्रयागञ्चालकनन्दातटेन वै।
नर-नारायणौ गत्वा दर्शनान्मुक्तिदौ नृणाम्॥
बदरिकाश्रमे रामः केदारेशं विलोक्य सः।
महापथं ततो गत्वा ययौ तन्मानसं सरः॥

(आनन्द रामायणे)

अब हम नर पर्वत के किनारे-किनारे चलने लगे। बरफ चारों ओर छायी हुई थी। बरफ के नीचे-नीचे अलकनन्दा का स्रोत बह रहा था। बड़ी कठिनता से पहली एक गुफा को देखने के लिये बरफ के ऊपर से चढ़े। मेरा पैर फिसलते-फिसलते बचा। यदि पथ-प्रदर्शक हाथ न पकड़ता तो मैं सदा के लिये बरफ की गुफा में समाधिस्थ हो जाता, जहाँ शरीर न सड़ता है, न गलता है, जैसे का तैसा हजारों वर्ष पड़ा रहता है।

गुफा में पहुँचे। यहाँ कभी-कभी पहाड़ी बकरियों को लाकर रहते हैं, गुफा क्या है पहाड़ की छत है। वर्षा से बचाव है। पहाड़ टूटने से एक उसारा-सा बन गया है। उसको पार करके हम अपनी निर्दिष्ट गुफा में पहुँच गये। उसका श्रीराम गुफा नाम मैंने अपने मन से रख लिया है। इतनी लम्बी चौड़ी विशाल गुफा मैंने आज तक हिमालय में नहीं देखी। हाँ, नासिक के पास पहाड़ों में ऐसी बनाई बहुत गुफायें देखी हैं। किन्तु यह तो बिना खोदी एकदम प्राकृतिक गुफा है। किन्हीं विष्णुदास नामक साधू ने आधी गुफा में दीवार उठाकर २-३ सुन्दर कोठरियाँ बना ली थीं। अब उनमें जाड़े के दिनों में दो साल से एक साधु आकर ठहरते हैं। गुफा के भीतर ही पानी की सुन्दर धारा है। आधी गुफा में टूटे पहाड़ की बड़ी-बड़ी शिलायें पड़ी हैं।

यदि कोई उन शिलाओं को हटाकर छोटी-छोटी दीवारें बनवा दे तो ५-६ बड़े सुन्दर कमरे बन सकते हैं। भीतर जल की मोटी धारा बहती रहती है। कितनी भी बरफ पड़े इस गुफा में नहीं आ सकती। ऊपर से बरफ के पहाड़ के पहाड़ जाड़ों में फिसलते रहते हैं, किन्तु गुफा में किसी प्रकार का खटका नहीं। खाने-पीने का सामान हो तो १२ महीने मनुष्य मजे से यहाँ चैन की बंशी बजा सकता है। किन्तु हम जैसों के लिये यह जगह नहीं है। लकड़ी यहाँ खूब मिलती है जो गीली ही जलती है। सूखी भी मिलती है। आनन्द से यहाँ रात्रि बिताई।

हाँ, मैंने इसका नाम श्रीराम गुफा क्यों रखा ? एक साधु से मैंने कथा सुनी थी कि श्रीरामजी रावण को मारकर लोकशिक्षा के निमित्त जब तप करने आये तब इसी गुफा में रहे। जल न होने से बाण मारकर उन्होंने गुफा से ही जल की धारा निकाली। भगवान् का तप करने बदरिकाश्रम में आने का उल्लेख तो मैंने किसी पुराण में देखा है, किन्तु इसी जगह रहे और बाण से धारा निकाली, यह किंवदन्ती ही है। इसी आधार पर मैंने इसे श्रीराम गुफा कहा है।

वसुधारा की ओर

प्रातःकाल हम बिछी हुई बरफ की नदी-सी को देखते हुये, कभी पर्वतीय तट पर कभी बरफ पर चलते हुये, भागीरथी स्रोत के समीप के लिंगाकार पर्वत-कोण पर पहुँचे। वहाँ एक धारा नीचे-नीचे आकर अलकनन्दा की धारा से मिलती है। यहीं आकर अलकनन्दा प्रकट होती है। बरफ की गुफासे वेग के साथ निकलती हुई धारा बड़ी ही भली मालूम पड़ती है। इसी तरह गौमुख में गंगाजी की धारा बरफ की गुफा से निकल रही है। यहाँ भागीरथी स्रोत और अलकनन्दा स्रोत का संगम है। यहाँ से अलकनन्दा ने नदी का रूप धारण किया है। आगे चल कर अलकापुरी मिलती है।

अलका पुरी

एक बहुत ऊँची पहाड़ी चोटी का नाम अलकापुरी है। कहते हैं यहाँ अदृश्य रूप से यक्ष गन्धर्व रहते हैं। कुबेर की अलकापुरी तो सुमेरु पर्वत पर है। वहाँ कभी कुबेर आकर रहे होंगे। यहाँ से एक बड़ी वेगवती तीक्ष्ण धारा निकलती है। लोग इसे ही अलकनन्दा का मूल स्थान और स्रोत कहते हैं। मेरे मत में तो यह प्रधान स्रोत नहीं है। यह तो अलकनन्दा का सहायक स्रोत है, जो देखने से प्रत्यक्ष ही मालूम पड़ता है। अलकनन्दा का प्रधान स्रोत तो विष्णु-कुण्ड और सूर्यकुण्ड होकर नारायण पर्वत के पाद-तल से जो जलराशि बहती है वही माना जा सकता है। क्योंकि गङ्गा विष्णुपदी कही गई हैं। नारायण के पाद-तल से ही निकलना उसका प्रमाणिक है और वही युक्ति-संगत, शास्त्र-संगत और प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है।

विष्णुपदी विष्णुपदात्पतिता मेरौ चतुर्धा चास्मात्।
विष्कम्भाचलमस्तकसत्तसरः संगता गता विगता॥
सीताख्या भद्राश्वं सालकनन्दा च भारतं वर्षम्।

(सिद्धान्तशिरोमणौ)

—०—

१६—वसुधारा से बदरीपुरी तक के तीर्थ

वसुधारा तीर्थ

मानसोद्भेदनात् प्रयग् दिशि सर्वमनोहरम् ।
वसुधारेति विख्यातं तीर्थं त्रैलोक्यदुर्लभम् ॥

(स्कन्द पुराणे)

मानसोद्भेद तीर्थ से पश्चिम दिशा में परम मनोहर त्रैलोक्य-दुर्लभ वसुधारा नाम का तीर्थ है।

अलकापुरी के बड़े भारी वेगवान स्रोत को कठिनता से पार करने के अनन्तर, ऊपर पहाड़ से मोतियों को बरसाती हुई, वायु में झोंके खाती हुई, हर-हर शब्द करती हुई वसुधारा की परम पावन धारा दिखाई देती है। इतना सुन्दर मनोहर झरना और कोई भी देखने में नहीं आता। वसुधारा के दर्शनों को बहुत से यात्री आते हैं। बद्रीनाथ की यात्रा में आने वाले यात्रियों का प्रायः आठवाँ भाग यहाँ आता है। बदरीपुरी से यह स्थान पाँच मील है। बड़ा ही सुन्दर और मनमोहक दृश्य है। बहुत ऊँचे से जल की धारा गिरती है और बीच में ही हवा के झोंकों से बिखर कर खील हो जाती है। वे कण पृथक-पृथक गिरते हुए ऐसा मालूम पड़ते हैं मानो मोती झर रहे हों। जल के सुखद कण शरीर में लग कर कँपकँपी पैदा कर देते हैं। शरीर रोमांचित हो जाता है। फुरफुरी छूटने लगती है। इसमें स्नान करना बड़ा कठिन है। नीचे बड़ा भारी खड्ड है। कभी-कभी झोंका आ जाता है तो शरीर सब भीग जाता है। न झोंका आवे तो घण्टों खड़े रहो। कभी तो इतने जोर का झोंका आता है कि कुटी

के पास खड़े रहने पर भी शरीर भीग जाता है। धारा से हट कर ऊपर को कालीकमली वालों की एक छोटी-सी धर्मशाला है, जिसमें एक साधु रहते हैं। स्कन्द पुराण में ऐसा लिखा है कि जो अवैध माता-पिता से उत्पन्न हुये हैं, अथवा पाखंडी या पापी हैं, उनके शरीर पर यह जल नहीं गिरता।

येऽशुद्धपितृजाः पापाः पाखंडमवित्तयः।
न तेषां शिरसि प्रायः पतन्यापा कदाचन॥

(स्कन्द पुराणे)

भगवान् जाने इसमें कितना तत्व है, किन्तु इतना तो हमने प्रत्यक्ष देखा है कि बहुत लोगों के जाते ही फुव्वारे बड़े जोर से इधर ही आ जाते हैं और किसी को देखते ही क्षण भर में उधर चले जाते हैं और बड़ी देर तक नहीं आते। सब लोगों की नहाने की हिम्मत भी नहीं पड़ती। बहुत कम लोग नहाते हैं। नई सभ्यता के नव शिक्षित तो वहाँ जाकर भी घूम फिर कर चले आते हैं। वे सैर सपाटा करने और दृश्य देखने को ही जाते हैं। हाँ, तो अब जल्दी से वसुधारा की पौराणिक गाथा, सुनिये और फिर शीघ्रता से माणा की ओर चलिये। माणा यहाँ से कुल ढाई या तीन मील है।

यहाँ जितने भी तीर्थों को बसाया है सब नारद जी की ही करामात है। नारदीय क्षेत्र होने से नारद जी को बड़ी चिन्ता लगी रहती है कि कहीं बस्ती खाली न हो जाय। वसुओं ने वदरिकाश्रम क्षेत्र की प्रशंसा की। ये भी विचारे प्रशंसा सुन-कर यहाँ आकर तप करने लगे। तीस हजार वर्ष तपस्या करने पर नारायण भगवान् के दर्शन हुये। प्रकट होकर भगवान् ने इन्हें भक्ति का वरदान दिया। तभी से यह परमपावन तीर्थ त्रैलोक्य में विख्यात हो गया। बद्रीनाथ के यात्रियों से मेरा आग्रह है कि वे वसुधारा अवश्य जायँ। यहीं धर्मशाला है। वसुधारा तक अब

तो सड़क भी बन गई है। चलते-चलते वसुधारा का माहात्म्य भी सुन लीजियेः—

अत्र स्नात्वा जलं पीत्वा पूजयित्वा जनार्दनम्।
इहलोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते परमं पदम्॥

जो लोग यहाँ स्नान करके जल पीकर जनार्दन भगवान् का पूजन करते हैं, वे इस लोक में सुख भोगकर अन्त में परम पद को प्राप्त होते हैं।

मानसोद्भेद तीर्थ

मानसं चिदचिद्ग्रन्थिमुद्ग्रन्थन्ति च सर्वतः।
मानसोद्भेद इत्याख्या ऋषिभिः परिगीयते॥

(स्कन्द पुराणे)

यह तीर्थ मन की चिद् और अचित् ग्रन्थियों को भेदन कर डालता है। इसलिये इस तीर्थ का नाम मानसोद्भेद तीर्थ है।

वसुधारा से बदरीपुर की ओर चलिये, दो ढाई मील चल कर आपको भगवती सरस्वती गङ्गा मिलेगी। बड़ी अगाध और तीक्ष्ण नदी है। पत्थरों को तोड़ती फोड़ती तिब्बत की ओर आती है। माणा के पास अलकनन्दा जी में आकर गिरती है। इन दोनों के सङ्गम को "केशव प्रयाग" कहते हैं। अलकनन्दा की एक बड़ी भारी शिला रखी है। वह शिला ही अलकनन्दा का सुन्दर पुल बन गई है। उस पर से आदमी, घोड़े, गाय, बैल, बोझ से लदे खच्चर, डांडी, कण्डी सभी जाते हैं। कहते हैं इसे भीमसेन ने रखा था इसलिये इसका नाम भीम-शिला है। भीम-शिला के सामने से इधर जाते समय बाईं ओर पत्थर को फोड़ कर जल की दो बड़ी मोटी-मोटी धारायें गिरती हैं। लोगों का कथन है कि इतना सुन्दर स्वच्छ और स्वास्थ्यप्रद जल गढ़वाल भर में कहीं नहीं है। इसी तीर्थ का नाम मानसोद्भेद तीर्थ है।

पुराणों में इसका बड़ा भारी माहात्म्य बताया है। इसकी प्रशंसा करते-करते यहाँ तक कह दिया है—

साधनानि बहुन्येव कायक्लेशकराण्यहो।
सुलभं साधनं लोके मानसोदभेद्दर्शनम् ॥

संसार में बहुत से शरीर को क्लेश देने वाले साधन हैं किन्तु सबसे सुलभ पापों के नाश करने का साधन यही है कि वह जाकर मानसोद् भेदतीर्थ का दर्शन कर ले।

केशव-प्रयाग

मानसोद्भेद तीर्थ भीम-शीला के सामने ही है। अभी आप आगे न जायँ, न भीम-शीला को पार ही करें, किन्तु वसुधारा की ओर ही सरस्वती के किनारे किनारे चलें। वहाँ आपको भगवती अलकनन्दा और सरस्वती का सुन्दर सुहावना सङ्गम दिखाई देगा। केदार खण्ड में इनका नाम "केशव-प्रयाग" लिखा है। स्कन्द पुराण में सरस्वती की बड़ी महिमा बताई गई है। वहाँ लिखा है यह द्रव रूपा साक्षात् वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती है। इसके जल में मन्त्र, जप और अनुष्ठान का बड़ा फल है। भगवान् वेदव्यास जी इसी का जल पीने से तथा इसी सरस्वती की कृपा से पुराणों के मर्मज्ञ हो गये। इसीलिए इसके जल की बड़ी महिमा गाई है। लिखा है—

दर्शन-स्पर्श-स्नानपूजा-स्तुत्यभिवन्दनैः ।
सरस्वत्या न विच्छेदः कुले तस्य कदाचनः ॥

जो सरस्वती का दर्शन, स्पर्श, स्नान, पूजा, स्तुति अथवा वन्दना करते हैं, उनके कुल में कभी सरस्वती का विच्छेद नहीं होता है। उसके वंश के लोग सब बुद्धिमान होते हैं।

इस विषय में शङ्का हो सकती है कि ये माणा के मारचे

(हुड़िया) हमेशा स्नान जलपान करते रहते हैं, ये तो सब प्रायः ऐसे के ऐसे रह जाते हैं। बात यह है कि तीर्थों में भी पात्रता के अनुसार शास्त्र विधि से जो क्रिया करते हैं उन्हें ही फल मिलता है। इसके आगे ही वसुधारा के माहात्म्य को कहकर स्पष्ट शब्दों में बताया है कि यहाँ पर झूठ बोलने वाले, लोभी, चञ्चल चित्त वाले, परिहासप्रिय, परधन परस्त्री को कपट से हरण करने वाले, मलिन वस्त्र पहिनने वाले, अशान्त अशुचि, जिन्होंने सत् क्रियाओं का त्यागकर दिया है, ऐसे मलिन चित्त वालों को फल नहीं होता। जो लोग सच्चे साधक हैं, शान्त हैं, सरल हैं, उन शास्त्र विधि से चलने वाले पुरुषों के ही जप, तप, होम, दान, व्रत आदि सत् क्रियायें अक्षय होती हैं।

ये तत्र चपलास्तथ्यं न वदन्ति च लोलुपाः।
परिहास परद्रव्य-परस्त्री- कपटाग्रहाः॥
मलचैलावृताऽशान्ताशुचयस्त्यक्तसत्क्रियाः।
तेषां मलिनचित्तानां फलमत्र न जायते॥
ये तत्र साधकाःशांताः विरला विधिवर्त्मगाः।
तेषां जपस्तपो होमो दान-व्रत-जपाः क्रियाः॥
क्रियमाणा यथाशक्त्या ह्यक्षय्यफलदायकाः।

(स्कन्द पु० वद० म० ६ अ० ६९ से ७२ श्लोक०)

भावना ही प्रधान बताई गई है। नारदपुराण में लिखा है, गंगादि तीर्थों में मछलियाँ भी रहती हैं, देवालयों में पक्षी भी निवास करते हैं, भावहीन होने के कारण वे फल प्राप्त नहीं कर सकते। इसी तरह देवीभागवत में भी स्पष्ट शब्दों में कहा गया है—

पहिले मन शुद्ध और पापरहित होना चाहिये। तब सब तीर्थ पवित्र करने वाले होते हैं। देखो, गङ्गाजी के तीर पर अनेक नगर बसे हुए हैं। व्रज, गोष्ठ, खान, गाँव, झोपड़ियाँ

छोटे गाँव, निषाद, मछली मारने वाले कैवर्त, हूण, म्लेच्छ, बँग खस आदि बहुत-सी पापयोनियों वाले पुरुष बसे हुए हैं और वे सब खूब भरपेट स्वेच्छा से ब्रह्म के समान पवित्र गङ्गाजल का पान भी करते हैं। परन्तु उनमें से एक भी विशुद्धात्मा नहीं बनता। जिनका चित्त विषयों में ही अत्यंत आसक्त है उनके लिये तीर्थ क्या करेंगे। पाप पुण्य का कारण तो मन ही है अतः जो शुद्धि की इच्छा वाले हों उन्हें पहिले मनकी शुद्धि करनी चाहिये।

प्रथमं चेन्मनः शुद्धं जातं पापविवर्जितम्
तदा तीर्थानि सर्वाणि पावनानि भवन्ति वै।
गङ्गातीरे हि सर्वत्र वसन्ति नराणि च
व्रजाश्चैवाकरा ग्रामाः सर्वे खेठास्तथाऽपरे।
निषादानां निवासश्च कैवर्तानां तथाऽपरे
हूण-बंग खसानां च म्लेच्छानां दैत्यसत्तम।
पिवन्ति सर्वदा गंगा जलं ब्रह्मोपमं सदा
स्नानंकुर्वंति दैत्येन्द्र त्रिकालं स्वेच्छया जनाः।
तत्रैकोऽपि विशुद्धात्मा न भावत्येव मारिषु
किं फलं तर्हि तर्थस्य विषयोपहमात्सु।

(देवी० भा० ४ स्क० ८ अ० २९ से ३३ श्लो०)

सम्याप्रास तीर्थ

ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यामाश्रमः पश्चिमे तटे।
शम्याप्रास इति प्रोक्त ऋषीणां सत्रवर्धनः॥

(भाग० १ स्क० ७ अ० २ श्लो०)

जिधर संगम है अर्थात् सरस्वतो के पश्चिम तट पर वसुधारा की ओर से ही सम्याप्रासतीर्थ है, जहाँ भगवान् व्यास जी रहते थे। तीर्थ का कोई चिन्ह तो अव शेष रहा नहीं, किन्तु उस भूमि का ही नाम सम्याप्रास है। बड़ी पवित्र और सुन्दर भूमि है।

हमने संगम पर डेरा तम्बू लगाकर श्रीमद्भागवत् सप्ताह किया था। भगवान् वेदव्यास के आश्रम के सम्बन्ध में कहा है "तस्मिन् स्व आश्रमे व्यासो बदरीखण्डमंडिते।" वहाँ पहाड़ी बदरी के वृक्ष बहुत हैं। हमारे यहाँ की झरबेरियों के जैसे बेर होते हैं, उतने ही बड़े होते हैं, किन्तु पेड़ और फल की आकृति हमारे यहाँ के वृक्षों और फलों से भिन्न ही है। भगवान् वेदव्यासजी ने पुराणों और वेदों का व्यास नर-नारायण पर्वत के बीच में देवी माता मूर्ति के सामने सरस्वती के तट पर, यहीं किया है। इसीलिये वे प्रत्येक पुराण तथा महाभारत के अन्त में नर-नारायण नरोत्तम, देवी (माता मूर्ति) और सरस्वती की वन्दना करते हैं। क्योंकि स्थान की, अधिष्ठातृदेवता की तथा पड़ोसी की वन्दना करनी ही चाहिये। इसीलिये वे कहते हैं—

> नारायणं नमस्कृत्य नरंचैव नरोत्तमम्।
> देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

व्यास गुफा और गणेश गुफा

सम्याप्रास से भीम-शिला के ऊपर से होते हुए माणा ग्राम में आ जाइये। यहाँ एक व्यास गुफा है। सुनते हैं, व्यासजी ने इसी गुफा में बैठकर पुराणों को लिखा था, किन्तु पुराणों में सम्याप्रास को सरस्वती के पश्चिम तट पर ही बताया है। ठीक है, कोई बात नहीं, बिलकुल पास ही में तो हैं। वहाँ रहते होंगे। नहा-धोकर धूप में लिखने को इधर चले आते होंगे। सामने ही गुफा है। सुनते हैं व्यासजी अपनी गुफा में से बोलते जाते थे, गणेश जी यहाँ बैठे-बैठे लिखते जाते थे। ऋषि लिखाने वाले और सब देवों में अग्र पूजा पाने वाले देव लिखने वाले। कौन आश्चर्य है कि इतनी दूर से बैठे-बैठे उनकी वाणी सुनकर वे लिखते न रहे हों।

मुचुकुन्द गुफा

जिस तरह व्यास गुफा है, उस पहाड़ की चोटी पर बहुत ऊँचे मुचुकुन्द गुफा है। जब कालिया यवन को मुचुकुन्द की दृष्टि से भस्म कराके भगवान् कृष्णचन्द्र जी महाराज मुचुकुन्द के सामने प्रकट हुए तब मुचुकुन्द ने उनकी स्तुति की। भगवान् ने कहा अब तुम जाकर तप करो, तुमने बहुत शिकार आदि खेल कर हिंसा की है, अगले जन्म में तुम ब्राह्मण होगे, तब तुम्हारी मोक्ष होगी। यह सुनकर भगवान् की प्रदक्षिणा करके मुचुकुन्द श्रीबदरिकाश्रम को ओर चले आये। सुनते हैं उन्होंने आकर यहीं पर तप किया था।

बदर्याश्रममासाद्य नर नारायणालयम्।
सर्वद्वंद्वसहः शान्तस्तपसाऽऽराधयद्धरिम्॥

(भा० १० स्क० ५२ अ० ४ श्लोक)

बड़ी भारी गुफा है। बहुत नीचे है। टूटे-फूटे पत्थर खण्ड बहुत भरे हैं। भीतर वर्षा का जल भी भर जाता है। माणा के मारचे यहाँ आकर कभी-कभी हवन भी करते हैं। श्रावणी जन्माष्टमी पर बहुत लोग दर्शन करने यहाँ आते हैं।

कलाप ग्राम

मुचुकुन्द गुफा के पीछे बड़ा भारी मैदान है। नीचे भगवती सरस्वती की निर्मल धारा बह रही है। बड़ा ही सुन्दर दृश्य है। उस पार भी मैदान है। उसी पार से सरस्वती के किनारे-किनारे तिब्बत का रास्ता है। उसी रास्ते से थोलिङ्गमठ होते हुए मानसरोवर कैलाश के लिये जाते हैं। सुनते हैं कलाप ग्राम में गुप्त रूप से बहुत से ऋषि मुनि और राजर्षि रहकर तपस्या करते हैं। किसी भाग्यशाली को उनके दर्शन भी हो जाते हैं। हमारे ऐसे भाग्य कहाँ! स्थान बड़ा रमणीक है। पहाड़ की चोटी पर ऐसा मैदान कम देखने में आता है। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि

भीष्मपितामह के चाचा शान्तनु के भाई देवापि चन्द्रवंश के और इक्ष्वाकु के वंशज महाराज मरु ये दोनों योग बल से कलाप ग्राम में रहकर तपस्या कर रहे हैं। जब कलियुग का अंत होकर सत्ययुग लगेगा तो वे तपस्या छोड़कर फिर से सूर्यवंश और चन्द्रवंश की स्थापना करेंगे। क्या ठिकाना इन लोगों की आयु का! यदि ऐसा न हो तो सूर्यवंश और चन्द्रवंश का बीज ही नष्ट हो जाय। अब शुद्ध क्षत्रियवंश कहाँ रहा! ऐसे राजर्षि ही ऐसे पावन वंशों को नष्ट नहीं होने देते।

देवापिः शन्तनोर्भ्राता मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः।
कलापग्राम आसाते महायोगबलान्वितौ॥
ताविहैत्य कलेरन्ते वासुदेवानुशिक्षितौ।
वर्णाश्रमयुतं धर्मं पूर्ववत् प्रथयिष्यतः॥
(श्रीभा० १२ स्क० २ अ० ३७, ३८ श्लोक)

चतुर्वेद धारा

अनुक्रमेण तिष्ठन्ति वेदाश्चत्वार एव च।
ऋग्यजुःसामाथर्वाख्या भगवत्पार्श्ववर्तिनः॥
(स्क० पु० व० अ० ३४ श्लोक)

चारों वेद ऋग, यजु, साम और अथर्व इस क्रम से भगवान् के समीप ही रहते हैं, धार रूप से बहते हैं।

कलाप ग्राम में आप उतरकर फिर माणा ग्राम में आ जाइये उत्तर दिशा में यह भारत वर्ष का सबसे अन्तिम ग्राम है, इससे आगे कोई ग्राम नहीं। इसका प्राचीन नाम मणिभद्रपुर है। इसमें मारचे-हूणिये-रहते हैं। इनका व्यापार तिब्बत के बौद्ध हूणियों के साथ होता है। यहाँ से गेहूँ, जौ फाफर आदि ले जाते हैं।

उधर से ऊन नमक आदि ले आते हैं। ये लोग हिन्दू धर्म को ही मानते हैं। नेति घाटी में तथा अलमोड़ा से आगे तकला कोट के आस पास भी बहुत मारछे रहते हैं।

माणा से बदरीपुरी जाने का सीधा सरल यही रास्ता है कि माणा के पुल से अलकनन्दा को पार करके सड़क-सड़क इन्द्रधारा होते हुए बदरीपुरी में पहुँच जायँ। किन्तु हम ठहरे तीर्थयात्री, हमें तो परिक्रमा करते हुए पहुँचना है। अतः अलकनन्दा को पार करके माणा ग्राम से इसी पार नर पर्वत के किनारे-किनारे चलिये। रास्ता सुन्दर है कोई कष्ट नहीं, अब करीब दो ढाई मील ही तो चलना है।

दूर के ही नर पर्वत से सर्प की तरह वक्रगति से इठलाती हुई चिल्लाती और भागती हुई चार धारायें दिखाई देती हैं। ये चारों वेद की धारायें हैं। बद्रीनाथ जी की तरफ से इनकी ऋग, यजु, साम और अथर्व इस क्रम से गणना है। इस हिसाब से हमें उधर जाते हुए पहिले अथर्व धार, फिर क्रम से साम, यजु और ऋग्वेद धारा मिलेंगी। धाराओं में विशेष जल नहीं है। आसानी से पार की जा सकती हैं। चारों वेद यहाँ धारा होकर क्यों बहने लगे, इस सम्बन्ध में एक पौराणिक गाथा है।

जब ब्रह्माजी के मुख से निसृत वेदों को मधुकैटभ दैत्य हर ले गये, तब भगवान् ने हयग्रीवावतार लेकर उस दैत्य से वेदों को लाकर ब्रह्माजी को दिया। बदरिकाश्रम की ऐसी महिमा देखकर वेदों ने और ब्रह्माजी ने उस स्थान को छोड़कर ब्रह्मलोक जाने की इच्छा ही न की। तब से सभी काम गड़बड़ाने लगा। वेद और ब्रह्माजीसे ही तो सृष्टि है, यदि ये ही दोनों यहाँ रह गये तो सृष्टि का तो काम रुक जायगा। इसलिये सिद्धों ने आकर इनकी स्तुति की। वेदों ने अपने दो रूप बनाये। एक रूप से तो वे ब्रह्माजी के साथ ब्रह्मलोक चले गये और एक रूप से धारा होकर यहाँ रहने

लगे। जो इनके दर्शन स्पर्शन, पूजन तथा इनमें स्नान करते हैं, उनके सब पाप छूट जाते हैं—

द्रवरूपेषु वेदेषु स्नान-दान तपः क्रियाः।
कृता विच्छेदिता न स्युर्याविदाभूतसंप्लवम् ॥

(स्क० पु० व० ६ अ० ३२ श्लोक)

शेषनेत्र होते हुए पुरी में

चारों वेदों की धाराओं को पार करके शेष नेत्र मिलते हैं। यहाँ शेषजी के नेत्रों के चिन्ह एक शिला पर बने हुए हैं। यहाँ से बदरीपुरी की शोभा बड़ी ही निराली दिखाई देती है। आगे अलकनन्दा के ऊपर बहुत-सी साधुओं की छोटी-छोटी कुटियाँ बनी हैं। उनमें होते हुए बदरीपुरी की प्रधान यात्रा-सड़क पर आ जाइये। अलकनन्दा के पुल को पार करके बदरीपुरी से सटे हुए बामनी गाँव से ऋषि गंगा को पार कीजिये। "बोलो बदरी विशाल लाल की जय, बोलो गरुड़ भगवान् की जय, बोलो स्वर्गारोहण और सत्पथ की जय।" अब आपको सत्पथ और स्वर्गारोहण की यात्रा समाप्त हो गई। अब पुरी में रहकर मजे से भगवान् का प्रसाद पाइये और चैन की बंशी बजाइये।

चरणपादुका तथा उर्वशी कुण्ड

नारद पुराण, वामन पुराण, और स्कन्द पुराण सभी में लोकपाल के बाद उर्वशी कुण्ड का वर्णन है। यदि बद्रीनाथजी के मन्दिर के पीछे के पर्वत से चढ़ें तो चढ़ते-चढ़ते अवश्य ही सत् पथ के ऊपर पहुँच जायेंगे। इधर से अलकनन्दा के किनारे-किनारे भी घूमकर उधर ही जाते हैं, किन्तु सत्पथ से सीधे नारायण पर्वत पर चढ़ना बड़ा कठिन है। उर्वशीकुंड का उल्लेख उसी पर्वत के शिखर पर मिलता है। ऐसी किंवदन्ती है कि भेड़ बकरी चराने वाले उर्वशी कुण्ड तक पहुँचते हैं, किन्तु हमने किसी

को नहीं देखा जिसने उर्वशी कुण्ड के दर्शन किये हों। वह बहुत ही ऊपर अगम्य स्थान पर बताया जाता है। बद्रीनाथ जी के मन्दिर के पीछे से "चरणपादुका" होकर वहाँ जाने का रास्ता है। चरणपादुका तक तो हम भी गये हैं। सभी जाते हैं। बहुत ऊँची जगह नहीं है। भगवान् बद्रीनाथ जी के मन्दिर में भोग बनाने के लिये भोग मंडी में लोहे का नल लगाकर चरणपादुका पर्वत से ही पानी लाया जाता है जो भोग मण्डी में सदा आता रहता है। चरणपादुका से ऊपर ही उर्वशी कुण्ड बताया जाता है। यहीं पर भगवान् ने अपनी जङ्घा से उर्वशी को उत्पन्न किया जिसे देखकर कामदेव, वसन्त, वायु और स्वर्ग की अप्सरायें लज्जित हुई और जो स्वर्ग की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी देवाङ्गना हुई। इसी से इस तीर्थ का निर्माण किया। इसमें स्नान करने का बड़ा माहात्म्य बताया है। जब हम वहाँ पहुँच ही नहीं सके तो माहात्म्य बताना भी बेकार है। यहीं कहीं नर-नारायणाश्रम भी बताया है। इसके अतिरिक्त भी अनेकों छोटे-मोटे गुप्त प्रकट तीर्थ भी हैं, जिनके लिये महादेवजी कहते हैं—"इन्हें मैं ही जानता हूँ दूसरा कोई नहीं जानता।" कूर्म तीर्थ और तैमिंगल तीर्थ भी बताये हैं। कूर्म धारा ही कूर्म तीर्थ है। तैमिंगल तीर्थ का पता नहीं चला। हमने प्रसिद्ध प्रसिद्ध तीर्थों का संक्षेप में वर्णन किया है। वैसे तीर्थ तो बहुत से हैं। अन्त में हम श्री भगवान् के चरणारविन्दों का ध्यान करते हुए इस प्रकरण को समाप्त करते हैं। आगे लोकपाल का वर्णन सुनिये—

जन्मान्तरार्जित-महादुरितान्तरायो ।
लीलावतार-रसिकं सुकृतोपलभ्यम् ॥
ध्यायभहो धरणि-मंडन-पाद-पद्मम् ।
त्वामागतोऽस्मि शरणं बदरीवनेऽस्मिन् ॥

—:—

१७—लोकपाल-यात्रा

ततस्तु परम तीर्थं लोकपालोभिवन्दितम् ।
यत्र संस्थापयामास लोकपालान् हरिः स्वयम् ॥

(स्क० पु० व० ८ अ० २० श्लोक०)

जैसे हम नीचे के लोग बदरी, केदार, गंगोत्री और यमुनोत्री की यात्रा को कठिन समझते हैं उसी तरह बदरीनाथ में तीन यात्रायें कठिन समझी जाती हैं। कैलाश मानसरोवर की यात्रा सत्पथ-स्वर्गारोहण की यात्रा और लोकपाल की यात्रा। नर पर्वत पर लोकपाल एक बहुत ही प्रसिद्ध, परम पवित्र, अत्यन्त रमणीक और महान् दुर्गम तीर्थ है। इसकी इतनी प्रसिद्धि के कई कारण हैं। इधर १०-१५ वर्ष से विदेशी यात्रियों का ध्यान भी इस ओर अधिक आकर्षित हुआ है। एक बार सम्वत् १९८८ वि० में मिस्टर एफ० एस० स्माइथ ने इन पहाड़ों की चोटियों पर यात्रा की और भूलते-भटकते यहाँ आ पहुँचे। तभी से इसका पता चला। इन्होंने जब फूलों से भरी इस घाटी को देखा तो ये परम विस्मित हुए। प्रकृति के इस महान् शोभाशाली शैल शृंग को देखकर इनकी प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं रहा।

वे वृक्ष तथा वनस्पति विद्या के विशेषज्ञ थे। सं० १९९४ वि० में वे फिर आये और उन्होंने वहाँ फूल चुनना आरम्भ किया। लगभग २५० भाँति-भाँति के फूलों को, उनके बीजों को एकत्रित किया। इन सब फूलों को, उन्होंने विलायत की एक प्रसिद्ध वाटिका को दे दिया। वह वाटिका वहाँ द्वितीय श्रेणी की समझी जाती थी। प्रथम श्रेणी का जो राजकीय उद्यान था उसके संचालकों को यह बात बुरी-सी लगी। विदेशों में सब क्षेत्रों में इस

बात की होड़-सी रहती है कि हमारे यहाँ अधिक वस्तुओं का संग्रह हो, हम सर्वश्रेष्ठ श्रेणी में रखे जायँ। इसलिये लोकपाल की ख्याति सुनकर राजघराने की एक ५५ वर्षीया कुमारी बुढ़िया साहस करके यहाँ फूल चुनने आई। इन विदेशियों की कितनी भारी हिम्मत होती है! इनका सहसा कितना प्रशंसनीय है! राजमहलों में रहने वाली एक बुढ़िया अपने सभी सुखों को छोड़कर केवल जनता की सेवा की भावना से भावित होकर हजारों कोस की दूरी पर एक ऐसे अगम्य स्थानके लिये चल पड़ी जहाँ मृत्यु पग-पग पर क्रीड़ा कर रही है, जो स्थान साधारण लोगों के लिये भी दुर्गम समझा जाता है।

अपने देश से अकेली ही चलकर वह भारतवर्ष आई और धीरे-धीरे जोशीमठ पहुँच गई। वहाँ से उसने लोकपाल के लिये पहाड़ी कुलियों की सहायता से प्रस्थान किया। घाँघरिया के समीप उसने अपना डेरा डाला। वह स्वयं ही लक्ष्मण गङ्गा के उस पार घाटियों में फूल चुनने जाती और उन्हें सुरक्षित डोलों में रखती। ज्यों की त्यों उन्हें स्याही सोखते में रखकर सुखाती और फिर अपने देश को भेजती। इस प्रकार उसने अनेक प्रकार के फूल तो भेज दिये। एक फूल के लिये वह झुक रही थी कि सहसा झटका लगने से वह गिर पड़ी और सदा के लिये हिमालय के गर्भ में सो गयी वहाँ पर उसकी समाधि (कब्र) बनी है।

तब से जो पर्वतारोही विदेशी आते हैं, इस स्थान को देखने जरूर आते हैं। उन लोगों के लिये वह एक तीर्थ ही बन गया है। सचमुच तीर्थों में यही होता है। जहाँ लोग धर्म के लिये जनता के उपकार के लिये बलिदान करते हैं, वहाँ तीर्थ बन जाता है।

यह स्थान अभी हाल में सिक्खों का भी तीर्थ बन गया है। इसका इतिहास इस प्रकार है। पंजाब में दसवें गुरु गोविन्दसिंह जी ने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये बड़ा भारी बलिदान किया।

धर्म की रक्षा के लिये उन्होंने बड़े कष्ट सहे। जंगलों में मारे-मारे भटकते रहे। उनके पुत्रों को जीते दिवालों में चुन दिया गया। घूम-घूमकर उन्होंने मुसलमानी अत्याचार के विरुद्ध संगठन किया, सैन्य एकत्रित किया और स्वयं युद्धक्षेत्र में भी अवतीर्ण हुए। उन्होंने एक महान् आचार्य और लोकगुरु की तरह केवल उपदेश ही नहीं किया, किन्तु शस्त्र लेकर युद्ध भी किया और बड़े साम्राज्य की नींव डाली।

उन्हीं दशवें बादशाह का एक ग्रन्थ है। इसका नाम है विचित्र नाटक। उसमें उन्होंने अपने पूर्व जन्म की कथा लिखी है। पूर्व जन्म में हम कौन थे, यह बताते हुए वे लिखते हैं—

"अब मैं अपनी कथा बखानों। तप साधत जिहि विधि मोहिजानों
हेम कुण्ड पर्वत है जहाँ। सप्त शृंग सोहत है वहाँ॥
सप्त शृंग तिहि नाम कहावा। पांडु राज जहँ जोग कमावा॥
तहँ हम अधिक तपस्या साधी। महाकाल कालका आराधी॥
एहि विधि करत तपस्या भयो। द्वै ते एक रूपह्वै गयो॥

(विचित्र नाटक स० ६)

उसमें सप्तशृंग, हेमकुण्ड लोकपाल आदि नामों को देख कर सिक्ख सोचते थे कि यह स्थान कहाँ है। बहुत दिनसे सिक्ख सरदार इस स्थान की खोज में थे। सहसा टिहरी में उन्हें इस लोकपाल स्थान का पता चला। तब उन लोगों ने दरबार करके बड़ी भारी प्रसन्नता मनाई, बड़ा भारी उत्सव किया, तभी से सिक्ख यहाँ आने लगे हैं। ऊपर हेम कुण्ड पर एक छोटा-सा गुरुद्वारा बना है। वहाँ एक सिक्ख साधु भी कभी-कभी रहते हैं, नीचे सिक्खों ने घाँघरिया में दो धर्मशालायें भी बनाई हैं। इस प्रकार यह सिक्खों का भी तीर्थ स्थान हो गया है। हिन्दुओं का तो यह अनादि तीर्थ है ही।

वामन पुराण, नारद पुराण और स्कन्द पुराण तीनों में इसका

बड़ा भारी माहात्म्य वर्णन किया गया है और तीनों में लगभग एक-सी ही कथा है। इस तीर्थ को नर पर्वत पर सुमेरु तीर्थ के समीप बताया है।

सुमेरु तीर्थ

ब्रह्मकुण्डाद् दक्षिणतो नरावासगिरिर्महान्।
यत्र भगवता मेरुः स्थापितो लोकसुन्दरः॥

ब्रह्मकुण्ड (ब्रह्मकपाली) से दक्षिण दिशा में (अलकनन्दा के उस पार) नर भगवान् के रहने का नर नाम का महान् पर्वत है, जहाँ पर भगवान् ने स्वयं सुमेरु पर्वतको लाकर स्थापित किया था। भगवान् ने सुमेरु पर्वत को लाकर स्थापित किया इस विषय में एक पौराणिक गाथा है।

भगवान् वदरी विशाल ने जब वदरी क्षेत्र को अपना निवास-स्थान बनाया, तब सब देवता घबड़ाये। वे सोचने लगे—"जब भगवान् ही गन्धमादन पर्वत पर जाकर बस गये तो फिर हम लोग सुवर्ण के सुमेरु पर्वत पर बस कर क्या करेंगे। इसलिये आठों लोकपाल तथा सब देवता सुमेरु छोड़कर वदरी वन में आ गये। भगवान् ने कहा—"अरे, तुम लोगों ने यह क्या किया? सुवर्ण के सुमेरु शैल का क्यों परित्याग कर दिया?"

देवताओं ने कहा—"जहाँ राजा तहाँ प्रजा। आप तो यहाँ आ वसे, हम फिर वहाँ सुमेरु में रहकर क्या करेंगे? भगवान् हँस पड़े और बोले—"अच्छी बात है, हम सुमेरु को ही यहाँ ले आते हैं।" यह कहकर भगवान् लीलासे अपने हाथों से सुमेरु के सुवर्ण शृंगों को उखाड़ लाये। उन शिखरों को नर पर्वत पर स्थापित करके कहा - "तुम सब लोग यहीं रहो।"

भगवान् की इस दयालुता का स्मरण करके सब लोकपाल तथा अन्य देवता और ऋषि भगवान् की स्तुति करने लगे। उनकी

स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् ने उनसे वर माँगने को कहा। उन लोगों ने यही वर माँगा कि 'भगवन् ! जो लोग हमारे इस सुमेरु पर्वत का दर्शन कर लें उन्हें आप मरने पर सच्चे सुमेरु पर वास दें।' भगवान् 'बहुत अच्छा ऐसा ही होगा' कहकर अन्तर्धान हो गये। तब से यह परम पावन प्रसिद्ध तीर्थ हो गया और लोकपाल तथा अन्य देवता एक रूप से वहाँ रहने लगे और दूसरे रूप से सुमेरु पर।

अब तो सुमेरु पर सुवर्ण के शृंग हैं नहीं। कलियुग का प्रभाव होगा या सुवर्ण शृंग दबे होंगे या यहाँ आते-आते वे पत्थर हो गये होंगे कुछ भी हो सुवर्ण तो नहीं है, किन्तु एक सज्जन ने मुझे बताया कि लोकपाल के उस तरफ के पहाड़ में नीलमणि के पत्थर निकलते हैं। निकलते होंगे, किन्तु वहाँ जाना भी तो सहज काम नहीं। दुःख है कि हम लोकपाल (भ्यूँडार) ८-१० दिन रहे, किन्तु सुमेरु तीर्थ न जा सके।

लोकपाल, दण्डपुष्करिणी या हिमकुण्ड

ततैव शैलदण्डेन हत्वाद्रिं जलकांक्षया।
क्रीडापुष्करिणीं तेषां निर्ममे समनोहराम् ॥

(स्कन्द पुराणे)

वहीं पर उन देवताओं के लिये जल निकालने की इच्छा से भगवान् ने सुमेरु पर्वत पर शैल-दण्ड का प्रहार करके एक अत्यंत मनोहर क्रीड़ा-पुष्करिणी की रचना की।

लोकपाल श्री बदरीकाश्रम से बहुत दूर नहीं है। बद्रिकाश्रम से ४ मील हनुमान चट्टी है। बस, उसके ऊपर ही लोकपाल है। किन्तु उधर से रास्ता नहीं है, इसीलिये लगभग २०-२० मील घूम कर बदरीनाथ से जाना पड़ता है। श्री बदरीनाथ से यात्रा-सड़क पर लौटकर पांडुकेश्वर आइये। पांडुकेश्वर

से दो मील नीचे उतर कर 'भ्यूँडार' गाँव को जाने के लिये अलकनन्दा पर एक पुराने ढंग का झूला (पुल) है। उसे पार करते समय अलकनन्दा को देखते ही बड़ा भय लगता है। जब यह ढीला-ढाला पुल हिलता है, तो ऐसे प्रतीत होता है मानों अभी यह टूट कर हमें लेकर गंगा जी में गिर पड़ेगा। निर्बल हृदय का मनुष्य तो चक्कर खा कर नीचे भी गिर सकता है। किन्तु पहड़ियों और पहाड़ी यात्रा करने वालों के लिये उसे पार करना साधारण बात है। पुल को पार करते ही सामने लक्ष्मण गंगा मिलेगी। यह खास लोकपाल के तालाब से ही आती है। पहाड़ों में प्रायः रास्ते नदियों के किनारे-किनारे ही होते हैं या यों कहिये कि पर्वत अगम्य और निवास के अयोग्य बन जाते हैं। कोई वहाँ न जा सकता था न रह सकता था, जाने को रास्ता न मिलता, यदि कोई चला भी जाता तो झरनों तथा नदियों के अभाव में जल कहाँ से मिलता। कुआँ तो वहाँ खोदे नहीं जा सकते। इसीलिये नदियों को शैलपुत्री, गिरि-दुहिता आदि कहा है। सब नदियों का विवाह समुद्र के साथ हुआ है अतः शैल और समुद्र दोनों समधी हैं।

हाँ, तो लक्ष्मण गंगा के किनारे-किनारे सीधी चढ़ायी है। लक्ष्मण गंगा की शोभा अनुपम है। पहाड़ों को तोड़ती फोड़ती बड़े वेग से गिर रही है और पांडुकेश्वर से दो मील आगेलकड़ नामक स्थान पर अलकनन्दा से आकर मिली है। इसका प्रवाह अत्यन्त तीक्ष्ण है, क्योंकि बहुत ऊँचे से गिरी है। लोकपाल जाने का कोई बना हुआ रास्ता नहीं। पहाड़ी पगडंडी है, चढ़ाई तो पग-पग पर है। हे भगवान्! तुमने यह कैसी लीला रच दी है तुम्हारा खेल निराला है। इतनी कठिन चढ़ाई में भी मनुष्य जाता है। क्यों? प्रकृति का सौन्दर्य देखने के लिये। चलते-चलते भ्यूँडार गाँव का शीतकालीन निवास मिला। इधर बस

छोटा-सा एक गाँव है भ्यूँडार। वह लोकपाल से ४-५ मील नीचे है। वहाँ से भी जाड़ों में सब लोग उतर कर दो मील नीचे आ जाते हैं। गर्मियों में फिर ऊपर चले जाते हैं। दोनों जगह साधारण से मकान बने हैं। रास्ते में विच्छू घास बहुत है। विच्छू घास जहाँ तनिक भी शरीर से स्पर्श हो जाती है वहाँ अनेकों बिच्छू काटने की पीड़ा होती है। उस जगह आग-सी लग जाती है और दो तीन दिन कष्ट रहता है। वहाँ विच्छू घास का पौधा कई तरह का होता है बड़ा होता है। उसमें काँटेदार घुन्डी की तरह फूल से होते हैं यदि घोड़े के अंग में वे चिपट जायँ तो घोड़ा मर जाता है पहाड़ों में विच्छू घास ही सबसे दुखदायी चीज है। सहस्रधारा पर जब हम थे तब जो भी नया आदमी आता उसे हँसी-हँसी में उस पेड़ को छूने को कहते। वह सहज स्वभावसे छू लेता। छूते ही हाय-हाय करके हाथों को फट-फटाने लगता। जिससे सब हँसते। इससे वह आगे के लिये सचेत हो जाता। ऐसी भयङ्कर बूटी का भी पहाड़ी बड़ी हिकमत से साग बनाकर खा जाते हैं। मनुष्य तेरी बुद्धि की बलिहारी है।

शीतकालीन भ्यूण्डार से आगे का रास्ता तो खांडे की धार ही है। यात्री पग-पग पर थकता है। हरे-भरे भ्यूण्डार के खेत दिखाई पड़ते हैं, फिर भ्यूण्डार आ जाता है। लोकपाल का असली मन्दिर यहीं है। लोकपाल देवता की पूजा यहीं पर होती है। बस्ती से बाहर जंगल में एक छोटा मंदिर है। यहाँ के पुजारी क्षत्रिय भण्डारी होते हैं। पुजारी बड़ी पवित्रता से शुद्ध वस्त्र पहिन कर किसी को न छूकर पूजा करता है। पूजा रोज नहीं होती, कभी-कभी होती है। असली पुजारी तो पांडुकेश्वर या बद्रीनाथ में रहता है। जब कोई विशिष्ट यात्री आता है तब उसके साथ पुजारी भी आता है। हमारे साथ बद्रीनाथ से ही पुजारी आया था। भ्यूण्डार से आगे फिर घना जंगल है। चढ़ाई तो वहाँ पग-

पग पर है। जंगल में भालुओं का बहुत भय है। यहाँ जामुन के पेड़ बहुत हैं। भालू उन्हीं को खाने आते हैं और भी बहुत-से फल हैं। यहाँ जामुन के पेड़ तथा फल हमारे यहाँ की जामुनों से भिन्न हैं। भादों की जैसी जंगली जामुन होती है वैसे ही जामुन थीं। ये क्वार कार्तिक में पकती हैं।

पांडुकेश्वर से सुबह ही चलकर हम लोग यहाँ तीसरे पहर के लगभग पहुँचे। हमने सोचा यहाँ रहकर क्या करना है तीन मील और ऊपर घांघरिया में ही चलकर रहेंगे। इसलिये अत्यन्त थके रहने पर भी हम पैरों के विरुद्ध सत्याग्रह करके चल पड़े। मन को समझा दिया अभी ७-८ मील ही तो आये हैं किन्तु ये ७-८ मील २५-३० मील से भी कठिन हैं। 'लोकपाल भगवान् की जय' बोलकर हम चल पड़े, ऊपर चढ़ते-चढ़ते एक बड़ा मैदान आया। डिप्टी साहब तो उसे देखकर मारे प्रेम के दौड़ने लगे। उस हरे-भरे पुष्पों से भरे मैदान की छटा निराली है। नाना भाँति के फूल खिले हैं। ये फूल इस घोर जंगल में किसे प्रसन्न करने को खिले हैं ? किसने इन्हें लगाया ? क्यों ये हँस रहे हैं ? इनसे किनका मन प्रफुल्लित होता है ? ये सब बातें बुद्धि से परे की हैं। मैदान से आगे मोटे-मोटे बड़े लम्बे-लम्बे देवदारु के वृक्षों का वन है। इस शीत में, ऐसे हिम प्रदेश में इतने बड़े-बड़े पेड़ कैसे रह जाते हैं, यह प्राकृतिक खेल है। आगे चलने पर धर्मशाला मिली। इसी स्थान का नाम घांघरिया है रात्रि भर हम लोग यहीं रहे। ठंड के कारण क्या-क्या बीती, वह कहने की बात नहीं, अनुभवगम्य है।

घांघरिया पेड़ों से घिरा स्थान है। दो धर्मशालायें भी हैं, जिनमें आवश्यकता से अधिक साल है। बाहर खूब मैदान है। पहाड़ की दीवाल खड़ी है। बिलकुल सीधा पहाड़ आकाश से बातें कर रहा है। सामने के मैदान में तरह-तरह के फूल खिल

रहे हैं। जामुन के पेड़ों की भरमार है। छोटी-छोटी जामुन पकीं हुई थीं जो खाने में अजीव ही मालूम पड़ती थीं।

प्रातःकाल उठते ही हम लोग शौचादि से निवृत्त होकर लोक पाल के लिये चल पड़े। हमारे साथ आये हुए लोकपाल के पुजारी ने कल से कुछ नहीं खाया था। जब तक वह देवता के समीप न पहुँचे कुछ नहीं खा सकता। आज उसका वेष विचित्र था। एक लम्बा अँगरखा पहिने, सिर पर साफा बाँधे, हाथ में घन्टीदार धूपदानी लिये वह लोकपाल की ओर दौड़ा जा रहा था। सचमुच दौड़ रहा था। कहते हैं उस समय उसे लोकपाल देवता का आवेश आ जाता है। धूपदानी में से धूप का धुआँ निकल रहा था। चारों ओर बँधी हुई घन्टियाँ बज रही थीं। उस पर तो देवता का आवेश था, हम पर प्रारब्ध का आवेश था, इसलिये वह तो थोड़ी देर में सीधे पहाड़ पर चढ़ते-चढ़ते बहुत दूर निकल गया और हम अपने भोगों को भोगते हाँपते फिस-लते ऊपर चढ़ने लगे।

मैंने बद्रीनाथ से कैलाश मानसरोवर और सतूपथ की बहुत कठिन और विकट समझी जाने वाली यात्रायें की हैं। गंगोत्री से गोमुख भी गया हूँ। जो बहुत ही संकीर्ण दुर्गम और आपत्तिपूर्ण रास्ता माना जाता है, किन्तु कहीं भी इतनी भयङ्कर सीधी और उत्साह को भङ्ग करने वाली चढ़ाई नहीं देखी। बिलकुल सीधे पहाड़ पर जल की धारा के सहारे-सहारे चढ़ना पड़ता है, कोई बना हुआ रास्ता नहीं है, फिसला सो फिसला, घास को पकड़ कर लाठी का सहारा लेकर तब ऊपर चढ़ना पड़ता है। वहाँ से बताते तो तीन मील हैं किन्तु वे ३ मील ३० मील से भी बढ़कर दुखदाई हैं। डिप्टी साहब पग-पग पर पेड़े उड़ाते जाते थे, मुझे भी मेवा मिलती जाती थी, विदेशी यात्री ऐसे पर्वत पर चढ़ते समय साथ में गरम चाय, सुरा और शर्करावटी (चाकलेट) लेकर

चलते हैं। ठहर-ठहरकर खाते पीते जाने से शरीर में नई स्फूर्ति गर्मी और शक्ति का संचार होता रहता है। तरह-तरह के फूलों से वह पहाड़ लदा हुआ था। पुराण का यह वचन "वनानि कुसुमामोदरम्यणि परिततोपितः। दिनानि यत्र गच्छन्ति चणप्रायाणि देहिनाम् ॥" बिलकुल सत्य प्रतीत होता था। रास्ते में सबसे सुखकर तो लाल फल थे जो हमें बीच-बीच में पहाड़ी तोड़-तोड़कर देते थे। वैसे सुन्दर फल हमने कभी नहीं खाये। छोटे-छोटे जिन्हें अँग्रेजी में 'स्ट्राबेरी' कहते हैं, उनकी ही जाति के उनसे थोड़े बड़े और उनसे बहुत मीठे फल थे। वे हमारी यात्रा में शक्तिदाता थे।

दो ढाई घन्टे चलने के पश्चात् पहाड़ पर कमलों का वन दिखाई दिया। वहाँ चारों ओर स्थल-कमलों की भरमार थी। उनकी तीक्ष्ण नशीली गन्ध आ रही थी। ये कमल बहुत ऊँचे पहाड़ों की चोटी पर ही होते हैं। श्री बद्रीनाथ से २-३ मील ऊपर भी एक पहाड़ की चोटी पर ये कमल खिलते हैं। श्रावण से कार्तिक तक बहुत फूल आते हैं। इनकी कई जातियाँ हैं, सूर्यकमल फैड़कमल आदि-आदि। ये हरे नीले सभी रंग के होते हैं। इनकी पंखुड़ियाँ अत्यन्त ही कोमल और पत्तो-सी प्रतीत होती हैं। देखने में बड़ा सुन्दर, सुहावना, सुकोमल और सुखद होता है। गन्ध इसकी तीक्ष्ण और मादक होती है। पर्वतों पर पहाड़ी लोग बड़े साहस से तोड़कर टोकरी की टोकरी ले जाते हैं और देवताओं पर चढ़ाते हैं। कमल वन को पार करके हम लोग हिमकुण्ड, दण्डपुष्करिणी या हेमकुण्ड पहुँच गये। उस अनुपम सरोवर के दर्शन मात्र से ही समस्त थकान, चिन्ता, दुःख और निर्बलता भाग गये। चित्त प्रफुल्लित हो गया। मन मयूर-नृत्य करने लगा, आँखें सन्तुष्ट हुई और शरीर पुलकित तथा रोमांचित हो गया। विधाता की कैसी कमनीय कारीगरी है। "धनि धनि है

तेरी कारीगरी करतार" यह कैसा सुन्दर, सुखद सलिलपूर्ण स्वच्छ सरोवर है। सब हर्ष से उछलने लगे। मार ली बाजी। अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच गये।

× × × ×

लोकपाल के सरोवर में से एक श्रोत निकलता है, वही आगे चलकर लक्ष्मण गंगा बनती है। यहाँ लोकपाल (लक्ष्मण जी) का तथा देवी जी का एक छोटा-सा मन्दिर है। एक धर्मशाला है, सिक्खों ने अभी हाल में एक गुरुद्वारा भी बनवाया है। यह स्थान अत्यन्त शीतल है। चारों ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं। इतने ऊँचे चढ़ने पर भी ऊँचे पहाड़ों का अन्त नहीं। श्री बद्रीनाथ के पर्वत, कागभुशुण्ड की चोटी, यहाँ से सब दिखाई देते हैं। यहाँ खड़े होकर जब मनुष्य चारों ओर बर्फ से ढके हुए पहाड़ ही पहाड़ देखता है तो उसकी दृष्टि चकाचौंध हो जाती है। सरोवर लगभग आधा मील लम्बा चौड़ा होगा। इसका जल इतना स्वच्छ और सुन्दर है कि हमने इतनी स्वच्छता किसी भी सरोवर में नहीं देखी। हमने बहुत आदमियों से सुना। वहाँ के लोगों से सुना कि जो कोई इस तालाब में पत्ता फल नारियल कुछ भी डाल देता है उसे पक्षी आकर अपनी चोंच से उठाकर बाहर फेंक देते हैं। हमने अपनी आँखों से तो पक्षियों को ऐसा करते देखा नहीं। हमने बहुत से फूल चढ़ाये वे बहते रहे, किन्तु यहाँ पत्ता या तृण एक भी जल में नहीं देखा। इस इतने दुर्गम स्थान में ऐसा सुन्दर सरोवर क्यों बनाया। इसके लिये नारद पुराण, पद्म पुराण और वाराह पुराण में एक-सी ही कथा है।

× × × ×

जब भगवान् ने वहाँ लोकपालों को स्थापित किया तब उनके लिये पीने को पानी भी तो चाहिये। इसलिये भगवान् ने शैल दण्ड के प्रहार से एक दंड पुष्करिणी का निर्माण किया, जहाँ पर

स्नान करने से सब तीर्थों में स्नान करने का फल होता है।※ यहाँ मध्याह्न में भी स्नान का माहात्म्य है। केवल प्रातःकाल होता तो जाड़े में ठिठुरकर ही मर जाते। स्कन्द पुराण में कहा है कि तीर्थों में सर्व श्रेष्ठ दण्डपुष्करिणी (लोकपाल) है, देवताओं में सर्व-श्रेष्ठ विष्णु हैं और क्षेत्रों में सर्वश्रेष्ठ बदरी क्षेत्र है। महादेवजी ने एक बात स्कन्द जी के कान में धीरे से कह दी है—

बदरीतीर्थमध्ये तु गुप्तमेतत् सुरोत्तमैः।
न वाच्यं यत्र कुत्रापि तव प्रीत्या मयोदितम्॥

देखना षड़ानन, सावधान ! बदरी क्षेत्र के अन्तर्गत यह (लोकपाल) तीर्थ देवताओं से भी परम गुप्त है। यों ही यत्र तत्र सर्वत्र इस तीर्थ को प्रकट मत कर देना।"

तब आपने मुझसे क्यों कहा।

अरे, मैंने तुम्हारी प्रीतिवश तुमसे कह दिया है। अब अपने सगे योग्य पुत्र से क्या छिपाना।

इस तरह यह परम पावन तीर्थ है। सब कोई इस तीर्थ में

※ दंडेनाहत्य हरिणा यतस्तीर्थं विनिर्मितम्।
दंडपुष्करिणीत्येतत् ततो लोकपसौख्यदम्॥
(नारद पुराण)

लोकपालमिति ख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परे मम्।
तत्र ते लोकपालास्तु मया संस्थापितः पुरा।
तत्र पर्वतमध्ये तु स्थलकुण्डे वृहन्मम्॥
भित्वा पर्वतमुद्गीर्णं यत्र सोमसमुद्भवः।
(वाराह पुराण)

सर्वं तीर्थावगाहेन यत्फलं परिकीर्तितम्।
तत्फलं तत्क्षणादेव दंडपुष्करिणीक्षणात्॥
(स्कन्द पुराण)

जा नहीं सकते। इसका माहात्म्य, इसका सौन्दर्य अवर्णनीय और अपूर्व है।

येषां वै भगवति चेत् समग्रकम्।
स्वाध्यायाभ्यसनविधिक्रमेण जातम्॥
पश्यन्ति त्रिभुवनदुर्लभम् सुतीर्थम्।
दण्डोदं न भवति चान्यथा सुदृष्टम्॥
(स्क० पु० व० ८ अ० २८ श्लोक)

जिन लोगों के स्वाध्याय, अभ्यास आदि समस्त कर्म विष्णु प्रीत्यर्थ किये होते हैं वे लोग ही उस त्रिभुवन दुर्लभ, परम पवित्र दंड-पुष्करिणी तीर्थ में जाकर दर्शन स्नान कर सकते हैं, अन्यथा इस क्षेत्र के दर्शन होने बहुत ही दुर्लभ हैं।

प्रत्यावर्तन और उपसंहार

जिस दिन हम लोकपाल पहुँचे थे, उस दिन आकाशमण्डल एकदम साफ़ था। ऊँचे पहाड़ पर जब आकाश मेघरहित हो तो सूर्य समीप होने के कारण धूप बड़ी तीक्ष्ण लगती है। लोक पाल में ऐसा दिन कभी-कभी ही होता है। नहीं तो वहाँ सदा बादल छाये रहते हैं। गुलाबी धूप उस शीतल स्थान में बड़ी ही सुखद प्रतीत होती थी। हम इतने ऊँचे चढ़कर आये थे अत्यन्त परिश्रम होने से पसीना भी आ गया था, कुछ गर्मी भी प्रतीत होने लगी। इसलिये स्नान करने में कष्ट नहीं प्रतीत हुआ पुष्करिणी में स्नान करने में बड़ा आनन्द आया। खूब गोते लगाये। लोकपाल जी की पूजा हुई। हलवे का प्रसाद बना। दूध भी गरम किया। पूजा, पाठ, प्रसाद से निवृत्त होकर अब लौटने की तैयारियाँ हुईं।

पहिले हमारा विचार यहीं सप्ताह करने का था, किन्तु भ्यूण्डार वाले लोगों का बड़ा आग्रह हुआ कि 'लोकपाल का मन्दिर तो यही है। सर्दी में यहीं पूजा होती है। हमने आज तक

न कहीं भागवत सप्ताह सुना न देखा। हम सब बालक वृद्ध स्त्री पुरुष जीवन में सप्ताह सुन लेंगे। वैसे हमारे भाग्य कहाँ? डिप्टी साहब की भी यही सम्मति हुई। ऊपर ७ दिन इतने आदमियों को लेकर सप्ताह करने में बड़ी असुविधायें भी थीं। सर्दी, ठन्ड जाड़ा, स्थान का अभाव ये सब तो थे ही। सब चीजें नीचे से ही ले जानी पड़ी थीं। भोजन का सामान, दूध, साग भाजी जो भी हो सब नीचे से जाता। फिर वहाँ शौच के लिये बड़ा कष्ट है। लोकपाल पर्वत पर चर्म के जूते पहिनकर चढ़ने का नियम नहीं। पुष्करिणी के आस-पास बहुत दूर तक कोई शौच नहीं जा सकता। परिधि के बाहिर गढ़ा खोदकर जाना चाहिये और रोज वहीं पर निवृत्त होना चाहिये। इन सब असुविधाओं के कारण हमने भ्यूँडार में ही सप्ताह करने का निश्चय किया। अपने-अपने दण्ड कमण्डलु उठाकर सब चल पड़े। उतरने में उतना कष्ट तो नहीं था, किन्तु पग-पग पर फिसलने का डर बना ही रहता था। हम पन्द्रह-बीस आदमियों में से ऐसा कोई एक ही होगा। जिसे उतरते समय दो-चार पटकें न लगी हों। जैसे तैसे राम-राम करते 'लोकपाल की जय' बोल के हम लोग उतर आए। धीरे चला नहीं जाता था। ऐसा लगता था मानों लोकपाल जी हमें जबरदस्ती नीचे को ढकेल रहे हैं।

घाँघरियाँ से अपना सब समान उठवाया और रात्रि में भ्यूँडार आ गये। दूसरे दिन लोकपालजी के मंदिर की सफाई कराई। पर्णकुटियां बनवाईं, तम्बू लगाये, चौका चूल्हा बना और सप्ताह यज्ञ का आरम्भ हुआ। इस विषय को मैं विस्तृत बनाना नहीं चाहता, अतः वहाँ के लोगों के भोलेपन की बातें, बाल बच्चों से लेकर बड़े बूढ़ों तक के उत्साह और श्रद्धा की कहानियाँ सप्ताह के समारोह की चर्चा सब छोड़े ही देता हूँ।

लोग रोज तरह-तरह के पहाड़ी फल जंगलों में से तोड़कर

खाते थे। बहुत दिनों से मैं इस बात की खोज में था कि प्राचीन काल में ऋषि महर्षि जंगल के कन्द मूल फलों पर कैसे रहते होंगे, वे जंगल कहाँ हैं जिनमें लाखों मुनियों को भरपेट जंगली फल मिल जाते होंगे। हिमालय के कोने-कोने में घूमा, विन्ध्य पर्वत पर गया, नर्मदा तट पर देखा, मुझे कहीं ऐसे जंगल नहीं मिले जहाँ बारहों महीने भरपेट जङ्गली फल मिल सकें और जहाँ रहकर रुपये मँगाने और गृहस्थियों के द्वार पर भीख माँगने का झंझट ही न रहे, किन्तु मुझे कहीं भी ऐसा वन जंगल पर्वत नहीं मिला। कहीं-कहीं बेल, जंगली मोन (जमीकन्द की तरह एक कन्द आलू के समान) और दूसरे कन्द मिले सही, किन्तु उनसे बारहों महीने निर्वाह नहीं हो सकता। चित्रकूट के जंगलों की ओर खाने योग्य एक कन्द कहीं-कहीं मिलता तो है, किन्तु वह बहुत नहीं। दिन भर खोजते रहो तो कहीं जाकर पेट भरने योग्य संग्रह हो सके। सो भी बारह महीने नहीं मिलता। इसलिये मैं तो अपने अनुभव से इस वृत्ति को इस युग में कठिन ही नहीं असम्भव समझ बैठा हूँ। यहाँ लोकपाल में मैंने बहुत से जंगली फल देखे। यहाँ बारहों महीने तो नहीं, किन्तु कुछ दिन श्रावण से कार्तिक तक, कोई परिश्रमी उद्योगी निस्पृही तथा जिह्वा स्वाद का अलौलुप हो तो वह जंगली फलों से पेट भरकर रह सकता है। किन्तु बिल्कुल फलों पर कठिन है। इधर यही एक गाँव है पूरे पहाड़ में। यहाँ के लोग इन दिनों फलों को खूब खाते हैं और उनसे कुछ आधार भी होता है। यहाँ के लोग हमारे लिये जो फल तोड़कर लाते थे और जो फल इधर मिलते हैं उनमें से कुछ के नाम हम पाठकों के विनोदार्थ नीचे देते हैं।

१—अखरोहु। इधर अखरोटों के बहुत पेड़ हैं। ये कागजी अखरोट नहीं, काठा हैं। तोड़ने पर कठिनता से मिंगी निकलती है। जंगल में बहुत पड़े रहते हैं। लड़के बीन ले जाते हैं।

२—कबासी या पहाड़ी बादाम यहाँ बहुत होती है। बादाम की तरह फल के भीतर से गुठली निकलती है। उसे फोड़ कर बादाम की मिंगी की तरह खाते हैं। बादाम से छोटा और चिपटा होता है। स्वाद बादाम की तरह ही होता है। जोशी मठ में बिकता है और बद्रीनाथ के प्रसाद में लोग इसे मेवा के स्थान में चढ़ाते हैं। भ्यूँडार के लड़के सुबह ही कन्धों में टोकरियाँ बाँधकर जाते हैं और जंगलों में से टोकरी भर-भर कर कबासी लाते हैं। शहद के साथ कबासी खाने से स्वर्ग एक हाथ ही ऊपर रह जाता है। इधर शहद बहुत ही स्वच्छ, शुद्ध और स्वादिष्ट होता है। इधर की गौएँ यहाँ की जड़ी बूटी खाने से दूध तो थोड़ा ही देती हैं किन्तु उस दूध में बड़ा गुण होता है। सुनते हैं यहाँ का घी तो इतना पौष्टिक होता है कि उसे खाने से हलका-सा नशा होता है। यहाँ का घी और शहद प्रसिद्ध है, किन्तु प्रयत्न करने पर भी सेर दो सेर नहीं मिलता। सब लोग अपने घर में शहद की मक्खियाँ पालते हैं। जंगली भौरों का शहद भी बहुत निकलता है। एक-एक छत्ते में दो-दो कनस्टर शहद निकलता है, किन्तु वह खाने के काम विशेष नहीं आता। उसे तम्बाकू में डालकर पीते हैं। हाँ, तो कबासी यहीं की प्रसिद्ध मेवा है।

३—एक छोटा-सा लाल फल होता है जंगली बेर के बराबर यह बहुत ही कोमल होता है। भीतर इसके लस होता है जो बड़ा पौष्टिक होता है। इसमें काले बीज निकलते हैं। इसके पत्तों की भुटिया लोग चाय बनाकर बेचते हैं। यह एक तरह की चाय का ही फल है। खाने में थोड़ी छींक आती है।

४—गिसाईं भी एक लाल फल है। काली मिर्च से थोड़ा बड़ा होता है। ऊपर सफेद-सफेद छींटे होते हैं। लाल फल पर छोटे-छोटे सफेद छींटे बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं। खाने में खट्टा मीठा

और स्वादिष्ट होता है। पाचक और दस्तावर होता है। हम इसे बड़े चाव से खाते थे।

५—भुँइला। देहरादून में जब पहिले ही पहिले मैंने "स्ट्राबरी" खाई तो मुझे बताया गया यह विलायती फल है। विलायत में यह बड़ा प्रसिद्ध और सम्मानित फल समझा जाता है। किसी को प्रीतिभोज देना हो तो इसकी बरफ बनाकर खिलाते हैं। विलायत से ही इसको पौध यहाँ आई है। यह फल बहुत तेज मिलता है दो या तीन रु० सेर। जब मैं अलमोड़े के रास्ते से बद्रीनाथ गया तो मैंने जंगल के जंगल स्ट्राबरी के देखे। तब मुझे पता चला कि विदेशियों ने किस तरह हमारे देश के फल फूलों को पाल पोस सुन्दर और सुहावना ही नहीं बना लिया, किन्तु उसका नाम बदल कर उन्हें अपने देश का ही प्रसिद्ध कर दिया। यहीं लोकपाल से सैकड़ों तरह के फूल और फल विलायत गये हैं। हममें जीवन नहीं, उत्साह नहीं, साहस नहीं। शासन अपने हाथ में न होने से खोज के साधन नहीं। उन्नति के उपकरण नहीं हम निर्जीव हो गये हैं। अपने स्वाभिमान को भूल गये हैं। स्ट्राबरी सभी शीत स्थानों में पैदा होती है। विदेशियों ने इसे पाल पोस कर उन्नत बना लिया है। हमारे यहाँ अभी जंगली ही बनी है। अब हम इस फल को विदेशी कहते हैं। नाम भी भूल गये हैं। पहाड़ी भाषा में इसे भुँइला कहते हैं। विदेशों में भुँइला थोड़ा पाल पोस कर बड़ी बना ली गई है। चीज वही है जैसे जंगली बेल और कागजी बेल। जङ्गली आम और देशी आम अलमोड़े से आगे पिंडारी के रास्ते में यह बहुत होती है और वहाँ सड़क के आस-पास बहुत खड़ी है। गरुड़ से नन्दप्रयाग जाने वाली सड़क में मीलों तक इसका जंगल खड़ा है। हमने खूब तोड़-तोड़कर फल खाये। भुँइला, लोकपाल में कम होता है, किन्तु इसी तरह का और इससे भी स्वादिष्ट एक फल होता है जिसे

खाते-खाते हम लोकपाल के सरोवर तक पहुँच सके थे। इसका नाम है ह्याँसुली।

६—ह्याँसुली बिलकुल 'भुँइला' की तरह होता है। किन्तु स्वाद में भुँइला (स्ट्राबरी) से कई गुणा बढ़कर है। ऐसा मीठा और हृद्य स्वाद है कि चित्त प्रसन्न हो जाता है। लिखते-लिखते मेरे मुँह में उसकी स्मृति से पानी भर आया है। खाने के बाद थोड़ा हीक आती है, बहुत हलकी जो बुरी नहीं लगती।

७—गलौ। बड़ा सुन्दर छोटे सेब के आकार का फल होता है। हमारे सामने कच्चे लाये गये इसलिये स्वाद का अनुभव नहीं हुआ, किन्तु कुछ कसैला होता होगा। यही इधर सबसे बड़ा फल है। सामान्यतया देशी छोटे अमरूद के बराबर होता है।

८—अगाली। यह नीम के फल की बराबर लाल रंग का फल होता है खाने में मीठा है किन्तु बहुत स्वादिष्ट नहीं।

९—दरबाई। यह भी छोटा उतना ही बड़ा लाल फल है, किन्तु इसका स्वाद खटमिठा है।

१०—निलुग्वा। यह एक नीले रङ्ग का बड़ा ही दर्शनीय सुन्दर फल है बरफीले स्थान पर ही होता है दूर से फूल-सा मालूम पड़ता है। बड़ा मुलायम होता है, बिलकुल रुई की तरह। जङ्गली बेर से कुछ बड़ा होता है। सतुपथ जाते समय हमने खाया था। इसमें थोड़ी हीक आती है। पहाड़ी लड़के इसे बड़े चाव से खाते हैं हैं।

११—घैंनू। यह काला पीलू की तरह फल होता है। खाने में कड़ुआ और बहुत अच्छा नहीं होता। किन्तु पहाड़ी लड़के तो इसे खाते ही हैं।

१२—मोई। यह एक स्वादिष्ट फल है। छील कर खाते हैं। स्वाद बिलकुल चीकू की तरह होता है जो बम्बई में मिलता है। मालूम होता है चीकू इसी का परिवर्धित रूप है। आकार प्रकार

स्वाद सब चीकू-सा है, किन्तु उससे छोटा होता है जो जङ्गली होने से स्वाभाविक ही है।

१३—जामुन। हमारे यहाँ जैसी भादों की भदैयाँ जामुन होती है उसी तरह की जामुन है। किन्तु इसके पेड़ के पत्ते और फल का आकार हमारे यहाँ के जामुन के पेड़ पत्ते से भिन्न है। स्वाद में भी विभिन्नता है। जङ्गली रीछ इसे बहुत खाते हैं।

इतने फलों की हमें जानकारी है। ये सभी जङ्गल में पैदा होते हैं। यहाँ कोई न बेचने वाला न खरीदने वाला। जो वहाँ तक पहुँच जाय वह खाय।

साहब का घर दूर है जितनी लम्बी खजूर।
चढ़े तो चाखे प्रेम फल, गिरे तो चकना चूर॥

फूल तो यहाँ सैकड़ों तरह के हैं। उनके नाम न हम जानते हैं न हमें प्रयोजन है। अपने तो फलाहारी हैं।

सप्ताह समाप्त करके हम उसी रास्ते से लौटकर रात्रि में भ्यूँडिहार से चलकर जोशी मठ में आ गये, जो लगभग १२-१३ मील होगा।

वक्तव्यं किमिह बहु प्रभूतपुण्याः।
पश्यन्ति प्रथितमिदं सुरैकगुह्यम्॥
नान्येषां कथमपि चेतसि प्रसङ्गाद्।
देवैः स्यादनुदिनचिन्तिता गुहैतत्॥

(स्कन्द पुराण)

हे कार्तिकेय! बहुत बक-बक करने से लाभ ही क्या? सार यही है कि देवताओं से गुप्त इस तीर्थ को बहुत पुण्यवान पुरुष ही देख सकते हैं। दूसरे पुरुष देवताओं के भी अचिन्त्य इस तीर्थ को कभी भी नहीं देख सकते। समझे मेरे लाल!

—:—

१८—श्रीबदरीनाथ के आस पास के तीर्थ और आधीनस्थ मन्दिर

विरञ्चिशङ्करादिभिस्तपस्तसमृद्धिपूर्वकम् ।
निरातवर्जनष्टयेविशिष्टये च शर्मणाम् ।
समर्थितो वभूव यः स धर्ममूर्तिमन्दिरे ।
वदर्यधीश्वरः प्रभुः करोतु मङ्गलं सदा ॥

श्री वदरीनाथ जी के अधीन आस-पास के लगभग ३० मठ मदिर हैं, जिन्हें वदरीनाथ मन्दिर से बँधी हुई वार्षिक सहायता मिलती है। ये सब प्राचीन तीर्थ हैं। इनका संक्षेप में परिचय यहाँ कराया जाता है।

पंचवदरी

जैसे पञ्चकेदार और पञ्चप्रयाग प्रसिद्ध हैं, उसी तरह पञ्च-वदरी भी प्रसिद्ध हैं। जैसे (१) विशाल वदरी (वदरीनाथ पुरीमें) (२) योगध्यान वदरी (पांडुकेश्वर में), (३) भविष्य वदरी (सुभाँई में), (४) वृद्ध वदरी (आणीमठ में) और (५) ध्यान वदरी (उर्गम में)। पुराणों में तो हमें पंचवदरियों का कहीं उल्लेख मिला नहीं, किन्तु इनकी प्रसिद्धि बहुत है। इस विषय में लोगों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कोई कहते हैं कि वदरीनाथ वैसे तो पुराण प्रसिद्ध हैं, किन्तु इनके स्थान वदलते गये। ज्यों-ज्यों हिन्दू राजा पहाड़ों में वढ़ते गये हैं वदरीनाथ के स्थान को भी ऊपर उठाते गये हैं। पिछले बदरीनाथों के मन्दिर उनके चिह्न हैं। कोई कहते हैं पञ्चकेदारों की देखा-देखी पञ्चवदरियों की कल्पना हुई है। कोई कहते हैं कि बदरीनाथ तो सदा से ही जहाँ हैं, वहीं थे, भिन्न-भिन्न गढ़ों के मण्डलीक राजा तथा नरेशों ने

अपने यहाँ बदरीनाथजी के मन्दिर बनाये थे, वे ही अब भिन्न-भिन्न नामों से प्रसिद्ध हैं। यह अन्तिम मत ही हमें ठीक मालूम पड़ता है, क्योंकि इन पाँचों बदरियों के अतिरिक्त भी बहुत से बद्रीनाथ के मन्दिर हैं। कर्ण प्रयाग से रानीखेत जाते समय 'आदिबदरी' का मन्दिर पड़ता है, बड़ी सुन्दर विशाल मूर्ति है। टिहरी में भी बदरीनाथ जी का मन्दिर है। हृषीकेश में भी एक आदिबदरी हैं। नैमिषारण्य और वृन्दावन में भी आदिबदरी हैं। ये पाँच मन्दिर बदरीनाथ जी के अधीन होने से पञ्चबदरी कहलाये। इन मन्दिरों में विशेष आमदनी नहीं। श्री बदरीनाथ जी कमाते हैं, ये सब मौज उड़ाते हैं। घर में एक कमाने वाला होता है, सब खाते हैं, सब उसे अपना ही समझते हैं। इसी तरह केदारनाथ में भी है। केदारनाथ की आमदनी से ही शेष चारों केदारों का काम चलता है। इसीलिये पहाड़ियों में एक कहावत है। "केदार न कमायो मद्यं न समायो" अर्थात् केदारनाथ जी कमाते हैं मद महेश जी उसे उड़ा जाते हैं। अब संक्षेप में उनका परिचय सुनिये।

(१) विशाल बदरी—बदरीपुरी में विशाल नगरी में जो बदरी नाथ है।

(२) योगध्यान बदरी—पांडुकेश्वर में ध्यान बदरी या पांडुकेश्वर, भगवान् की बड़ी ही मनोहर मूर्ति है। यह मन्दिर बहुत प्राचीन है। सरकार के पुरातत्व विभाग ने इसे अपनी देख-रेख में ले लिया है। यह श्री बदरीनाथ जी के अधीन है। पहिले बदरीनाथ के पुजारी ६ महीने यहीं रहते थे। अब भी ६ महीने भगवान् की उत्सव मूर्ति (उद्धव जी) की पूजा यहीं होती है। एक दक्षिणात्य पुजारी रहते हैं, जिनको पूजा आदि के लिये सब सामान बदरीनाथ मन्दिर से मिलता है। यह बदरीनाथ जी के

रास्ते में ११ मील इधर ही है। रात्रि में यात्री यहाँ निवास करते हैं। उन्हें ध्यान बदरी के दर्शन अवश्य करने चाहिये।

(३) भविष्य बदरी—जोशीमठ से एक सड़क नीति घाटी को जाती है। नीति घाटी से कैलाश का रास्ता है। कैलाश यात्री प्रायः इसी रास्ते से जाते हैं। ४० मील तक अँग्रेजी राज्य है। नीति घाटी के बाद तिब्बत की सीमा आ जाती है। यह सड़क भी इसी यात्रा लाइन में सम्मिलित है और इसकी मरम्मत भी प्रान्तीय सरकार के विभाग के अधीन है। इसी सड़क पर ६ मील चलकर 'तपोवन' नामक बड़ा रमणीक स्थान है। यहाँ भी गरम जल का तप्तकुण्ड है। इस कुण्ड का जल अधिक गरम नहीं है। हमें यह स्थान बहुत पसन्द आया। यहाँ की प्राकृतिक छटा बड़ी सुन्दर है। तपोवन से लगभग ३ मील ऊपर एक विष्णु मन्दिर है। यही भविष्यबदरी कहलाते हैं। विष्णु-प्रयाग से आगे पांडुकेश्वर से इधर ही एक स्थान है जहाँ नर-नारायण दोनों पर्वत बिलकुल पास-पास आ गये हैं। बीच में केवल अलकनन्दा जी की धारा है। कहते हैं घोर कलियुग आने पर ये पहाड़ आपस में मिल जायेंगे तब बदरीनाथ जी की यात्रा अगम्य हो जाएगी। उस समय भगवान् की पूजा बदरीनाथ में होगी। जोशी मठ में जो नरसिंह भगवान् की मूर्ति है उसका एक हाथ बहुत ही पतला है। कहते हैं कि जिस दिन यह हाथ भगवान् के शरीर से पृथक् हो जायगा उसी दिन से बदरीनाथ में कोई न जा सकेगा। सनत्कुमार संहिता में भी इसका उल्लेख है।

यावद्विष्णोः कला तिष्ठेत् ज्योतिः संज्ञे निजालये।
गम्यं स्याद् बदरीक्षेत्रमगम्यं च ततः परम्॥

मैंने यह स्वयं तो देखा नहीं। बतलाते हैं उस मन्दिर के समीप ही मैदान में वृक्ष के नीचे एक शिला है। ध्यानपूर्वक देखने से उसमें भगवान् की आकृति-सी दिखाई देती है। अभी तक

आधा ही भाग दीखता है। भविष्य में इसमें भगवान् की पूरी आकृति बन जायगी और तभी से भगवान् की यात्रा यहाँ होने लगेगी। नवीन विचार के लोगों का कहना है कि बदरीनाथ में जो यह तप्त कुण्ड का गरम पानी निकलता है, मन्दिर के नीचे से ही निकलता है। यह एक प्रकार का ज्वालामुखी पहाड़ है। एक दिन फूट निकलेगा तो सब पुरी को भस्म कर देगा। तबके लिये यह भविष्यबदरी की कल्पना अभी से कर रखी है। कुछ भी हो बदरी और भविष्य बदरी में यात्रियों को तो कुछ अन्तर नहीं। भविष्य बदरी की चढ़ाई भी उतनी ही कठिन है। ८-९ मील रास्ता कम जरूर हो जायगा।

भविष्यबदरी के समीप एक लातादेवी का मन्दिर भी है। इस देवी के अब भी बड़े-बड़े चमत्कार सुनाई देते हैं। यहाँ एक आकाश से गिरी खड्ग बताई जाती है। २४ वर्ष में यहाँ एक बड़ा भारी मेला लगता है। उसमें बहुत बलिदान होते हैं। जिस पत्थर की शिला पर बलिदान होते हैं वहाँ एक ओखली की तरह छोटा-सा कुण्ड है। कहते हैं वह बरसात में पानी से तो भर जाता है, किन्तु कितने भी बलिदान क्यों न हों रक्त से नहीं भरता। ऐसी और भी कई बातें प्रसिद्ध हैं।

(४) वृद्ध बदरी—यह मन्दिर रास्ते से मील डेढ़-मील नीचे हटकर है इसीलिए बहुत कम यात्री जाते हैं। हैलंगचट्टी से १॥ मील जोशी मठ की ओर चलने पर खणोटीचट्टी से मील भर नीचे अणीमठ नाम का एक स्थान है। यहाँ वृद्ध बदरी का मन्दिर है इसके समीप लक्ष्मीनारायणजी की बहुत प्राचीन बड़ी सुन्दर दर्शनीय मूर्ति है।

(५) ध्यान बदरी—हैलङ्गचट्टी से सड़क छोड़कर बाईं ओर अलकनन्दा को पुल से पार करके एक रास्ता जाता है। ६ मील उतरना पड़ता है और ६ मील सीधे चढ़ाई है। इस प्रकार १२

मील चलकर कल्पेश्वर शिवजी का मन्दिर आता है। यह भी पञ्चकेदारों में से एक है। यही ध्यान बदरी है। दोनों छोटे-छोटे मन्दिर हैं, एक धर्मशाला भी है। आजकल जिला बोर्ड की ओर से सड़क बनाने का भी उद्योग हो रहा है। दुर्वासा मुनि के शाप से जब देवताओं के राजा श्रीहीन हो गये, तब देवताओं ने यहाँ पर शिवजी और विष्णुजी की आराधना करके कल्पतरु की प्राप्ति की थी। इसीलिये इसका नाम कल्पेश्वर है। सुनते हैं स्थान बहुत ही सुन्दर और एकान्त शान्त है। पांडुकेश्वर में जिस दिन हम जाने वाले थे, उसी दिन वहाँ का पुल टूट गया। इसलिये हम वहाँ तक न जा सके।

जोशीमठ के नृसिंह भगवान्——जोशीमठ के नृसिंह भगवान् का मन्दिर सर्वश्रेष्ठ है। शालिग्राम शिला में बिना बनाई हुई बड़ी ही अद्भुत नृसिंह भगवान् की मूर्ति है। मन्दिर बहुत पुराना है। बिल्कुल जीर्ण-शीर्ण हो गया है। उसके जीर्णोद्धार की बड़ी आवश्यकता है। बरफ से बचाव के कारण ऐसे ढङ्ग से बनाया गया है कि भगवान् के श्रीविग्रह के ठीक-ठीक दर्शन नहीं हो सकते हैं। जब पुजारी पूजा के समय निर्वाण दर्शन कराते हैं तब भली-भाँति दर्शन होते हैं। हमने पुराने रावल के साथ मूर्ति के भली-भाँति दर्शन किये हैं। उन्होंने भी बहुत दिन तक इस मूर्ति की पूजा की है। उन्होंने अपने अनुभव भी बताये जो बड़े चमत्कार पूर्ण थे। नृसिंह भगवान् का एक हाथ बहुत ही पतला है, जो कि पूजा करते-करते सचमुच ही मूर्ति से अलग हो सकता है। कहते हैं तभी वर्तमान बदरी का रास्ता बन्द होकर भविष्य बदरी में भगवान् आ जायेंगे। मन्दिर के भीतर रावलों के रहने की जगह है। गद्दी और देवी जी की भीतर पूजा भी है।

वासुदेव भगवान्——नृसिंह मन्दिर के सामने ही वासुदेव

भगवान् का मन्दिर है। बड़ी ही भव्य और चित्ताकर्षक मूर्ति है। भारतीय कला की चरम सीमा प्रकट कर दी है। भगवान् के अंग प्रत्यङ्ग बड़े ही स्पष्ट और कलापूर्ण हैं। मनुष्य के आकार से कुछ छोटी श्याम मूर्ति है। इन सब का खर्च बद्रीनाथ मंदिर से ही चलता है। इनके आस-पास और भी मन्दिर हैं। अर्धनारी नटेश्वर भगवान् की भी बड़ी सुन्दर मूर्ति है। गणेशजी की ऐसी भावपूर्ण मूर्ति बहुत कम देखने में आती है। नव दुर्गाओं के भी मन्दिर हैं, जिन पर बहुत-सा घी लगाया जाता है। ये सब मंदिर बिना मरम्मत के जीर्ण-शीर्ण पड़े हैं। कमेटी को जल्दी से जल्दी इन मन्दिरों की मरम्मत करानी चाहिये।

इस प्रकार मुख्य-मुख्य तीर्थों का संक्षिप्त परिचय हमने करा दिया। आगे हम मन्दिर के आधीनस्थ अन्य मन्दिरों की सूची देते हैं जिससे पता चलेगा कि इतने मन्दिरों को वार्षिक सहायता मिलती है। ये जितने भी मन्दिर हमने देखे सब बिना मरम्मत शोचनीय दशा में पड़े हैं। गावों के लोगों में उत्साह नहीं। योग्य पुजारी नहीं। यथोचित आदमी नहीं। मन्दिर से जो सहायता मिलती है वह पर्याप्त नहीं। पहले जमाने में इससे एक-दो महीने काम चल जाता होगा। अब तो दो रुपये रोज में भोग का भी काम नहीं चलता। बद्रीनाथ प्रतिवर्ष सहस्रशः यात्री आते हैं। उनमें बड़े-बड़े धनी सेठ साहूकार और राजे महाराजे भी होते हैं। यदि सब मिलकर इन उत्तराखण्ड के प्राचीन मन्दिरों के जीर्णोद्धार की ओर ध्यान दें तो ये सब मन्दिर फिर सुन्दर और सुव्यवस्थित हो सकते हैं। बद्रीनाथ प्रबन्ध समिति को समस्त आधीनस्थ मंदिरों के जीर्णोद्धार के लिये एक कोष स्थापित करना चाहिये, जिसमें सब लोग अपनी श्रद्धा से दान करें। उससे इन समस्त मन्दिरों की मरम्मत तथा पूजा आदि की व्यवस्था हो।

१६—केदार खण्ड या गढ़वाल का परिचय

(द्वितीय परिचय खण्ड)

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः
पूर्वापरौ तोयनिधि वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ।

(कुमार सम्भव)

उत्तर दिशा में देवस्वरूप पर्वतों का राजा हिमालय है। पूर्व से पश्चिम तक पृथ्वी को नापने के लिये मानो विधाता ने इसे मानदण्ड बनाया है।

गिरिराज हिमालय भारतवर्ष का शिरोमुकुट है। यह हिमालय पर्वतराज समस्त संसार के पर्वतों से ऊँचा है। यहाँ संसार कहने से आस्तिक संसार अर्थात् भारत खण्ड से प्रयोजन है। नगाधिराज-हिमालय की प्रशंसा में कवियों ने अपने काव्यों में विलक्षण-विलक्षण वर्णन किये है। इस शैलेश्वर की शोभा अवर्णनीय है। इसने गंगा यमुना जैसी पवित्र नदियों को जन्म दिया, जिनकी पुत्री साक्षात् जगदम्बा सतीजी हुईं जो शैल सुता पार्वती के नाम से प्रसिद्ध हुईं, जिनका विवाह देवाधिदेव शंकर के साथ हुआ। गिरिराज विवाह करके ही चुप नहीं रहे, उन्होंने महेश्वर को घर-जमाई भी बना लिया, जो भवानी के साथ आजपर्यन्त भी अपने ससुर की राजधानी में रहकर ससुराल के सुखों का उपभोग कर रहे हैं। ससुर का घर कितना सुखद होता है, सास के हाथ के भोजन में कितना मिठास है, इसे तो वे ही भाग्यवान अनुभव कर सकते होंगे जिन्हें सौभाग्य से सहृदय सास-ससुर मिले हों और जिन्होंने वहाँ रह कर उस सुख का रसास्वादन

किया हो। यदि ससुर का घर स्वर्ग से भी बढ़कर न होता तो शिवजी सदा ससुराल में क्यों पड़े रहते, विष्णुजी सदा समुद्र के घर में क्यों सोते रहते ? सचमुच शैलराज हिमालय का माहात्म्य शिवजी से ही बड़ा है। कैलाश में शिवजी सदा निवास करते हैं। पंचकेदार, केदारनाथ, रुद्रनाथ, तुङ्गनाथ।

आदि केदार बस हिमालय में ही है। हिमालय से शतशः। सहस्रशः नदियाँ मिलकर महानदी भगवती गंगादेवी का आश्रय लेकर जलनिधि समुद्र में जाकर मिल गई हैं। हिमालय से लेकर गंगासागर तक शैलसुतागंगा सदा बहती रहती हैं और अपने पिता की निधि को बिखेरती लुटाती हुई प्रतिक्षण अपने पति से मिलती रहती हैं। माता गङ्गा को अपना पीहर भी प्यारा है और पतिगृह भी, इसलिये वे दोनों से ही अलग होना नहीं चाहती। दोनों के समीप ही सदा बनी रहती हैं। हम सब उनकी सन्तान ठहरे, इसीलिये हमें भी भला वे कैसे भूल सकती हैं। गंगाजी अपने साथ पाषाण खण्ड लाती हैं, मुलायम मिट्टी लाती हैं, सुन्दर शीतल जल लाती हैं, इन सब से हमारे जीवन की उपयोगी वस्तुएँ पैदा होती हैं। अपने पतिदेव के घर से बादलों द्वारा जल भेजकर वे संसार को सुखी बनाती हैं। हिमालय, गंगा और सागर ये ही हमारे जीवनाधार हैं। यदि ये न हों तो हम जी नहीं सकते, रह नहीं सकते, टिक नहीं सकते। हमारा अस्तित्व ही इनके ऊपर अवलम्बित है। इन सब में बड़े हिमालय ही हैं। यही सबके आश्रय स्थान हैं यही सबके माननीय और पूजनीय हैं। इन्होंने शिव को स्थान दिया, विष्णु को स्थान दिया, तीर्थों को स्थान दिया और देवर्षि, महर्षि, ऋषि मुनि, तपस्वी सभी को इन्होंने अपने यहाँ ठहराया। इसलिये ये परम पावन और पूजनीय माने जाते थे। ये परम गहन हैं, परम अगम्य हैं, परम पावन हैं और परम परोपकारी हैं। इसीलिये समस्त धार्मिक राजाओं ने राज्य

छोड़कर इन्हीं की शरण ली है और यहीं सुख शान्ति प्राप्त की है। श्री बदरीनाथ के कारण हिमालय की महिमा और भी अत्यधिक बढ़ी है।

हिमालय के पाँच खण्ड

हिमालय के पाँच खण्ड शास्त्रों में माने गये हैं।* पहिला खण्ड है नेपाल, इसकी सीमा गोरखपुर से आगे है और मानसरोवर तक चली गई है। इस खण्ड में महादेव पशुपति नाम से विराजते हैं। पशुपतिनाथ नेपाल की राजधानी काठमांडू में स्थित है। शिवरात्रि पर वहाँ बड़ा भारी मेला लगता है। दूसरा खण्ड है कूर्माञ्चल जिसे कुमायूँ कहते हैं। अल्मोड़ा नैनीताल और तिब्बत का कुछ प्रदेश इसके अन्तर्गत है। तीसरा खण्ड है जालन्धर। पंजाब का समस्त पर्वतीय प्रान्त इसके अन्तर्गत है। चौथा खण्ड काश्मीर है। पंजाब से लेकर काश्मीर का समस्त प्रदेश इसमें सम्मिलित है। इस खण्ड में शिवजी अमरनाथ नाम से प्रसिद्ध हैं। पाँचवाँ खण्ड है केदार। इसमें हरिद्वार से लेकर कैलाश तक का समस्त प्रदेश आ जाते हैं। अर्थात् हरिद्वार से लेकर कैलाश पर्यन्त जितनी भूमि है उसी का नाम केदार खण्ड है। इस केदार खण्ड में असंख्यों तीर्थ हैं। सचालन पर्वतों में न जाने कितने तीर्थ छिपे बैठे हैं, पूरी तरह से शास्त्र भी नहीं बता सकता। किन्तु कहावत है "सब पैर हाथी के पैर में समा जाते हैं।" राजा की समस्त सेना के सैनिकों से परिचय करने का विशेष प्रयोजन नहीं। राजा से जान पहिचान हो गई तो शेष सब परिचित हो ही गये। इसी तरह बदरी केदार

---

* खण्डाः पञ्च हिमालयस्य कथिता नैपाल कूर्माञ्चलौ।
केदारोऽथ रुचिरः काश्मीर संज्ञोऽन्तिमः॥

के दर्शन हो जाने पर सभी तीर्थ प्रसन्न हो जाते हैं। सभी उसकी यात्रा को मान लेते हैं।

यह केदार खण्ड शिवजी की ही क्रीड़ास्थली है। यहाँ सर्वत्र शिवजी का ही साम्राज्य है। उन्हीं के यक्ष, राक्षस, दानव भूत प्रेत, पिशाच यहाँ सदा से निवास करते आये हैं। जब से विष्णु भगवान् ने यहाँ अड्डा जमाया तब से इस केदार खण्ड के अन्तर्गत यह बदरिकाश्रम वैष्णव खण्ड भी परम पावन तीर्थ बन गया। वैसे बदरीनाथजी तो अनादि ही हैं, यह क्षेत्र भी अनादि है, किन्तु इस पर विशेष स्वत्व शिवजी का ही है। इसीलिये बदरीनाथ में भी यात्री पहिले आदि केदारनाथ के दर्शन करके तब श्री बदरीविशाल के दर्शनों के निमित्त जाते हैं।

गढ़वाल का अर्थ

केदार खण्ड का प्रसिद्ध प्रचलित नाम इस समय गढ़वाल है। यह नाम क्यों पड़ा, इसका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं। प्रसिद्ध ऐसा है कि पहिले समय में पहाड़ों में छोटे-छोटे बहुत "गढ़" किले थे। जिस किसी राजवंश का राजकुमार देश में अपने राज्यसे निकाला जाता या पराजित हो जाता तब वह भागकर पहाड़ों में अपना किला बना लेता और आस-पास की जमीन पर अपना अधिकार जमाकर वहाँ अपना छोटा-सा राज्य स्थापित कर लेता। मुसलमानी शासन तक पहाड़ शत्रुओं के लिये अगम्य रहे, इसीलिये पहाड़ों में मुसलमानी अत्याचार कम हुआ। पंजाब काश्मीर में तो मुसलमानी उथल-पुथल हुई है, किन्तु कुमायूँ नैपाल और गढ़वाल ये पर्वतीय प्रान्त नितान्त निरापद ही बने रहे। यही कारण है कि गढ़वाल और नैपाल में किसी भी तरह प्राचीन हिन्दू राजवंशों की परम्परा अभी तक चली आती है।

हाँ, तो बहुत से गढ़ होने से भी इस प्रान्त का नाम गढ़वाल या गढ़वाला हुआ। ये गढ़ों वाले राजा ठाकुर या रावल सब अपने

को स्वतन्त्र समझते थे और परस्पर सदा लड़ते रहते थे। पँवार वंश के महाराजा अजयपाल ने इन सभी गढ़वाले राजा ठाकुरों को जीत कर पूरे प्रान्त पर अपना एकछत्र राज्य स्थापित किया, तभी से इसका नाम गढ़वाल प्रसिद्ध हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी से पूर्व कहीं भी गढ़वाल शब्द का उल्लेख नहीं पाया जाता।

यह राक्षसों का निवास

एक सज्जन ने मुझे गढ़वाल शब्द का विचित्र ही अर्थ बताया। उनका कहना है कि पहिले इस प्रान्त में राक्षस, दानव, दैत्य तथा यक्ष आदि असुर जातियों के वंशज ही रहते थे। किरात, हूण, खस, कंक, आंध्र-आदि अनार्य जातियों का ही निवास था। इनके देवी देवता भी दानव, यक्ष, भूत, पिशाच आदि ही थे, जो अब भी किसी-न-किसी अंश में यह प्रचलित हैं। ऋषि मुनि भी यहाँ आते थे किन्तु उनके स्थान विशेष-विशेष स्थानों पर ही होते थे और वे तपस्या करने के ही निमित्त आते थे। सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओं से पूर्व भी समस्त पृथ्वी पर असुरों का आधिपत्य था। भगवान् ने कुछ असुरों को पाताल भेज दिया, बहुत से उत्तराखण्ड चले आये। यहाँ मनुष्य जाति से संसर्ग होने से उनके वंशज अनार्य जाति के लोग हुए जो पहाड़ों में अब भी अस्पृश्य जाति के माने जाते हैं। राजा बलि के पुत्र भौमासुर की राजधानी शोणितपुर (गुप्त काशी के समीप, यहीं थी, अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध है, यक्षों के राजा कुबेर की भी यह कभी क्रीडाभूमि रही है। माणा के हुणिया अथवा मारचे अपने को कुबेर वंश का ही बताते हैं। घंटाकर्ण राक्षस भी इस प्रान्त का अधिपति था। दानव भी यहाँ पहिले खूब रहते थे। अब भी यहाँ ग्राम देवता, देवी, वन, पर्वत, उपजातियों के नाम इसी तरह के हैं। दानव का अपभ्रंश है दाणू। दाणू के नाम से

बहुत से ग्राम देवता हैं, 'जैसे कोड्यादाणू रूप (कोटि दानव) केदारदाणू (केदार दानव), रूपदाणू (रूप दानव) इन दानवों की पूजा होती है और वे सिर भी आते हैं। पिंडर नदी की घाटी में बहुत-से लोगों की जातियाँ भी दाणू हैं। इनके नाम के आगे दाणू लगाया जाता है। बहुत-से गाँव के नाम दाणूकोट, दाख-कोटी, दाणमी आदि हैं।

इस तरह यक्ष का अपभ्रंश है 'जाख'। जाख देवता भी इधर ग्रामदेवता माने जाते हैं। बहुत-से ग्राम, पर्वत, नदी, पानी आदि का नाम भी इनकी स्मृति में प्रसिद्ध है। जैसे जाख, जाखड़ी, (यक्षिणी) जखोली, जखदेउ (यक्षदेव), जाखपाणी (यक्षपानी), जखबाणी (यक्षबावड़ी) आदि प्रसिद्ध हैं।

इनके अतिरिक्त नाग, भैरव, सिद्ध, गणदेवी, घोराड़ी, एराड़ी भराड़ी और निरङ्कार आदि देवी देवता पूजे और माने जाते हैं। पर्वतों में ऐसे देवी देवता बहुत माने पूजे जाते हैं। यही नहीं बौद्धधर्मावलम्बी तिब्बत में भी उनकी पूजा होती है। वहाँ भी जन्तर मन्तर, जादू टोना सब चलते हैं।

घंटाकर्ण का भी यहाँ बहुत प्रभाव है। बहुत-से गाँवों में घंटाकर्ण को ग्रामदेवता के रूप में पूजा होती है। बहुत-सी स्त्रियाँ घन्टे बाँधकर पूजा के दिनों में निकलती हैं। घंटाकर्ण को 'घंट्याल' अर्थात् घंटा वाला कहते हैं। घंट्याल यहाँ बहुत प्रसिद्ध है। इन सभी आसुरी देवताओं की पूजा बलिदान से ही होती है। इनके सामने भैंसों तथा बकरों का बलिदान होता है। पहिले मनुष्यों का भी बलिदान होता होगा, क्योंकि घंटाकर्ण स्वयं भगवान् की भेंट के लिये एक ब्राह्मण को मारकर लाया था। इसीलिये घंटाकर्ण या घंट्याल इस प्रान्त में इतना व्यापक हो गया। उसी के नाम से घंट्याल, घंडवाल, अन्त में यह 'गढ़-वाल' हो गया।

किन्तु हमारी समझ में यह बात नहीं आती। यक्ष, राक्षस दानवों का इस प्रान्त में प्रभाव था इसे तो हम भी मानते हैं। यहाँ के मूल निवासी प्रायः सभी अनार्य जाति के हैं। पांडुकेश्वर के ताम्र पत्रों में स्पष्टतयः खस, किरात, गोंड, आँध्र तथा हूणों का नाम आता है। वे ही लोग इन राजाओं के प्रजाजन थे। यहाँ जो ब्राह्मण क्षत्री आदि आये हैं सब नीचे से आये हैं। अभी तक इनका निकास देश के ही नगरों से प्रसिद्ध है। किन्तु उन्होंने यहाँ के निवासियों से विवाह सम्बन्ध कर लिया। अब देखने में आता है कि पुरुषों को आकृतियाँ तो देशनीय हैं, किन्तु स्त्रियाँ बिलकुल ही पार्वतीय हैं। पर्वतों में जितने आर्य राजवंश हैं वे सब नीचे से गये हैं। यह सब तो ठीक है, किन्तु घंटावाला से गढ़वाल प्रसिद्ध नहीं हुआ। क्योंकि इन तामसी देवी देवताओं तथा अनार्य लोगों का प्राधान्य तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी तक ही रहा। उसके बाद तो देश पर गढ़वाल के राजाओं का एकछत्र शासन धीरे-धीरे बढ़ने लगा। उसी समय बहुत से नीचे के लोग आ-आकर यहाँ बसने लगे। यदि घंटाकर्ण के कारण ही इसका नाम गढ़वाला हुआ होता तो पहले भी कहीं यह नाम आता। किन्तु पन्द्रहवीं शताब्दी से पूर्व कहीं भी गढ़वाला का नाम नहीं मिलता। इससे यही अनुमान ठीक है कि अधिक गढ़ों के होने से ही पन्द्रहवीं शताब्दी के बाद यह गढ़वाला नाम से प्रसिद्ध हुआ।

गन्धमादन का अर्थ

पुराणों में इन पर्वत श्रेणियों को गन्धमादन कहा गया है। यह गन्धमादन बिलकुल सार्थक है, क्योंकि यहाँ की प्रत्येक घास फूल-पत्ती में एक प्रकार की बड़ी उत्कट मादक गन्ध आती है। यहाँ जङ्गलों में उत्पन्न होने वाली बनतुलसी, दमन-पत्र आदि बहुत ही उत्कट गन्ध वाले होते हैं। यहाँ पर्वतों पर जो धूप उत्पन्न होती है, जो श्री बद्रीनाथ जी की पूजा में व्यवहार की

जाती है, उसमें और कोई भी चीज बिना मिलाये ही उसकी सुगन्ध बड़ी सुन्दर होती है। सूखने पर उसकी सुगन्ध ज्यों की त्यों बनी रहती है। रुद्रनाथ तथा माणासे ऊपर के जङ्गलों में ऐसी जड़ी बूटियाँ हैं जिनको गन्ध से आदमी बेहोश हो जाता है। जब हम श्री बद्रीनाथ से सीधे पर्वत लाँघकर कैलाश गये थे, तब तिब्बत की सीमा पर जो बड़ा भारी पर्वत है, जिसकी चोटी पर सदा बरफ जमी रहती है, उसे पार करते समय हमारे सभी साथी बेहोश हो गये थे। यहाँ के स्थल कमलों में इतनी उत्कट गन्ध होती है कि अधिक देर सूँघते रहें तो सिर में चक्कर आ जाता है। यहाँ एक प्रकार का विष भी उत्पन्न होता है जिसे "मीठा" कहते हैं। उसके फूल नीले होते हैं। जड़ विष का काम करती है। जड़ को खाने से तुरन्त आदमी मर जाता है। इन्हीं कारणों से इसका नाम गन्धमादन सार्थक प्रतीत होता है।

बद्रीनाथ धाम गन्धमादन पर्वत पर ही है। नारायण इस धाम के देवता हैं। नारद जी इसके प्रधान अर्चक हैं और अलकनन्दा इस क्षेत्र का प्रधान तीर्थ है। पुराणों में श्री बद्रीनाथ, नर-नारायण, अलकनन्दा आदि का स्थान-स्थान पर उल्लेख है। बद्रीनाथ के प्रधान-प्रधान तीर्थों का भी वर्णन है। भारतीय संस्कृति के प्रतीक पुराण और महाभारत ही हैं। हम अपनी सभ्यता, जातीयता, धर्म तथा संस्कृति का बोध पुराण और महाभारत के द्वारा ही प्राप्त कर सकते हैं। अतः पहिले अत्यन्त संक्षेप में इस बात पर विचार करेंगे कि पुराण तथा महाभारत में श्री बद्रीनाथ के सम्बन्ध में कहाँ-कहाँ क्या उल्लेख है।

—:—

२०—पुराणों में श्री बद्रीनाथ

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥

(ब्रह्मांड पु०)

ब्रह्माजी ने सब शास्त्रों से पूर्व पुराणों को प्रकट किया । तदनन्तर उनके चार मुखों से चार वेद उत्पन्न हुए ।

हम जप तप स्वाध्याय ध्यान आदि का फल माहात्म्य सब कुछ पुराणों से ही जान सकते हैं । तीर्थों की जानकारी और उनका माहात्म्य पुराणों से ही जाना जा सकता है । कौन तीर्थ कहाँ है, उसकी जानकारी के लिये पुराणों के अतिरिक्त हमारे पास दूसरा कोई भी साधन नहीं है । श्री बद्रीनाथ के माहात्म्य का प्रायः सभी पुराणों में थोड़ा बहुत वर्णन किया गया है । कहीं पर बद्री क्षेत्र का माहात्म्य है । कहीं पर नर-नारायण की कथा और कहीं पर अलकनन्दा का ही वर्णन है । ऐसा कोई भी पुराण नहीं छूटा जिसमें थोड़ा बहुत वर्णन न आया हो । यह बात हम पहिले ही कह चुके हैं कि विष्णु पदी गंगा कहने से समस्त पुराणों में बद्रीनाथ वाली अलकनन्दा को ही ग्रहण किया गया । भागीरथी गंगा की धारा तो पीछे भगीरथ की तपस्या के प्रभाव से आई । बद्रीक्षेत्र में अनेक गुप्त प्रकटतीर्थ हैं । पुराणों में उनका वर्णन है । पुराणों में सबसे अधिक सुन्दर वर्णन तो स्कन्द पुराण में किया है ।

स्कन्द पुराण—स्कन्द पुराणश्लोक संख्या में सब पुराणों से अधिक है । इसकी श्लोक संख्या श्रीमद्भागवत में और स्वयं

स्कन्द पुराण के समस्त खण्डों में ८११०० बताई है। ७ खण्ड हैं उनमें से एक वैष्णव खण्ड भी है। उसमें तीर्थों का माहात्म्य भी वर्णित है। वहीं पर आठ अध्यायों में श्री बद्रीकाश्रम के तीर्थों का यथाक्रम वर्णन है। वर्णन में क्रम नहीं है फिर भी वहाँ के मुख्य-मुख्य तीर्थों का वर्णन किया है।

पद्म पुराण—पद्म पुराण भी बड़ा पुराण है। इसकी श्लोक संख्या ५५००० है। इसके सृष्टि खण्ड के चौदहवें अध्याय में नर की उत्पत्ति का विस्तार से वर्णन है। बड़ी रोचक कथा है। इसमें महादेव जी के हाथ कपाल काशी में छूटने का उल्लेख है। उत्तर खण्ड के द्वितीय अध्याय में नर-नारायण के स्वरूप का वर्णन, बदरिकाश्रम की अलकनन्दा गंगा में स्नान का फल तथा आदि केदारनाथ का वर्णन है। श्री बद्रीनाथ के सम्बन्ध में प्राधान्य रूप से दो ही स्थानों में वर्णन है।

श्रीमद्भागवत—भागवत पुराण को सब पुराणों का तिलक शिरोमणि कहा गया है। इसके १२ स्कन्ध हैं और श्लोक संख्या १८००० बताई गई है। इसमें अनेक स्थानों पर बद्रीपुरी का उल्लेख है। अमुक राजा राज्य छोड़कर 'प्रयसौ विशालाम्' बद्रीकाश्रम चला गया। ऐसा उल्लेख स्थल-स्थल पर है। भगवान् ने बदरिकाश्रम के माहात्म्य का गुण गान करके उद्धवजी को बदरिकाश्रम भेजा है। इसकी एकादश स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय में जहाँ अवतारों का वर्णन किया है वहाँ नर-नारायण के अवतार का ग्यारह श्लोकों में बड़ा ही मार्मिक वर्णन है। पंचम स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय में भारतवर्ष का वर्णन करते हुए भारतवर्ष के उपास्यदेव भगवान् बदरीनाथ नर-नारायण ही बताये गये हैं। इस तरह भागवत में तो बदरीकाश्रम को सभी के लिये अन्तिम गन्तव्य स्थान बताया गया है।

देवी भागवत—देवी भागवत पुराण में भी १२ स्कन्द और

१८००० श्लोक हैं। इसे उपपुराण माना गया है। शाक्त इसी पुराण को महापुराण मानते हैं और मुख्य भागवत को उपपुराण। इसमें नारद और नारायण सम्वाद है। स्थान-स्थान पर बदरिकाश्रम का उल्लेख होना स्वाभाविक ही है। चतुर्थस्कन्ध में बड़े विस्तार से नर-नारायणजी की कथा का वर्णन किया है। कैसे उत्पन्न हुए, कैसी तपस्या की, बदरी क्षेत्र में किस प्रकार इन्द्र ने उनके तप भंग करने को, वसन्त, कामदेव और अप्सराओं को भेजा, उर्वशी की उत्पत्ति इत्यादि की सब कथायें उसमें वर्णित हैं।

वायु पुराण—वायु पुराण पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में विभक्त है इसकी श्लोक संख्या २४००० बताई गई है इसके पूर्वार्द्ध में ४२ वें अध्याय तक श्री बदरीनाथ जी के तीर्थ, मन्दिर आदि का उल्लेख है। कोई शिवपुराण और वायुपुराण को एक मानते हैं कोई पृथक्।

वामन पुराण—वामन पुराण में ९५ अध्याय हैं। श्रीमद्-भागवत में इसकी श्लोक संख्या १०००० बताई है। इस पुराण के आरम्भ में ही द्वितीयाध्याय में नर की उत्पत्ति का वर्णन है। फिर नर-नारायण का उपाख्यान वर्णित है, जिसमें इन्द्र के द्वारा अप्सराओं का भेजा जाना, प्रह्लाद नारायण का परस्पर युद्ध, नारायण द्वारा अपनी पराजय की स्वीकृति तथा प्रह्लाद को वर-दान देने का वर्णन है। द्वितीयाध्याय से आठवें अध्याय तक आयान्तर कथाओं के सहित नर-नारायण के माहात्म्य तथा प्रभाव का वर्णन है।

कूर्म पुराण—कूर्म पुराण भी पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में विभक्त है। पूर्वार्द्ध में ५३ अध्याय और उत्तरार्द्ध में ४६ अध्याय हैं। इसकी श्लोक संख्या १७००० है। इसमें बदरीनाथ जी के विषय में कोई विशेष आख्यान उल्लेख नहीं। हाँ, उत्तरार्द्ध

में सनकादिकों के प्रश्न पर शिवजी ने बदरिकाश्रम क्षेत्र में ईश्वर गीता का वर्णन किया है सनकादिक कुमार तथा अनेक महर्षि महापुरुष बदरिकाश्रम में जाकर भगवान् से पूछने लगे—"आप साक्षात परब्रह्म हैं। आप ऐसा घोर तप क्यों कर रहे हैं, हमें मुक्ततत्व का उपदेश करें।" इतने में ही शिवजी आ गये। भगवान् नारायण ने उनसे कहा, "आप सर्वज्ञ हैं, आप इन्हें तत्व का उपदेश दें। वहीं उपदेश ईश्वर गीता है। ३१ वें अध्याय में शिवजी के कपाली होने की कथा है। किन्तु कपालमोचन काशी में ही हुआ।

नारद पुराण—नारद पुराण के भी पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भाग हैं। श्लोक संख्या २५ हजार बताई है। उत्तरार्द्ध में बड़ा ही रोचक मोहिनी उपाख्यान है। उसी उपाख्यान में पुराण की समाप्ति है। उसमें मुख्य-मुख्य सब तीर्थों का माहात्म्य है। उत्तरार्द्ध ६७ वें पूरे अध्याय में श्री बद्रीनाथ जी के माहात्म्य का और वहाँ के मुख्य-मुख्य तीर्थों का वर्णन है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण—ब्रह्मवैवर्त पुराण के चार खण्ड हैं। ब्रह्म खण्ड, प्रकृति खंड, गणेश खण्ड और श्रीकृष्ण जन्म खण्ड श्लोक संख्या १२ हजार बताई गई है। ब्रह्म खण्ड के २९ वें अध्याय से ३० वें अध्याय तक श्री नारायण के सम्बन्ध की कथा है। शिवजी का वर पाकर उनकी आज्ञा से नारद जी बदरिकाश्रम जाते हैं और भगवान् से ऋषियों के सहित पूछते हैं, 'आप किसका भजन करते हैं।' तब भगवान् उत्तर देते हैं, 'मैं श्रीकृष्ण का भजन करता हूँ और श्रीकृष्ण तथा मैं अभिन्न हूँ।' इस प्रकार श्रीकृष्ण माहात्म्य बताकर भगवान् ने बड़ी ही सुन्दर स्तुति का वर्णन किया है। प्रकृति खण्ड में भगवान् की श्रीदेवी, भूदेवी, गंगा और तुलसी इन चार पत्नियों की बड़ी विस्तृत कथा है।

कैसे गङ्गा जो विष्णुपदी हुईं, राधाजी उन्हें द्रव रूप होने पर पीने को उद्यत हुईं, तुलसी जी ने कैसे बदरिकाश्रम में तप किया, यह कथा बड़े रोचक ढंग से बड़ी साहित्यिक और ललित भाषा में वर्णन की गई है।

वराह पुराण—वराह पुराण में २१८ अध्याय हैं। इसके ४८ वें अध्याय में राजाविशाल की कथा है, जिसने लड़ाई में हार कर बदरिकाश्रम जाकर तप किया, जिसके नाम से बदरीविशाल और विशाला नगरी कहलाई। ६७ तथा ६८ वें अध्यायों में नारद जी को पञ्चरात्र तन्त्र की प्राप्ति का वर्णन है और १४१ में पूरे अध्याय के ७० श्लोकों में बदरी क्षेत्र के सब तीर्थों का वर्णन किया गया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के पूर्वार्द्ध में भी नर-नारायण और उर्वशी की उत्पत्ति का वर्णन है। इसके अतिरिक्त अन्य पुराणों में भी श्री बदरीनारायण के सम्बन्ध में थोड़ा बहुत प्रसङ्गवशात् वर्णन आता है उन सबका यहाँ उल्लेख नहीं हो सकता।

केदार खण्ड

केदारखण्ड नाम का एक अलग ग्रन्थ भी मिलता है। वह स्कन्द पुराणान्तर्गत बताया जाता है। उसमें २०६ अध्याय हैं। हरिद्वार से लेकर बदरीनाथ, केदारनाथ, यमुनोत्री और गंगोत्री के समस्त तीर्थों का इसमें बड़ी ही सुन्दरता से वर्णन है। यद्यपि वर्तमान समय में प्रचलित स्कन्द पुराण में ये २०६ अध्याय नहीं मिलते। उसमें केदार खण्ड है तो अवश्य किन्तु उसमें ८–१० अध्याय हैं बदरीनाथ माहात्म्य के भी अलग ८ अध्याय हैं। इतना होने पर भी हम इस ग्रन्थ को प्रक्षिप्त या अप्रमाणिक नहीं मानते, अवश्य ही उसकी शैली पौराणिक शैली है। यह कभी स्कन्द के अन्तर्गत रहा होगा। वर्तमान समय में जो स्कन्द पुराण उप-

लब्ध है वह कोई स्वतन्त्र यथाक्रम ग्रन्थ नहीं है। नाना प्रसंगों का संग्रह है। संभव है पीछे संग्रह करने में यह भाग छूट गया हो। बहुत संभव है कोई बृहद् स्कंद पुराण हो उसी का यह अंश हो। यथार्थ बात तो यह है कि पूरे स्कन्द पुराण का अभी तक ठीक-ठीक पता ही नहीं है। बहुत-से पुराणों की श्लोक संख्या में मतभेद पाया जाता है। फिर पुराण भी कई तरह के होते हैं। महापुराण, उपपुराण, औपपुराण, अल्पपुराण आदि-आदि। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि यह ग्रन्थ किसी अर्वाचीन पंडित ने मनगढ़ंत बना दिया है।

इसी तरह का एक प्रयाग माहात्म्य शताध्यायी ग्रन्थ है। उसमें प्रयाग माहात्म्य के १० अध्याय हैं और वह पद्म पुराण के अन्तर्गत बताया जाता है। उसके प्रत्येक अध्याय के अन्त में पद्म पुराणान्तर्गत प्रयाग महात्म्य लिखा है। किन्तु वर्तमान पद्म-पुराण में वे अध्याय नहीं मिलते। उनसे भिन्न अध्याय मिलते हैं। किन्तु वे १०० अध्याय अर्वाचीन नहीं हैं। सैकड़ों वर्ष पूर्व के ताड़पत्रों पर विभिन्न भाषाओं के अक्षरों में लिखा प्रयाग महात्म्य मिलता है। और भी बहुत-सी प्राचीन प्रतियाँ भिन्न-भिन्न स्थानों में मिलती हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि किसी बृहत् पद्मपुराण के १०० अध्याय होंगे।

केदारखंड की भी सैकड़ों वर्ष पुरानी हस्त लिखित प्रतियाँ उत्तराखंड में मिलती हैं। देवप्रयाग में ही एक बहुत प्राचीन प्रति मौजूद है। इससे कोई भी इस ग्रन्थ को अर्वाचीन न समझे। आज से २०० वर्ष पहिले उत्तराखंड का मार्ग कितना दुर्गम था इसका अनुमान वही लगा सकता है जिसने आज से ४०-५० वर्ष पूर्व यात्रा की हो, ऐसे समय में उत्तराखंड के कोने-कोने के तीर्थ का यथाविधि पता लगाकर लिख देना साधारण व्यक्ति का काम नहीं है। केदारखंड की कथायें बड़ी ललित हैं। उसमें गान विद्या

का अपूर्व वर्णन है। उसकी वर्णन शैली बड़ी सुन्दर सरस है, उसके स्तोत्र बड़े ही प्रभावोत्पादक और हृदयग्राही हैं हमें अन्य पुराणों में जहाँ जिन तीर्थों का विशेष वर्णन नहीं मिला है वहाँ हमने केदार खंड से ही लेकर उनका वर्णन किया है।

इस प्रकार पुराणों में स्थान-स्थान पर श्री बदरीनाथ की महिमा गाई गई है।

२१—महाभारत में श्रीबद्रीनाथ

महाभारत में स्थान-स्थान पर श्री बदरीनाथ का वर्णन है। उत्तराखंड के घर-घर में पांडव समा गये हैं। श्री बदरीनाथ के समीप पांडुकेश्वर में ही महाराज पांडु रहते थे, वहीं पर पांडवों का जन्म हुआ। जन्म के पश्चात् लाक्षागृह से भागकर भी इधर आये, फिर जब वनवास हुआ तब भी पांडव उत्तरा खंड घूमते रहे। राजा हो गये और अश्वमेध यज्ञ करने के लिये जब धन की आवश्यकता पड़ी तब भगवान् की आज्ञा से मरुत्त के यज्ञ के बचे सुवर्ण को लेने उत्तराखण्ड ही गये। वहाँ से बहुत धन लाकर यज्ञ किया। अंत में राज्य छोड़कर जब महाप्रस्थान पथ की ओर चले तब भी उन्होंने उत्तराखण्ड की ही गोद में आश्रय पाया। बदरीनाथ जाकर फिर वे लौटे नहीं। इसीलिये उत्तर दिशा के लिये कहा गया है कि इस दिशा में जाकर महात्मा फिर लौटते नहीं इसीलिये यह उत्तर दिशा है। बदरीनाथ में ही पांडवों का जन्म हुआ, वहीं उनकी क्रीड़ा भमि और तपोभूमि रही, वहीं तपस्या करके अर्जुन सशरीर स्वर्ग जाकर, अस्त्र ज्ञान प्राप्त कर के लौटे, वहीं जाकर उन्होंने तप संचय तथा धन संचय किया और वहीं जाकर उन्होंने अपने उस नश्वर शरीर को हिमालय की बरफ में एकीभून कर दिया। इसीलिये महाभारत में तो बदरीनाथ ओत-प्रोत है।

वनपर्व के अन्तर्गत जो तीर्थयात्रा पर्व है उसके ९० वें अध्याय में श्रीबदरीपुरी का बदरीनाथ का माहात्म्य वर्णन है। प्रसंगवशात् स्थान-स्थान पर बनरीवन को पवित्रता और महत्ता का उल्लेख आया है। वहाँ पर वर्णन है कि श्री नारायण देव आश्रम

परम पवित्र है जहाँ उष्ण गंगा और शीतल गंगा हैं, जहाँ देवता, यक्ष, गन्धर्व, ऋषि मुनि सदा वास करते हैं। यह क्षेत्र पवित्र से से भी पवित्र है। इस विषय में हे राजन् ! तुम्हें कुछ भी शङ्का न करनी चाहिये।*

हरिवंश पुराण—हरिवंश महाभारत का ही एक भाग है। उसमें ७६ वें अध्याय से ८८ वें अध्याय तक बड़े विस्तार से घंटाकर्ण की कथा है जिसमें बदरीनाथ माहात्म्य का वर्णन है। वह कथा हमने घंटाकर्ण के अध्याय में दे दी है।

एक बात और भी स्मरण रखने की है, पांडव इस प्रान्त में देवताओं की तरह पूजे जाते हैं। पांडवों के सम्बन्ध में पहाड़ी भाषा में गीत गाये जाते हैं। उनकी लीलाओं का अनुकरण किया जाता है और उनके नाम का नृत्य भी होता है। पांडव नृत्य समस्त गढ़वाल में प्रसिद्ध नृत्य है। हमने उसी ढंग का नृत्य तिब्बत में भी देखा था। वहाँ स्त्री-पुरुष दोनों साथ नाचते हैं। यहाँ भी उसी तरह का नृत्य होता है। अब तो कम होगया नहीं तोमातामूर्ति के मेले के समय नशे में झूम-झूम कर पहाड़ी मारचे खूब नाचते थे। पांडवों की स्मृति में यहाँ बहुत से गाँव, शिला, नदी, नाले

---

*तस्याऽति यशसः पुण्यां विशालां वदरी मनु।
आश्रमः ख्यायते पुण्यास्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥
उष्णतोयवहा गंगा शीततोयवहा परा।
सुवर्णसिकता राजन् विशालां बदरी मनु॥
ऋषयो व यत्र देवाश्च महाभागा महौजसः।
प्राप्यं नित्यं नमस्यन्ति देवं नारायणं प्रभुम्॥
आदिदेवो महायोगी यत्रास्ते मधुसूदनः।
पुण्यानामपि तत्पुण्य मन्त्र त संशयोऽस्तुमा॥
(महाभारत वन पर्व ९ अ० २५-२६-२७-३२ श्लोक)

प्रसिद्ध हैं। जैसे पांडुकेश्वर, पन्नोसेरा (पांडवशिरा), पन्नोवाड़ी (पांडव बावड़ी), पनाऊँ, भ्यूँद्वार (भीम द्वार या भीम भंडार), भ्यूँलते (भीमलता), भ्यूँपूंणा (भीमपुर), भ्यूँशिला (भीमशिला), भीमपानी आदि-आदि।

पांडवों में भी भीम यहाँ अधिक प्रसिद्ध हैं। संभव है इसका यह कारण हो कि भीमसेन ने हिडम्बा नाम की राक्षसी से विवाह किया था। उससे उन्हें घटोत्कच नाम का पुत्र भी हुआ था। राक्षसों का तो यह विहार स्थान ही है। घटोत्कच के वंश के लोगों के भीमसेन पितर ही ठहरे। इसीलिये भीमसेन यहाँ सर्वव्यापी बन गये। गंधमादन यात्रा में जब द्रौपदीजी थक गयी थीं तो भीमसेन ने अपने पुत्र घटोत्कच को स्मरण किया। वह अपने कई राक्षसों के साथ आया और द्रौपदी जी को पीठ पर लादकर ले गया था। सचमुच ठेठ देहाती काले कलूटे हृष्ट पुष्ट पहाड़ी बाल खोले पीठ पर कुंडो में यात्रियों को चढ़ाकर जब बदरीनाथ यात्रा को ले जाते हैं तो वे साक्षात् घटोत्कच के वंश के प्रतीत होते हैं। उनकी वह सूरत बड़ी विचित्र होती है।

इस प्रकार महाभारत में स्थान-स्थान पर बदरीनाथ गन्धमादन तथा वहाँ की संस्कृति का उल्लेख है। श्रीशङ्कराचार्य के पूर्व तक यह वन्य प्रदेश था असुर वंश के अनार्या जाति के लोग यहाँ अधिकतर रहते थे। वे मांसाहारी तथा अवैदिक थे। इसीलिये भगवान् शङ्कराचार्य ने श्रीबदरीनाथ की प्रतिष्ठा करके उनकी पूजा के लिये दक्षिण से विशुद्ध वैदिक नम्बूद्रि ब्राह्मण को बुलाकर उसके द्वारा पूजा करने की परिपाटी प्रचलित की। आगे के अध्याय में श्रीशङ्कराचार्य के सम्बन्ध में कुछ लिखा जायगा।

२२-श्री शङ्कराचार्य और श्रीबदरीनारायण

श्रुतिस्मृति पुराणतमालयं करुणालयम् ।
नमामि भगवत्पादं शङ्करं लोक शङ्करम् ॥

यह बात सर्व श्रुत निर्विवाद है कि स्वामी आदि शङ्कराचार्य द्वारा श्री वदरीनाथ मन्दिर की पुनः प्रतिष्ठा या जीर्णोद्धार हुआ मतभेद है। वहुत से लोगों ने आचार्य के आविर्भाव समय के सम्बन्ध में अपने-अपने विचार प्रकट किये हैं उनमें बड़ा मतभेद है। मतभेद के प्रधान कारण कई हैं। सबसे पहिली बात तो यह है कि इन सम्वतों के निर्णय में ही अपनी विद्वत्ता को प्रकट करने की प्रवृत्ति इन पश्चिमीय विदेशी लेखकों में पाई जाती है। भारतीय लेखक सदा ही इन सन् सम्वतों के विषय में उदासीन रहे हैं। हम किसी के विषय में क्यों सोचते हैं ?

मनुष्य जन्तु इतना अभिमानी है कि यह अपने सामने किसी की प्रतिष्ठा चाहता ही नहीं। अपने से अधिक किसी की प्रसिद्धी, प्रशंसा तथा सम्मान सहन करना मानवीय स्वभाव है सबसे पहले प्रश्न यही उठता है, कि श्री शङ्कराचार्य का जन्म कब हुआ ? यह सर्वश्रुत जनश्रुत है, सभी शङ्कर जीवन सम्बन्धी पुस्तकों में उल्लेख है कि श्री शङ्कराचार्य कुल ३२-३३ वर्ष तक ही इस धराधाम पर विराजे। इस अल्प काल में ही उन्होंने सम्पूर्ण देश में दिग्विजय की, बौद्धों को परास्त किया, वैदिक धर्म की स्थापना की, प्रस्थान त्रयी पर भाष्य किया, अनेक धार्मिक ग्रन्थों की रचना की, मठों की स्थापना की, बड़े-बड़े

प्राचीन तीर्थों का उद्धार किया और यह सब करके अन्त में ३२-३३ वर्ष की अल्पायु में ही वे इस असार-संसार को त्यागकर अपने निज स्वरूप में मिल गये।

आचार्य के जन्म समय के विषय में विद्वानों में बड़े-बड़े मत-भेद हैं। स्कन्द पुराण में स्पष्ट ही लिखा है कि कलियुग में यति रूप से मैं नारद कुण्ड से भगवान् की मूर्ति को निकाल कर स्थापित करूँगा।

यह तो पौराणिक प्रमाण है युक्तिपूर्वक भी सोचा जा सकता है कि कहाँ समुद्र के किनारे भारतवर्ष का अन्तिम छोर कन्या-कुमारी कहाँ उत्तर का अन्त बदरीनारायण। बदरीनाथ का अर्चक आज पर्यन्त भी श्री शङ्कराचार्य की नम्बूद्री जाति में से ही आता है। अतः अवश्य ही श्री शङ्कराचार्य द्वारा इस मन्दिर की पुनः प्रतिष्ठा या पूजा आदि की व्यवस्था की गई होगी। अब विचारणीय प्रश्न यह है, कि श्री आदि शङ्कराचार्य के द्वारा कब इस मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ ? इस प्रश्न पर विचार करना प्रवृत्ति के विरुद्ध है, किन्तु जब हम किसी के गुणों पर मुग्ध हो जाते हैं, जब कोई हमें अपने सदाचार, सत्य, भक्ति, श्रद्धा, उत्साह, साहस आदि महान गुणों से प्रभावित कर देता है तो हम विवश होकर उससे प्रेम करने लगते हैं, उसकी प्रशंसा किये बिना रह नहीं सकते। केरल देश में कितने विद्वान कितने सदा-चारी हुए उन सबसे हमें कोई प्रयोजन नहीं। किन्तु शंकर की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी, उन्होंने अपने प्रभाव से सभी लोगों को आकर्षित किया। इसीलिये आज हम उनकी प्रत्येक बात को जानकारी के लिये उत्सुक हैं। आर्य संस्कृति में सदा गुण की ओर ध्यान दिया गया है, कथा की वास्तविक घटना हुई या नहीं, इस ओर उनका तात्पर्य विशेष नहीं। इस कथा से हमें क्या शिक्षा मिलती है, इससे हम क्या सीख सकते हैं, कौन-सा गुण

ग्रहण कर सकते हैं इतना ही उनका लक्ष्य है। वास्तविक घटना का अर्थ क्या ? एक ही घटना दस भिन्न-भिन्न प्रकृति के मनुष्य देखकर अपने-अपने दृष्टिकोण से उसका भिन्न-भिन्न तरह से वर्णन करते हैं। सभी वास्तविक हैं या कोई भी वास्तविक नहीं, सभी अपनी-अपनी कल्पनायें हैं। कल्प में घटित होने से कल्पनायें कही जाती हैं। इसलिये जब हम पुराणों की एक ही कथा को जब कई तरह से पढ़ते हैं तो झूठ कह देते हैं यह कल्प-भेद है। अर्थात् सभी सत्य हैं "मायायांकिं न सम्भवः।" असम्भव तो कोई बात नहीं। इन्हीं सब कारणों से हमारे यहाँ सन्-सम्वत् देने की प्रथा नहीं है और यह ठीक भी है। काल अनन्त है इसका क्या निर्णय करना। गुण ही प्रधान है। इसीलिये ज्ञानी लोग सदा इस झगड़े से दूर रहे हैं। व्यास वाल्मीक से लेकर, कालिदास, तुलसी, कबीर तक किसी ने इस नीरस विषय का उल्लेख नहीं किया।

जब से ये पश्चिमीय लेखक आये हैं, इनकी प्रवृत्ति बस इन्हीं बातों की तरफ रही है। ये इसे ही नई खोज (रिसर्च) समझे बैठे हैं। इसलिये काल निर्णय में ये ही विधाता का काम करते हैं। इनकी सब भित्ति अनुमान पर खड़ी की जाती है। वे अनुमान इतने हास्यप्रद हैं कि कोई साधारण बुद्धि का भी भारतीय प्रवृत्ति का मनुष्य उन्हें बाल चापल्य ही कह सकता है। किन्तु आजकल शिक्षा उन्हीं के हाथ में है। वे अपने अनुमान पर बड़े-बड़े पोथे लिखते हैं, वे ही हमारे पाठ्य ग्रन्थ स्वीकृत होते हैं, उन्हीं को पढ़कर हमारी विचार धारा वैसी बनती है। इन पश्चिमीय विद्वानों की दृष्टि इतनी संकुचित है कि वे ईसा की शताब्दी के आगे बढ़ते ही नहीं। इनके लिये पाँच हजार वर्ष के बाद का समय प्राक ऐतिहासिक है उसे वे खींच-खाँच कर ईसा की शताब्दी के आसपास ही लाते हैं। इन्हीं सब विचार धाराओं के

कारण तथा पश्चिमीय और उन्हीं के अनुयायी भारतीय लेखकों ने आदि शङ्कराचार्य का समय आठवीं शताब्दी लिखा है।

किन्तु हम इस मत को बिलकुल भ्रमपूर्ण समझते हैं। शङ्कराचार्य के समय का निर्णय करने में पश्चिमीय विद्वानों की सम्मति का हमारे सामने कोई विशेष महत्व नहीं। उनके समय निर्णय के दो ही प्रबल प्रमाण हो सकते हैं। एक तो यह कि स्वयं शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित चार मठ हैं, उनकी वंश परम्परा। दूसरे उस समय के प्राप्त ताम्र पत्र। तब से एक मठ की अविछिन्न परम्परा चली आ रही है और वह देश को चारों दिशाओं में मौजूद हैं और अब भी है तब फिर हम दूसरा प्रमाण खोजने क्यों जायँ? अतः हम उन्हीं प्रमाणों से यहाँ संक्षेप में शङ्कर के समय का निर्णय करेंगे।

श्री शङ्कराचार्य द्वारा स्थापित चार मठ बताये जाते हैं। उनके प्रधान चार शिष्य थे, उन चारों को उन मठों का आचार्य या मठाधीश बनाया गया। पहला शारदा मठ (द्वारिका में) इनके आचार्य हस्तमलक स्वामी बनाये गये। दूसरा गोवर्धन मठ (जगन्नाथपुरी) इसके आचार्य पद्मपाद स्वामी हुए। तीसरा ज्योतिर्मठ (बद्रीनाथ) इसके आचार्य तोटकस्वामी हुए और चौथा शृंगेरीमठ (रामेश्वर) इसके आचार्य सुरेश्वर स्वामी हुए। इस प्रकार इन चारों मठों की स्थापना श्री स्वामी शङ्कराचार्य के समय में ही हुई है और ये चारों आचार्य भगवान् शङ्कराचार्य के प्रधान और प्रसिद्ध शिष्य हैं जिनकी स्तुति शङ्कर सम्प्रदाय के मठ मन्दिरों में आज तक नित्य प्रति होती आ रही है।

श्री शङ्कराचार्य विरचित एक मठाम्नाय ग्रन्थ मिलता है। जिनमें चारों की व्यवस्था तथा नियम आदि का वर्णन है। प्रत्येक मठ के नाम, सम्प्रदाय, पद क्षेत्र, अधिष्ठातृ, देवी देवता, आचार्य तीर्थ ब्रह्मचारी की उपाधि, वेद, महावाक्य, गोत्र तथा

अधोनस्थ देशों के नाम आदि का पृथक्-पृथक् निर्णय है। इन चारों मठों में से तोसरा मठ ज्योतिर्मठ या जोशी मठ है। जो बद्रीनाथ के समीप अब भी इसी नाम का एक नगर है। यह उत्तर दिशा का मठ है। इसका दूसरा नाम श्रीमठ भी है। यहाँ की सम्प्रदाय का नाम 'आनन्द वार' है। यहाँ के संन्यासियों का पद 'गिर' 'पर्वत' और 'सागर' तीन हैं। क्षेत्र का नाम बद्रिकाश्रम, देवता नारायण, देवी पूर्णागिरि और आचार्य तोटक स्वामी हैं। अलकनन्दा यहाँ का तीर्थ है, ब्रह्मचारी की उपाधि आनन्द है तथा 'अयं आत्माब्रह्म, महावाक्य है। अथर्वेद है, भृगु गोत्र है और इसके अधीन कुरु (देहली) काश्मीर, काम्बोज, (काबुल, पंजाब) पांचाल अलीगढ़ से आगे) ये देश हैं। इसी तरह चारों मठों की व्यवस्थायें हैं।

समय के प्रभाव से या दैवयोग से ज्योतिर्मठ की परम्परा विक्रमीय सम्वत् १८३३ तक ठीक चलती रही। १८३३ में वहाँ कोई दण्डी संन्यासी नहीं रहा, अतः यह मठ छिन्न-भिन्न हो गया। इसीलिये आज लगभग १५० वर्ष से यह गद्दी आचार्य से रहित हुई पड़ी है, इसीलिये इस गद्दी की परम्परा मिलती तो है, किन्तु वह पूरी नहीं मिलती। विक्रमीय सम्वत् १५०० से १८३३ तक की मिलती है जिसमें २१ मठाधीश हुए हैं। इसलिये ज्योतिर्मठ की परम्परा से हम शङ्कराचार्य के समय का निर्णय नहीं कर सकते।

शारदा मठ की शृंखलाबद्ध आचार्य परम्परा मिलती है जो 'कल्याण' के वेदान्ताङ्क पृष्ठ ३२५ पर प्रकाशित हुई है। उसमें

यह हर्ष की बात है कि सम्वत् १९९८ वि० में स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज का ज्योतिर्मठ के पुनर्जागरण के लिये अभिषेचन किया। (प्रकाशक)

पहले आचार्य का नाम ब्रह्मस्वरूपाचार्य लिखा है। जिनकी अवधि युधिष्ठिर सम्वत् २६९१ लिखी है। इन्हीं का दूसरा नाम सुरेश्वराचार्य है जिनका आचार्यत्वकाल युधिष्ठिर सम्वत् २६४९ से २६९१ तक ४२ वर्ष बताया जाता है। इसकी पुष्टि उस ताम्र पत्र से भी होती है जो गुजरात के सुधन्वा नाम के किसी राजा ने शङ्कराचार्य को युधिष्ठिर सम्वत् २६६३ में (विक्रमीय सम्वत् ३८१ के पूर्व) दिया था।

एक दूसरे ताम्र पत्र में भी शारदा पीठ के प्रथम आचार्य श्री सुरेश्वराचार्य के आचार्यत्वकाल का युधिष्ठिर सम्वत् २६४९ में प्रत्यक्ष उल्लेख बताया जाता है। इसी प्रकार के कुछ प्राचीन कागज बड़ौदा राज्य के पुस्तकालय में मिले बताये जाते हैं जिन में शङ्कराचार्य का जन्म युधिष्ठिर सम्वत् २६६१ लिखा है। इन प्रमाणों से यही प्रतीत होता है कि श्री शङ्कराचार्य का जन्म विक्रमीय शताब्दि से ३-४ सौ वर्ष पूर्व ही हुआ होगा। आठवीं शताब्दि तो किसी तरह नहीं हो सकता।

हमारा यह विषय भी नहीं है कि श्री शङ्कराचार्य कब हुए ? हमारा आग्रह भी नहीं है कि वे विक्रमीय सम्वत् से प्राचीन ही होने चाहिये। यदि शङ्कराचार्य बीसवीं शताब्दि में भी हों तो भी वे हमारे लिये उतने ही मान्य हैं। अर्वाचीन या प्राचीन काल से हमारी मान्यता में कोई अन्तर नहीं पड़ता, किन्तु हमें तो यहाँ यही बताना है कि श्री बद्रीनाथ की प्रतिष्ठा श्रीशङ्कराचार्य द्वारा हुई और वह विक्रमीय शताब्दि से ३-४ शताब्दि पूर्व हुई। इसका एक कारण और भी है उसी समय देश में बौद्धों का साम्राज्य था। बौद्ध धर्म अपनी वाह्य उन्नति और आंतरिक अवनति की चरमसीमा तक पहुँच चुका था। उसी काल में शङ्कर का अवतार हुआ। कुछ लोगों ने स्वीकार किया है कि भगवान् बुद्ध से ६० वर्ष के बाद ही शङ्कराचार्य उत्पन्न हुए। इस विषय में एक

बात और भी ध्यान रखने की है। पौराणिक बुद्ध भगवान् में और गौतम बुद्ध में भेद है। पुराणों के मत से गौतम बुद्ध दस अवतार वाले बुद्ध नहीं हैं। दस अवतार में जिन बुद्ध भगवान् का उल्लेख है वे तो कीटक देश में उत्पन्न हुए उन्होंने असुरों द्वारा यज्ञ का दुरुपयोग होते देखकर ब्राह्मण वेष में छिपे हुए असुरों को मोहित करने के लिये यज्ञ आदि कर्मकाण्डों का विरोध किया। उनके बाद गौतम बुद्ध पैदा हुए जिन्होंने स्वयं बुधत्व प्राप्त किया तथा बौद्धधर्म का प्रचार तथा प्रसार किया। पश्चिमी लेखक दोनों बुद्धों को एक मानकर ही तरह-तरह की भ्रमोत्पादक शङ्काएँ करते हैं। विक्रमीय शताब्दि के ५००-६०० वर्ष पूर्व बौद्धधर्म की उन्नति अत्यधिक हो गई थी, उसके १५० या २०० वर्ष बाद ही शङ्कराचार्य का प्रादुर्भाव हुआ, उन्होंने बौद्धधर्म को भारतवर्ष से निर्मूल करने के लिये दैवी शक्ति का प्रयोग किया। दैवी शक्ति से उन्होंने यहाँ के राजाओं को वश में करके हिन्दू वैदिक धर्म का प्रचार किया। स्थान-स्थान पर वैदिक धर्म की उन्नति के लिये मठ बनाये। मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया, उनकी सेवा पूजाके निमित्त राजाओं को प्रेरणा करके उनसे मंदिर मठों में गाँव बसवाये, ऊपर हम शारदा पीठ के ताम्रपत्रों का उल्लेख कर चुके हैं।

इसी प्रकार चार ताम्रपत्र अब तक पांडुकेश्वर मन्दिर में रखे हुए हैं। उनके अक्षर तो पाली भाषा से मिलते जुलते हैं, किन्तु भाषा संस्कृत है (१) पहिला ताम्र पत्र पद्मटदेव कुशली का लिखाया हुआ है जो टंकणपुर का राजा था। जो वर्द्धमान विजयराज सम्वत् २५, ज्येष्ठ वदी ५ को लिखा गया है। (२) दूसरा श्री मद् ललित सूरदेव कुशली का है, जिसकी राजधानी कार्तिकेयपुर थी। वह बुद्धिमान विजयराज सम्वत् सर २२ का है। (३) तीसरा पत्र भी श्रीमद् ललित सूरदेव कुशली का ही

लिखा हुआ है, जो वर्द्धमान विजयराज सम्वत् २१ माघ वदी ३ का लिखा है। इसमें श्यामादेवी की भूमि दान दी गई है। (४) चौथा पत्र राजा सुभिक्षराज का है, जिसकी राजधानी सुभि-क्षपुर थी यह प्रवर्द्धमान विजयराज सम्वत्सर ४ का लिखा हुआ है। इन पत्रों की भाषा शैली वही बुद्ध कालीन है।

पहिले बड़े-बड़े राज्य बहुत ही कम होते थे। १०-१०, २०-२० गाँव के सभी राजा होते थे। वे सभी स्वतन्त्र हुआ करते थे। पाँडवों ने केवल पाँच ही गाँव का राज्य माँगा। महाभारत में आता है कि अमुक वीर ने एक दिन में इतने हजार राजाओं को मारा। इससे पता चलता है कि लाखों राजा उस समय होंगे। धर्म से हमेशा धन बढ़ता है। हमारे देखते-देखते ही धर्म का कितना ह्रास हुआ है पहिले २-२, ४-४ गाँव के ठाकुर भी एक दो गाँव सन्दिर देवालय में अवश्य लगा देते थे। अब भी पुराने राजाओं के लगाये कितने गाँव मठ मन्दिरों में लगे हुए हैं। जब राजाओं का पेट नहीं भरता तो वे गाँव क्या लगावेंगे। "धर्मो रक्षित रक्षितः।"

ये कुशल वंश के राजा कहाँ के थे, ये टंकणपुर, कार्तिकेयपुर सुभिक्षपुर किस जगह राज्य करते थे, अब इनका कुछ पता नहीं। यह प्रवर्द्धमान सम्वत्सर कब प्रचलित था, विक्रमीय सम्वत्सर से कितना पूर्व था। इन सब बातों का अब कोई पता नहीं चलता, किन्तु इन ताम्रपत्रों से इतने अनुमान लगाये जा सकते हैं।

(१) ये पत्र पाली अक्षरों और संस्कृत भाषा में लिखे गये हैं। इससे यही अनुमान होता है कि पाली भाषा अँग्रेजी की तरह देश व्यापी हो चुकी थी। उसका प्रभाव सर्वत्र फैल गया था। किन्तु वैदिक ब्राह्मणों का आग्रह संस्कृत की ही उन्नति में था। इसलिये वैदिक धर्म को मानने वाले राजा संस्कृत में ही दान पत्र लिखते थे। इसलिये वह बौद्ध काल में ही लिखे गये होंगे।

(२) इन राजाओं का नाम वैदिक आर्य राजाओं से नहीं है। ऐसा मालूम पड़ता है कि ये कोई किरात, हूण, खस आदि अनार्य जाति के राजा पहिले रहे होंगे जैसा कि इनके नाम से प्रतीत होता है। सलोणादित्य, उच्छटदेव, देशटदेव, पद्मटदेव, सुभिक्षदेव आदि-आदि। बौद्ध काल में ये लोग बौद्ध हो गये होंगे। जब श्री शङ्कराचार्य के द्वारा बौद्ध इस देश से निकाले गये तो लोग वैदिक धर्मावलम्बी बन गये होंगे। इसलिये इनके नाम के आगे परम भागवत्, परम भट्टारक, परम माहेश्वर आदि लगा हुआ है।

(३) पहिले गढ़वाल में सैकड़ों राज्य थे, छोटी-छोटी ठकुराई थीं, जो सब एक दूसरे से पृथक् थे। टिहरी नरेश ने इन सब राजाओं को जीतकर एक गढ़वाल राज्य बनाया। अल्मोड़ा की ओर तथा पंजाब में अब भी ऐसी सैकड़ों छोटी-छोटी रियासतें हैं। बदरीनाथ यात्रा में जो ठंगिनी चट्टी आती है सम्भव है वही टंकणपुर हो। और कार्तिकपुर भी कोई गढ़ हो केदारनाथ की ओर। अब इस नाम के कोई गाँव नहीं हैं। यह तो निश्चय है कि ये कोई श्रीनगर से ऊपर के ही छोटे-छोटे राज्य रहे होंगे।

(४) इन सब ताम्रपत्रों में प्रवर्द्धन विजयपुर सम्वत्सर आता है। इससे यह तो निश्चय ही है कि तब विक्रम सम्वत्-सर का या तो जन्म नहीं हुआ था या इतना अधिक प्रसार नहीं था। यह बात मानी नहीं जा सकती कि विक्रम सम्वत् होता तो उसका उल्लेख न करते। क्योंकि जो दूसरे मठों की सूची है उसमें विक्रम सम्वत् ९ तथा २५ तक का उल्लेख पाया जाता है। फिर ये प्रवर्द्धमान कौन थे। जैनियों के महावीर प्रवर्द्धमान कहलाते थे उनका सम्वत् महानिर्वाण कहलाता है। सम्भव है यही वही हो जैसे हम लोग हिन्दू आर्य धर्म को मानने वाले भी

ईसा के सम्वत् का अधिक चलन होने से व्यवहार करते हैं। उसी तरह उन दिनों प्रवर्द्धमान सम्वत् का प्रचार इधर से ही आरम्भ हुआ होगा। बहुत सम्भव है ये लोग पहिले जैन धर्मी ही रहे हों क्योंकि बौद्ध धर्म और जैन धर्म दोनों ही साथ-साथ बढ़े। दोनों ही "अहिंसा परमो धर्म" को मानने वाले हैं। हिन्दू होकर भी उन्होंने प्रचलित सम्वत् का प्रयोग किया। जैनी लोग भी बदरीनाथ को अपना तीर्थ मानते हैं और बहुत से जैनी अब भी प्रति वर्ष बदरीनाथ की यात्रा के लिये आते हैं।

इसलिये इस ताम्रपत्रों से भी यही प्रकट होता है। विक्रमीय शताब्दि से ५००-६०० वर्ष पहिले ही श्री बद्रीनाथ के मन्दिर का जीर्णोद्धार और श्रीबदरीनाथ के मन्दिर की पुनः प्रतिष्ठा हो चुकी थी। ये ताम्र पत्र बहुत बड़े हैं इसलिये इनमें से एक पत्र को अनुवाद सहित यहाँ देते हैं।

पांडुकेश्वर के ४ पत्रों में से

एक हिन्दी की अनुवाद सहित लिपि

कल्याण हो, श्रीमान् कार्तिकेयपुर में अनेक देव दैत्य एवं मानवों के मस्तक भक्तिभाव से जिस विभु के श्रीचरणों में झुकने से उनके मुकुटों के किरीट के अग्रभाग में जटित मणियों की अत्यन्त प्रदीप्त किरण माला को पान कर जिनके अरुण वर्ण के पादपद्म अति निर्मल केसर राजि के सदृश निःशेष तमोपहारी तेज

मूल

स्वस्ति श्रीमत्कार्तिकेयपुतात्स कलामरदिति तनुजमनुजविभु-भक्ति भावभवभारोन्नमितोत्तमाङ्ग संगिविकट मुकुट किरीट कोटि-शाऽवेक नाना नायक प्रदीपदीप्त दीधितिपान मद रक्त चरण भुजोपार्जित्याजित्यर्जितरिपुतिमिर लब्धोदय प्रकाशः दयादिद्वि-कमलामलविपुलहु किरण केसरासार सरिताशेपविशेषमोषिघन-तमतेऽजहः स्वर्धुनीधौत जटाजूटस्य भगवतो धुर्जटेः प्रसादान्निज

की वृष्टि-सी करते हुए हैं, जिनका जटाजूट सुरसरि मंडित है, उन्हीं भगवान् धूर्जटि की कृपा से तथा अपने बाहुबल से शत्रुरूपी अन्धकार को जीतकर जिन्होंने अभ्युदय स्वरूप प्रकाश प्राप्त किया है जिनका आचरण दया, अनुकूलता, शील, शौच, शौर्य, उदारता, गाम्भीर्य एवं मर्यादा पूर्ण है, जिनका शरीर आश्चर्य-जनक श्रेष्ठ कार्यों तथा गुणगणों से अलंकृत है, जो महान् सत्कर्म सन्तति को प्रकट करने वाले हैं, जिनकी कीर्ति सतयुग के नरेशों के समान ललित है, श्री नन्दा भगवती के चरण कमलों की शोभा से सनाथ मूर्ति उन श्री निम्बर के—उन्हीं के चरणानुगामी रानी महादेवी श्री नाभूदेवी में उत्पन्न परम शिवभक्त, परम ब्रह्मण्य हो तीक्ष्ण कृपाण की धारा से मत्त हस्ति कुम्भों छेदन से प्राप्त मुक्ता समूहों के समान यश वाले उन्नत पताका के द्वारा तारागणों का उपहास करने वाले परम भट्टारक महाराजाधिराज

ण्य सत्यसत्वशीलशौचशौर्योदार्य गाम्भीर्य मर्यादार्य वृत्ताश्चर्य-कार्यवर्यादिगुणगणालंकृतशरीरः महा सुकृति संतानबीजावतारः कृतयुगान्नभूपाललितकीर्तिः नन्दाभगवतीचरणकमलासनाथ-मूर्तिः श्रीनिम्बरस्तस्यतनयस्तत्परदानुध्यातोराज्ञी मीमहादेवी मी नाभूदेवी तस्यामुत्पन्नः परममाहेश्वरा परमब्रह्मण्यः शितकृपाण-धारोत्खातमत्तेकुम्भाकृष्टोत्कृष्टमुक्तावलीयशः पताकोच्छ्राय हसिततारागणः परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वरः मी सदिष्टगणदेवस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातो राज्ञी मीमहादेवी मी देशादेवा तस्यामुत्पन्नः परममाहेश्वरः परमब्रह्मण्यः कलिकलंक-पंकान्तैकमग्न धरण्युद्धारधारितधौरेयवरवराहचरितः सहजमति-विभवविमुनिभूतिस्थगितारातिचक्रप्रपापपदहमः अतिवैभवसम्भा-रारम्भसंभृतभीमभ्रूकुटिलकेशरिसटाभीतभीतारातीभकलभभरः असुरणकृपाणबाणगणप्राणगणहरण कृष्टोत्कृष्टसर्लाल जयलक्ष्मीः

परमेश्वर स्वरूप श्रीमा इष्टदेवगण हुए। उनकी रानी श्री महादेवी श्री देशादेवी से उन्हीं के चरणानुगामी पुत्र परम शिवभक्त कलियुग के कलंक पंक के अत्यन्त डूबी हुई पृथ्वी के उद्धार के लिये श्रेष्ठ वाराह चरित को धारण करने वाले, स्वाभाविक बुद्धि के व्यापक वैभव से शत्रु समूह की प्रताप-दावाग्नि को बुझा देने वाले, अत्यन्त वैभव के एकत्रीकरण के आरम्भ में भयंकर भृकुटि एवं कुटिल केशधारी, सिंह सदृश निर्भय शत्रुसमुदायरूपी हस्थि समूह को भीत करने वाले, युद्ध में तलवार एवं बाण से शत्रु-प्राण के साथ बलपूर्वक खेल में ही जयलक्ष्मी को खींच लेने वाले,(मृत शत्रु समूह के) प्रथम समागम आलिंगन, अवलोकनादि की विलक्षणता से क्लान्त देवांगना वृन्द के सुन्दर हाथों से गिरते हुए कंकणों के कुसुम समूह से आच्छादित मुकुट होकर कीर्ति बीज को बढ़ाने वाले, पृथु के समान बाहुदण्ड में धनुष धारण कर बलपूर्वक वश में किये हुए पर्वतों पर गोचारण-द्वारा उनको मानो निश्चय बनाये हुए परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर स्वरूप श्रीमान् ललितशूरदेव कुशल से रहें। जिन्होंने

प्रथमसमालिंगसावलोकनवैलक्ष्यसखेदसुरसुन्दरी विभूतिकरन्खलद्वलयकुसुमप्रकरप्रकीर्णवतंससंवर्द्धितनीतिबीजः पृथुरिवदोर्दण्डसाधिधनुर्मंडलबलाष्टम्भवशवशीकृत गोपालनानिश्चलीकृतधराधरेन्द्रः परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वरः मीमल्ललित शूरदेव कुशलीमीमत्कीर्तिपुर विषये समुपागतान् सर्वानेवविनिगोगस्थान् राजराजन्यकराजपुत्रराजामात्यक्षामन्त महासामन्त. ठक्कुरमहामनुष्यमहाकर्ताकृतिकमहाप्रतीहार महादण्नायक महाराजप्रमातारशरभंगकुमारामात्योपरिकरदःसाध्यसाधतिकदशापराधिकचौरोद्धरणिक शौल्किकगौल्मिक तदायुक्तकविनियुक्तक पट्टकापचारिकाशेषभंगविकृत हस्त्यश्वोष्ट्रबताध्यावृतक दूतप्रेषणिक

कीर्तिपुर में एकत्र हुए सभी पदों पर नियुक्त राजा, महाराजा, राजपुत्र, राजमन्त्री, सामन्त, महासामन्त, ठक्कुर, महामनुष्य, महाकर्ता, कृतिक, महापतीहार, महादण्डनायक, महाराज के निजी मन्त्री, युद्धमन्त्री, कुमारों के मन्त्री, उपमन्त्री, कठिन कार्यों के साधक, अपराधियों का ज्ञान रखने वाले, चोरों को पकड़ने वाले कर वसूल करने वाले, वनौषधिज्ञाता, योग्यायोग्य कवियों के निर्णायक, व्रण-चिकित्सक, हड्डी आदि बैठाने वाले, हाथी ऊँट, घोड़े प्रभृति सेना का विभाजन करने वाले, दूत भेजने वाले, दण्ड देने वाले, जल्लाद शीघ्रगामी दूत, पैदल खड्गयुद्ध कर्ता, राजपूत, द्रव्याधीश, वस्तुपति, धातुपति, अश्वपति, मण्डलाधीश-योधा, दुर्गपति, मार्गल, दुर्गपाल, ग्रामपाल, नगरपाल, प्रान्तपाल, घोड़े-भैंस तथा गाय के बच्चों का संरक्षण करने वाले, भट्टमहत्तम, अहीर वणिक् श्रेष्ठि पुरवासी, इस प्रकार अठारहों प्रकार की प्रजा के अधिष्ठताओं खश, किरात, द्रविड़, गौड़, हूण, आंध्र, भेद आदि के प्रधानों को लेकर चांडाल पर्यन्त सभी राजवासियों, प्रजाजनों, शूर, वन्दी-प्रभृति सेवकों तथा दूसरों का भी जिनका नाम, ऊपर लिया गया है अथवा नहीं लिया गया है, अपने चरण

दण्डिक दण्डपाशिक गमागमिक खाड्गिकरिभत्वरमाणक राजस्थानीय विषयपति भोगपतिरपत्यश्वपति खंडरक्षप्रतिशूरिक स्थानाधिकृत वर्त्मपाल कीट्टपाल घाटपाल क्षेत्रपाल प्रांतपाल किशोरवडवागोमहिष्यधिकृत भट्टमहत्तमाभीर वणिक् मेष्टिपुरोगान् साष्टादशप्रकृत्यधिष्ठानीयान् खशरिताद्रविड़ कलिंगगौडहूणणोन्ध्रमेदेन्द्र चांडालपर्यन्तान् सर्व संवासान् समस्त जनपदान् भटभाटसेवकानीनन्यांश्च कीर्तितान कीर्तितानस्मत्पादपद्मोपजीविनः प्रतिवासिनश्च ब्राह्मणोंत्तरान्थार्ह मानयति बोधयति समाज्ञापयत्यस्तुवः संविदितं उपरिसंसूचितविषये पण्पलसारि प्रतिबद्धेन्द्रवाक परिभुज्यमानकस्थानं मवा मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धये

कमलों में जीविका चलाने वाले एवं इतर देशीयों का भी ब्राह्मणों को श्रेष्ठ मानकर यथायोग्य सम्मान करते हैं तथा सब को बोधं कराते हुए ऊपर संसूचित विषय में आप सबको आदेश करते हैं कि—मैंने माता-पिता के तथा अपने भी पुण्य तथा यश की अभिवृद्धि के लिये पष्पाल तथा सारि नामक ग्राम जो प्रतिबद्धे-न्द्रवाक के अधिकार में है, वायु के द्वारा हिलाये हुये पीपल पत्र के-समान करंवत चंचल संसार को देखकर, पानी के बुलबुले के समान आयु को सारहीन जानकर तथा हाथी के बच्चे के कानों के समान चपल लक्ष्मी को समझकर पारलौकिककल्याण के लिये संसार समुद्र को पार करने के लिये पुण्य दिवसों संक्रान्तियों के अवसर पर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप चन्दन, वलि, हविष्य, नृत्य, गायन, वाद्य आदि यज्ञ के करने के लिये, टूटे हुए अंश को सुधारने के लिये, सेवकों के पोषक के लिये तथा नवीन कर्म करने के लिये गरुड़ाश्रम में भट्ट श्री पुरुष के द्वारा प्रतिष्ठापित भगवान् श्री नारायण भट्टारक को सम्पूर्ण अधिकार छोड़कर दिये जाते हैं। (इन ग्रामों के) प्रजा एवं सामग्री से युक्त,हमारे सैनिकों के लिये अप्रवेश्य, कुछ भी कर से रहित, किसी प्रकार की हानि

पवनविधटिताश्वस्थपत्रकंचलतरंगजीवलोकनवलोक्य जलबुद्ध-दाकारमसारंचायुर्यवष्टाव गजकलभकर्णाग्रचपलतांच लक्ष्मीं ज्ञात्वा परलोक निःश्रेयसोर्थं संसारार्णावतरणार्थं पुण्येऽहनि विषु-संक्रान्तौ गन्धपुष्पधूपदीपोपतेपेनवलिचरु नृत्यगेयवाद्यसत्रादि-प्रवर्तनाय खंस्फुटितसंस्करणाय भृत्यापादमूलभूषणाय च अभि-नवकर्मकरणाय च गरुडासमे भट्टमीपुरुषेण प्रतिष्ठापित भगवते मीनारायणभट्टारकाय शाशनदानेन प्रतिपादितं प्रकृतिपरिहारयुक्त-मचाटभटप्रवेशमकिंचित्प्रगाह्यमनाप्तछेद्यमाचन्द्रार्कक्षितिस्थिति सम कालिकं विषयादुद्धृतपिंड स्मसीमागोचरपर्यन्तं सवृक्षारामोद्भेद प्रस्रवणोपेतं देवब्राह्मणभुक्तभुज्यमानवर्जितं यतः सुखं पारंपर्यायेण

पहुँचाये जाने के अयोग्य, जब तक सूर्य, चन्द्र एवं पृथ्वी की स्थिति रहे तब तक के लिये, इस दान से हमारे सपिंडों का उद्धार करते हुए अपनी सीमा तक के वृक्ष, उपवन, झरनों सहित ब्राह्मणों द्वारा भोगे जाते तथा दूसरों के उपभोग रहित ये रहें। जिससे परम्परागत (उपरोक्त ब्राह्मण वंश को) इनके सुखों का उपभोग हो। ऊपर निर्दिष्ट व्यक्ति कुल को छोड़कर कोई भी दूसरा लेने देने तथा विरुद्धाचरण का कोई तनिक भी उपद्रव न करे ! नहीं तो आज्ञा भंग से महान् द्रोह होगा। उपरोक्त ब्राह्मण देव से सामीप्य से बद्रिकाश्रम के तपोवन के निवासी ब्रह्मचारियों

परिभुञ्जताश्चास्यीपरिनिर्दिष्टैरन्यतरैरवधारणविधारणा परिपन्थ-नादिकोपाद्रवोमनागपि न कर्तव्यऽतोन्यथाज्ञाहानौ महान्द्रोहः स्यादिति निवेशितस्य देवस्य बदरिकाश्रमीय तपोवन प्रतिबद्धब्राह्म-चारिणं सत्किंचित्यार्थं यत्कर्तव्यं तत्सर्वं ब्रह्मचारिभिः करणीयम् प्रवर्द्धमान विजयराज्यसंवत्सरे द्वाविंशतिमे संवत् २२ सुदि कार्तिक १५ दूतकोऽत्र महादानाक्षपटलाधिकृत श्रीवीजक महासंधि विग्रहाक्षपटलाधिकृत-श्रीमदार्यठवचनारत्कोत्कीर्णं श्रीगंगभद्रेण।

बहुभिर्वसुधाभुक्ता राजभिः सगरादिभिः।
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्यतस्य तदा फलम्॥
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत् वसुन्धराम्।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्टाया जायते कृमिः॥
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः।
आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरकेविशेत्॥
गामेकां च सुवर्णं च भूमेरप्येकनंगलम्।
हर्ता नरकमाप्नोति यावदाभूति संप्लवः॥इति॥

कमलदलाम्बु विन्दुलोलां श्रियमनुचिन्त्य मनुष्य जीवितं च सकलमिदमुदाहृतं च बुद्ध्वा नहि पुरुषैः परकीर्तयो विलोप्याः॥

१—ये सब पदाधिकारियों की उपाधियाँ हैं।

को जो कुछ श्रेष्ठ कर्त्तव्य वहाँ करने योग्य हैं, वे ब्रह्मचारियों को करने चाहिये।

प्रवर्द्धमान विजयराज सम्वत्सर २२ कार्तिक शुल्क १५ को यहाँ (इस ताम्र पत्र को) महादानाध्यक्ष एवं श्री बीजक महासन्धि गृहाध्यक्ष श्रीमान् आर्यठ की आज्ञा से गंगभद्र ने इसे खोदा।

सागर प्रभृति बहुत से राजाओं ने पृथ्वी का उपभोग किया है। यह भूमि जब-जब जिसकी रही है, तब-तब उसको (भूमि-दान का फल हुआ है।

जो अपनी दी हुई या दूसरे की दी हुई भूमि का हरण करता है वह श्वान विष्ठा का हजार वर्ष कीड़ा होता है। भूमिदाता साठ हजार वर्ष स्वर्ग में रहता है और उसको हरण करने वाला तथा अनुमोदन कर्त्ता उतने ही वर्ष नर्क में। एक गौ, स्वर्ण तथा एक अंगुल भूमि का हरण कर्त्ता प्रलय पर्यन्त नरक में रहता है।

लक्ष्मी तथा मनुष्य-जीवन को कमल के पत्ते पर पड़े जलबिन्दु समान चंचल सोचकर तथा इस सम्पूर्ण संसार को नश्वर पुनरावर्ती जानकर किसी भी पुरुष को दूसरे को कीर्ति का लोप नहीं करना चाहिए।

२३—श्रीशंकराचार्य्य के पश्चात्

विचिंत्यसर्वतोमहीं विचार्यतां तप्तस्थलीम् ।
विशालनामिकां पुरीं समन्ततः सुमङ्गलम् ॥
प्रिगांमहात्मनां निजां जगामयः संसिद्धदो ।
वदर्यधींश्वरः प्रभुः करोतु मङ्गल सदा ॥

प्रचलित लोक युक्तियों से, पुराणों से, ऐतिहासिक सामग्रियों से यही सिद्ध होता है कि श्री शंकराचार्य्य द्वारा ही श्रीबदरीनाथ जी के मंदिर को पुनः प्रतिष्ठा हुई। श्री शङ्कराचार्य्य का समय विक्रमीय सम्वत् के पूर्व हो या पश्चात् इस विषय में हमें कोई आग्रह नहीं। किन्तु प्राचीन प्रमाणों से तो यही सिद्ध होता से कि उनका प्राकट्य विक्रमीय शताब्दी से ४,५, सौ वर्ष पूर्व ही हुआ था। कभी भी हो,इतना तो निश्चय है कि तब तक श्री बदरीनाथ की वर्तमान वैदिक रीति से पूजा नहीं होती थी। यह सम्भव है, कि तिब्बत के बौद्ध लोग इसी मूर्ति की बुद्ध रूप में पूजा करते हों। यह एक आश्चर्य की बात है कि श्री बद्रीनाथजी की मूर्ति की हिन्दू, जैनी, बौद्ध सभी समान रूप से पूजा करते हैं हिन्दुओं के लिये तो उनके इष्टदेव ही नर नारायण हैं। बौद्ध लोग इन्हें बुद्ध भगवान् मानकर पूजा करते हैं। अभी तक तिब्बत के लामाओं को ओर से प्रतिवर्ष बद्रीनाथ की भेंट के लिये चाय

जिन भगवान् ने समस्त पृथ्वी को खोजकर विशालापुरी को ही तपस्थली बनाया जो कि चारों ओर से मङ्गलमयी है और महात्माओं को जो अत्यन्त ही प्रिय है। उस अपनी विशालापुरी में जो सिद्धि देने वाले भगवान् जाकर तप करने लगे वे ही बदरीपुरी के अधीश्वर प्रभु सदा मङ्गल करें।

चँवर और ऊनी कपड़ा आदि आते हैं और उन्हें यहाँ से प्रसाद भेजा जाता है। हम सब कैलाश गये थे। तब रास्ते में हम थोलिंग मठ में दो तीन दिन रहे। यह तिब्बत का एक बहुत प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान तथा राज्य का एक प्रान्त है। वहाँ पर एक बड़ा भारी बौद्ध मठ है। उसमें असंख्यों भाँति-भाँति की मूर्तियाँ हैं। बुद्ध भगवान् की बड़ी विशाल मूर्ति है। यहाँ पर मैं मठ की विशालता, मूर्तियों की अनुपमता तथा लामाओं की पूजा पद्धति तथा श्रद्धाभक्ति के सम्बन्ध में कुछ न कहूँगा, क्योंकि यह एक विस्तृत और बड़ा ही रोचक विषय है। यहाँ मैं इतना ही बताना चाहता हूँ। कि यहाँ बुद्ध भगवान् की मूर्ति को लामा आदि बद्रीनाथ बताते हैं। उनका कहना है कि जो मूर्ति बद्रीनाथ में विराजमान है, उसकी पहिले यहीं पूजा होती थी। पीछे स्वयं बद्रीनाथ घोड़े पर चढ़कर बदरीपुरी चले गये। हमारे पथ प्रदर्शक मारचे ने रास्ते में बदरीनाथजी के घोड़े के एक पत्थर पर उभड़े हुए खुर भी दिखाये और उनकी वन्दना भी की। माणा के सामने वाले पहाड़ में स्पष्ट एक घोड़े की आकृति दिखाई देती है। माणा वाले कहते हैं यह वही श्यामकरण घोड़ा है और इसी पर चढ़कर बदरीनाथ फिर चले जायेंगे।

बद्रीनाथ में जो लामा आते हैं वे बद्रीनाथ के दर्शन करते हैं, भेंट चढ़ाते हैं, इन सब बातों से यही प्रकट होता है, कि बद्रीनाथ की बौद्धकाल में बुद्ध भगवान् की मूर्ति की पूजा होती रही होगी। वर्तमान मूर्ति की आकृति बनावट एक दम बुद्ध भगवान् की ही-सी है। चार भुजाओं की तो कल्पना करते हैं मूर्ति स्पष्ट दुभुजी है और देखने से एक दम बौद्ध मूर्ति-सी प्रतीत होती है। इसी पर से आधुनिक विचार वालों का कहना है कि यह पहले बुद्ध मूर्ति थी। भगवान् शङ्कराचार्य ने राजाओं की सहायता से बौद्धों को तिब्बत की ओर भगा दिया वे मूर्ति

छोड़कर भग गये, तब श्री शङ्कराचार्य ने उसी मूर्ति को विष्णु मूर्ति मानकर उसकी पुनः प्रतिष्ठा करा दी। इसीलिये बौद्ध धर्मावलम्बी तथा वैदिक धर्मावलम्बी दोनों ही उस मूर्ति का समान रूप से आदर करते हैं।

इसी तरह जैनी लोग भी बदरीनाथजी को अपना तीर्थ कर मानते हैं। मैंने स्वयं अपनी आँखों से जैनियों को बड़ी-बड़ी दूर से यहाँ आकर दर्शन करते हुए देखा है। इसीलिये यह मूर्ति न तो नवीन ही है न श्री शङ्कराचार्य से बाद की ही है। मेरा अनुमान है पहिले मूर्ति के आँख नाक मुख आदि सभी चिन्ह रहे होंगे। हजारों वर्ष से पूजा होते-होते वे शिलारूप में ही अब शेष रह गये हैं।

एक बात और भी सोचने को है। वर्तमान मन्दिर बहुत प्राचीन नहीं है। लोगों का कहना है कि यह पन्द्रहवीं शताब्दी में बना है, किन्तु मेरे मत से तो वर्तमान मन्दिर और भी अर्वाचीन है। पहिले श्री बदरीनाथ की पूजा तप्त कुण्ड के समीप गुफा में होती रही होगी। नारद पुराण में स्पष्ट लिखा है। तप्तकुण्ड के समीप ही नारायणीय शिला है, जिसकी स्थापना नारद कुण्ड से निकाल कर की गई है। ज्यों-ज्यों बदरीनाथजी की प्रसिद्धि हुई त्यों-त्यों उनकी पूजा पद्धति में वृद्धि होती गई और मन्दिर आदि बनते गये तथा गाँव आदि पूजा के लिये लगाये गये। ऐसी भी प्रसिद्धि है कि इस वर्तमान मन्दिर को श्रीरामानुजीय सम्प्रदाय के स्वामी वरदराजाचार्य की प्रेरणा से गढ़वाल नरेश ने बनवाया था। मन्दिर बन जाने के अनन्तर इन्दौर की सुप्रसिद्ध महारानी अहल्याबाई के धन तथा गढ़वाल नरेश के प्रबन्ध से सुवर्ण की छतरी बनवाई गई। इन सभी बातों से प्रतीत होता है कि पहिले तप्तकुण्ड के समीप ही गुफा में पूजा हुआ करती होगी।

पहिले यह मन्दिर भी शङ्कराचार्य के ज्योतिर्मठ के मठाधीशों

के ही प्रवन्ध में रहता था। वे ही इसकी पूजा आदि की व्यवस्था करते थे। हम बता चुके हैं कि पूर्वकाल में यहाँ छोटे-छोटे सैकड़ों राज्य थे। उन्हीं किसी राजा के अधीन विष्णु गङ्गा के समीप का प्रान्त रहा होगा जैसा कि पांडुकेश्वर के ताम्रपत्रों से प्रकट होता है। ये राजा बहुत ही छोटे दस-बीस पचास गाँव के अधिपति होते थे उन्होंने कुछ गाँव ज्योतिर्मठ के शङ्कराचार्य को सौंप दिये होंगे। तब से ज्योतिर्मठ के शङ्कराचार्य ही इस मठ के भी प्रवन्धक व्यवस्थापक हुए। जब पन्द्रहवीं शताब्दी में गढ़वाल के महाराज अजयपाल ने इन सब छोटे बड़े राजा, थोकदार तथा ठाकुर आदि को जीता तब यह विशाल गढ़वाल राज्य के अन्तर्गत हो गया। महाराज अजयपाल पँवार वंश के ३७ वें महाराज हैं। उनसे पहिले ज्योतिर्मठ की क्या व्यवस्था थी, कौन-कौन वहाँ के मठाधीश हुए, उनकी वंशावली शारद पीठ, काँची मठ आदि की भाँति प्राप्त नहीं होती। यह निश्चित है कि इस पीठ के आचार्य केरल प्रान्त के नम्बूद्रि ब्राह्मण ही होते थे। वे लोग दक्षिण से आकर यहीं रहते थे। जो शङ्कराचार्य होते थे वे तो दण्डी संन्यासी ही हुआ करते थे। बहुत से शिष्य ब्रह्मचारी उनके समीप रहा करते थे। वे अपने यहाँ के रसोइया, पुजारी तथा और भी मुख्य-मुख्य कर्मचारियों को दक्षिण से ही बुलाकर रखते थे। वे सभी नम्बूद्रि ब्राह्मण होते थे। जैसा कि श्री वृन्दावनजी के रंगजी आदि के मन्दिरों में अब भी वैसी ही प्रथा है। सभी जगह का यह नियम है, जो मठाधीश जिस देश का होगा वह कर्मचारी भी अपने स्वभाव के अनुकूल अपने देश का ही रखेगा।

× × × ×

पन्द्रहवीं शताब्दी से ज्योतिर्मठ के मठाधीश या श्रीबद्रीनाथ मन्दिर के महन्तों की सूची प्राप्त होती है। वह इस प्रकार है:—

सं०	नाम	मठाधीश के रहने की अवधि		वर्ष सं०
१	बालकृष्णं स्वामी	१५०० से	१५५७	५७
२	हरिब्रह्म स्वामी	१५५७ "	१५५८	१
३	हरिस्मर्ण स्वामी	१५५८ "	१५५६	८
४	वृन्दावन स्वामी	१५६६ "	१५६८	२
५	अनन्तनारायण स्वामी	१५६८ "	१५६९	१
६	भवानन्द स्वामी	१५६९ "	१५८३	१४
७	कृष्णानन्द स्वामी	१५८३ "	१५९३	१०
८	हरिनारायण स्वामी	१५९३ "	१६०१	८
९	ब्रह्मानन्द स्वामी	१६०१ "	१६२१	२०
१०	देवानन्द स्वामी	१६२१ "	१६३६	१५
११	रघुनाथ स्वामी	१६३६ "	१६६१	२५
१२	पूर्णदेव स्वामी	१६६१ "	१६८७	२६
१३	कृष्णदेव स्वामी	१६८७ "	१६९६	९
१४	शिवानन्द स्वामी	१६९६ "	१७०३	७
१५	बालकृष्ण स्वामी	१७०३ "	१७१७	१४
१६	नारायण उपेन्द्र स्वामी	१७१७ "	१७५०	३३
१७	हरिश्चन्द्र स्वामी	१७५० "	१७६३	१३
१८	सदानन्द स्वामी	१७६३ "	१७७३	१०
१९	केशव स्वामी	१७७३ "	१७८१	८
२०	नारायण तीर्थ स्वामी	१७८१ "	१८२३	४२
२१	रामकृष्ण स्वामी	१८२३ "	१८३३	१०

यहाँ तक तो ज्योतिर्मठ के मठाधीशों की परम्परा ठीक-ठीक क्रमबद्ध मिलती है। १८३३ सम्वत् से ज्योतिर्मठ में कोई शङ्कराचार्य न रहा। तब से भगवान् बद्रीविशाल की पूजा का अधिकार रावलों के हाथ में आया। रावल शब्द राजा का पर्यायवाची शब्द है। राजपूताने में अब भी अधीनस्थ राजा राव या रावल

कहाते हैं। सम्वत् १८३३ के पश्चात् ज्योतिर्मठ को गद्दो के अधिकारी "आचार्य" न कहा कर रावल कहलाये जाने लगे। इसकी एक कहानी है।

जब १८३३ में आचार्य रामकृष्ण स्वामी का शरीरान्त हुआ, तब दैवयोग से न तो वहाँ कोई दूसरा संन्यासी ही था और न कोई ब्रह्मचारी ही। यदि कोई वहाँ ब्रह्मचारी होता तो नियमानुसार वह संन्यास लेकर अधिकारी बन सकता था। यह भी एक प्रथा चली आ रही थी कि अधिकारी केरल प्रान्तीय नम्बूद्री ब्राह्मण ही हो। उस समय रसोइया को छोड़कर दूसरा नम्बूद्रि ब्राह्मण वहाँ कोई था ही नहीं। संयोग की बात कि गढ़वाल नरेश महाराजा प्रदीप शाह (पँवार वंश के इक्यावनवें राजा थे) उन दिनों तीर्थयात्रा करने के लिये पुरी में पधारे हुये थे। उनके सामने ही यह प्रश्न उपस्थित हुआ। बद्रीनाथ की पूजा बन्द नहीं हो सकती थी। संन्यासी कोई वहाँ था नहीं, अतः आचार्य के स्थान पर तो खाली आचार्य की गद्दी स्थापित की और आचार्य का जो प्रबन्ध संबंधी अधिकार था। वह सब पुजारी को दे दिया गया। पुजारी को छोटा अधीनस्थ राजा मान लिया गया। उस समय गोपाल नामक नम्बूद्रि ब्राह्मण वहाँ रसोया था। उसे ही रावल की पदवी से विभूषित किया गया। उसे नियमानुसार छत्र चँवर दिये गए। बद्रीनाथजी की सम्पत्ति का प्रबन्धक मान लिया गया। उसे सुवर्ण दण्ड, सुवर्ण किंकण और राजसी वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया गया। इस प्रकार सम्वत् १८३३ में सबसे पहिले रावल गोपाल रावल हुए।

श्रीनगर के राजाओं में यह प्राचीन प्रथा चली आती थी कि एक राजा की मृत्यु के बाद दूसरे राजा का राज्यतिलक ज्योतिर्मठ का आचार्य ही करे। कहते हैं श्रीनगर को श्री चक्र के ऊपर

भगवान् शङ्कराचार्य ने ही बसाया है और वहाँ के राजा का स्वयं ही राज्यतिलक किया, पीछे जब पँवार वंश के राजाओं ने इस प्रान्त पर अधिकार किया तो उनकी राजधानी भी श्रीनगर ही रही। इसीलिये श्रीनगर के राजाओं के इष्ट तथा कुलदेव भी बद्रीनाथ जी हैं। बद्रीनाथ के प्रतिनिधि ही उन्हें राज्यतिलक दे सकते हैं। जब तक श्री शङ्कराचार्य की गद्दी पर आचार्य होते थे तब तक तो ठीक ही था। अब रावल तो अधीनस्थ राजा हुआ वह महाराज को राज्य तिलक कैसे दे सकता है। इसलिये उसे श्री शङ्कराचार्य गद्दी का प्रतिनिधि मान लिया गया। वह बद्रीनाथ के अर्चक की हैसियत तथा आचार्य गद्दी के प्रतिनिधि होने के कारण नए गढ़वाल नरेशों को राज्यतिलक करता है। अधीनस्थ रावल होने से गढ़वाल नरेश स्वयं रावलों का चुनाव करते हैं। उन्हें तिलक करते हैं तथा उनसे भेंट भी ग्रहण करते हैं। इसलिये रावल विवाह नहीं कर सकता। अपना प्रतिनिधि अपने आप नहीं बना सकता, चेला भी नहीं बना सकता। वह राज्य की तरफ से बद्रीनाथ मन्दिर की समस्त सम्पत्ति का प्रबन्धक होता है उसे नियमानुसार यात्रियों से भेंट लेने का भी अधिकार नहीं है, क्योंकि मन्दिर के सामने अभी तक श्री शङ्कराचार्य की गद्दी स्थापित है। श्री बद्रीनाथ जी की भेंट से अलग गद्दी भेंट होती है और बदरीनाथ कोष में जमा की जाती है। टिहरी राज्य की तरफ से रावल को पुजारी, प्रबन्धक और प्रतिनिधि के तीन अधिकार दिये गये हैं। श्रीबद्रीनाथ को वही पूजा कर सकता है या राज्य नायब रावल को नियुक्त करे तो वह भी! तीसरा कोई मूर्ति को नहीं छू सकता। क्योंकि पूजा रावल को नित्य करनी है यदि वह गृहस्थी होगा तो उसे सूतक पातक लगेंगे इसलिये रावल को ब्रह्मचारी रहना आवश्यक है। वह विवाह नहीं कर सकता। घर वालों से सम्बन्ध भी नहीं रख सकता, क्योंकि घर में माता-

पिता के मरने पर उसे पातक सम्बन्धी सूतक लगेंगे इसलिये उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी की तरह रहना चाहिये।

उस मन्दिर की समस्त सम्पत्ति की समुचित व्यवस्था भी करनी चाहिये। वह शासक और राजा भी मान लिया जाता था। यथा जहाँ बद्रीनाथ तथा के बद्रीनाथ मन्दिर के आचार्य का काम पड़े तो वहाँ का प्रतिनिधित्व भी वही कर सकत्ता है। इस प्रकार शङ्कराचार्य के स्थान पर रावलों की सृष्टि हुई। अब रावलों का इतिहास हम दूसरे अध्याय में कहेंगे।

रावलों का कार्य-काल

कस्यैकान्तं सुखमुपगतो दुःख मेकान्ततोवा ।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥*

हम पहिले ही बता चुके हैं कि सम्वत् १८३३ में गोपाल रावल प्रथम रावल हुए। ये पहिले गृहस्थ थे और भोग मण्डी में भगवान् का भोग बनाते थे। कहते हैं जब वे भगवान् की पूजा में प्रविष्ट हुए तो और इन्हें रावल की उपाधि मिली तब इन्होंने गढ़वाल नरेश से निवेदन किया—"मेरी सन्तान के निर्वाह का क्या प्रबंध होगा। मेरे पश्चात् ये न तो रावल बन सकते हैं और न मेरी जाति के लोग इनके अब विवाह सम्बंध करेंगे, इसलिये इनका भी कुछ प्रबंध होना चाहिये।" महाराज ने यहाँ के सरोला ब्राह्मणों से कहा—"तुम लोग इनके साथ विवाह सम्बंध करो।" ब्राह्मणों ने राजाज्ञा मानकर उनसे सम्बंध कर लिया। उनकी आजीविका के लिये भोगमंडी तथा मन्दिर की पूजा तथा प्रबंध सम्बंधी नौकरियों की भी व्यवस्था कर दी अर्थात् ये मन्दिर के हकदार स्वीकार कर लिये गये। उन्हें रहने को डिम्मर ग्राम दिया गया। इसलिये ये लोग डिमरी कहलाये। बद्रीनाथ जी की भोग मंडी के रसोइया तथा लक्ष्मीजी, नृसिंह जी और बदरीनाथ जी के बड़वा (पुजारी के सहायक) डिमरी जाति के ही लोग होते हैं।

---

* सदा न तो किसी को सुख ही सुख मिलता रहता है न दुख ही दुख। रथ के पहिये की तरह कभी किसी के सुख के दिन आते हैं कभी दुख के। जैसे रथ का चक्र चलता रहता है उसी तरह संसार भी बदलता रहता है।

श्री बदरीनाथ टिहरी दरबार के इष्टदेव तथा गद्दी के स्वामी समझे जाते हैं। गढ़वाल नरेश ही बदरीनाथ के प्रतिनिधि माने जाते थे, अतः यात्री बदरीनाथ की भाँति गढ़वाल नरेश के दर्शनों को भी आते थे। जब तक राजा के दर्शन न हो जायँ तब तक यात्रा सफल नहीं समझी जाती थी सभी तीर्थ स्थानों के राजा इसी तरह पूज्य समझे जाते थे। इस मान्यता के कारण तीर्थों की ओर राजाओं का विशेष ध्यान रहता था। दक्षिण के जितने मन्दिर हैं एक प्रकार के बड़े भारी-भारी किले ही हैं। कोई राजा ऐसा न होगा जिसने बड़ा भारी मन्दिर और उसके निर्वाह के लिये जमीन गाँव न लगाये हों। इसी प्रकार गढ़वाल नरेशों ने भी बदरीनाथजी की पूजा आदि के लिये बहुत से गाँव लगा दिये। ये गाँव दो प्रकार के होते हैं, जिन गाँवों की आमदनी भगवान् की पूजा अर्चा उत्सव आदि के काम में लगाई जाय वे 'गूँठगाँव' कहलाते हैं। जिन गाँवों की आमदनी से साधु संन्यासी तथा गरीब यात्रियों को सदावर्त दिया जाता था वे 'सदावर्ती' गाँव कहलाते हैं। गढ़वाल की देखा देखी कुमायूँ के राजाओं ने भी बहुत से गाँव श्री बद्रीनाथ के लिये लगा दिये। अन्य बहुत-से राजाओं ने भी बहुत-से वार्षिक बंधान बाँध दिये। इस प्रकार बद्री-नाथ जी की सेवा पूजा का कार्य खूब सुचारु रीति से होता रहा, टिहरी दरबार का मन्दिर की ओर विशेष ध्यान रहता था। उन्हीं के द्वारा सब प्रबंध होता। दरबार की ओर से यात्रियों की सुवि-धाओं का सब प्रकार ध्यान रखा जाता। महाराज की आज्ञा से देव प्रयागी पंडे जा-जाकर देश से यात्रियों को लाते। दरबार की ओर से सड़कें बनवाई जातीं। नदियों पर रस्सी के झूले लगवाये जाते और गरीब यात्रियों को स्थान-स्थान पर सदावर्त भी बाँटा जाता। दरबार के भय से रावल कोई भी धर्म विरुद्ध आचरण नहीं कर सकता था।

सम्वत् १८६१ में एक विचित्र घटना घटित हो गई। श्रीनगर जो गढ़वाल नरेशों की राजधानी थी उस पर गोरखाओं ने आक्रमण किया और उस समय के महाराज प्रद्युम्नशाह को लड़ाई में जीतकर समस्त गढ़वाल देश पर अपना अधिकार जमा लिया। अब श्री बदरीनाथ मन्दिर नैपाली गोरखाओं के अधीन हो गया, वे भी हिन्दू थे और धर्ममें आस्था रखनेवाले थे। इसलिये उन्होंने भी मन्दिर की उन्नति के लिये यथाशक्ति प्रयत्न किया। उन दिनों प्रथम नारायण रावल थे। उन्होंने मंदिर के सब गाँवों पर अपना स्वतंत्र अधिकार कर लिया। अपने को एक स्वतंत्र राजा की भाँति ही समझने लगे और मंदिर के गाँवों के मुकदमों का भी मंत्री की सहायता से फैसला करने लगे—नैपाली गोरखे गढ़वालमें अधिक दिन न टिक सके। महाराज प्रद्युम्नशाह के बालक राजकुमार सुदर्शनशाह जब युवावस्था को प्राप्त हुए तब उन्होंने गोरखों को अँगरेजो की सहायता से गढ़वाल से निकाल भगाया और फिर अपना गया हुआ राज्य हस्तगत किया। महाराज सुदर्शनशाह राजा तो हो गये किन्तु अँगरेजों को आधा राज्य देना पड़ा। सुनते हैं लड़ाई में जो खर्चा हुआ उसे अँगरेजों ने महाराज से माँगा। उस समय ५ लाख रुपये खर्च के अनुमान किये गये थे। महाराज पर उस समय रुपया था नहीं। अतः अँगरेजों ने आधा गढ़वाल ब्रिटिश राज्य में मिला लिया। तब से गढ़वाल के दो विभाग हो गये। टिहरी गढ़वाल और ब्रिटिश गढ़वाल। भागीरथी अलकनन्दा और मन्दाकिनी के पूर्व भाग की ओर ब्रिटिश गढ़वाल है और उधर टिहरी गढ़वाल है। श्रीनगर और बद्री केदारनाथ भी अँगरेजो राज्य में आ गये। महाराज ने अपनी राजधानी टिहरी में बनाई। इस प्रकार सम्वत् १८७२ से श्रीबदरी नाथ मन्दिर अँगरेजी राज्य की सीमा में आ गया।

अँगरेजों की सन्धि में श्री बदरीनाथ जी के सम्बंध में कोई

स्पष्ट फैसला नहीं था। टिहरी दरबार अपना प्रबंध बराबर भेजता रहा। राज्य के पुरोहित बराबर जाते रहे, मन्दिर से प्रसाद आदि पूर्ववत आता रहा और नायब रावलों की नियुक्त भी सदा की भाँति दरबार की ओर से होती रही। रावल को तिलक भी टिहरी महाराज ही देते रहे। इन सब बातों से यही प्रतीत होता था कि ब्रिटिश सरकार ने टिहरी दरबार के अधिकार को स्वीकार कर लिया है और बदरीनाथ मन्दिर का प्रबंध टिहरी दरब र के ही अधीन होता रहेगा। किन्तु इसमें एक सबसे बड़ी अड़चन यह थी कि बदरीपुरी टिहरी राज्य की सीमा से लगभग सौ मील दूर पर थी। उसके फौजदारी, दीवानी मुकदमे अँगरेजी राज्य की अदालत में जाते थे। ऐसी दशा में टिहरी दरबार प्रबंध कैसे कर सकता था। अँगरेजी सरकार की भी यह नीति रही है, कि वह किसी धार्मिक मामले में हस्तक्षेप न करे। इसलिये नियमानुसार वह भी मन्दिर के प्रबंध में हस्तक्षेप नहीं कर सकती थी। इसलिये दोनों सरकार प्रबंध के सम्बंध में पंगु-सी हो गईं टिहरी दरबार का नाम मात्र का अधिकार था, वह बिना ब्रिटिश सरकार की सहायता के कुछ कर नहीं सकता था। इधर अँगरेजी सरकार को भी कोई अधिकार कानून प्राप्त नहीं था कि वह मन्दिर के मामले में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करे। इसलिये रावलों का अधिकार बढ़ गया। वे लोग अब एक प्रकार से स्वतन्त्र शासक ही बन गये। मन्दिर की आय मनमाने ढङ्ग से खर्च करने लगे। जिसे चाहे उसे रखते जिसे चाहे उसे निकालते। अपनी इच्छानुसार नायब रावल रख लेते और नाम मात्र को टिहरी दरबार से स्वीकृत करा लेते। दरबार को स्वीकृति देनी ही पड़ती। मंदिर में क्या आमदनी है क्या खर्च होता है इसे टिहरी दरबार पूछे तो रावल कोई उत्तर भी न देता। अँगरेजी सरकार नियमानुसार पूछ नहीं सकती थी।

हाँ, इतना तो अवश्य हुआ कि रावल जो गाँवों के मुकदमे अपने मन्त्री की सहायता से फैसला करता था उसका वह अधिकार छीन लिया, मन्त्री को हटा दिया गया। किन्तु फिर भी वह देवोत्तर सम्पत्ति का स्वतन्त्र महन्त तो बना ही रहा। प्रभुता में मद होना स्वाभाविक है। धन और अधिकार का मद विवेक को नष्ट कर देता है, इसलिये रावल विलासी बन गये और देवता की सम्पत्ति का स्वयं उपभोग करने लगे। वे नियमानुसार विवाह तो नहीं करते थे किन्तु स्त्रियाँ रखने लगे। उनके बच्चे भी होते और वे रावल के कुँवर कहलाते। उनके भरण पोषण तथा आराम सुख-विलास की पूर्ति इसी देव सम्पत्ति से ही की जाती।

कुछ दिन छिपा-छिपी होने लगी, फिर प्रकट रूप से करने लगे। जनता में इसके विरुद्ध असन्तोष फैला। श्री बदरीनाथ का प्रश्न अखिल भारतवर्षीय प्रश्न है, अतः अँगरेजी सरकार का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ, उसने भी अस्थाई रूप से मन्दिर के प्रबंध में हस्तक्षेप किया। गढ़वाल में जिलाधीश (डिप्टी कमिश्नर) की अध्यक्षता में एक स्थानीय बद्रीनाथ समिति की स्थापित हुई। उसने यात्रा लाइन का सब प्रबंध अपने हाथ में ले लिया। मन्दिर पर जो गूँठ के गाँव चढ़े थे, उनकी आमदनी से तो बद्री केदार की सड़कों की मरम्मत कराई गई उन्हें चौड़ी तथा विस्तृत बनाई गई, उन्हें बनाने को ओवरसियर आदि रखे गये और सदावर्ती गाँवों की आमदनी से जो सदावर्त बाँटा जाता था उसे बंद करके यात्रा सड़क में स्थान-स्थान पर अँगरेजी औषधालय (अस्पताल) खोले गये। इस प्रबंधसे यात्रियों को बहुत सुविधायें हो गईं। सड़कें चौड़ी और सुन्दर बन जाने से यात्री भी अब अधिक आने लगे। यह प्रबंध सरकार की सम्पत्ति से स्थानीय अधिकारियों ने स्थाई रूप से किया था। मन्दिर में जो चढ़ावा, भेंट आदि से आमदनी होती थी उससे

रावल भगवान् की पूजा का काम चलाते थे। ऐसी दशा में रावल एक पुजारी मात्र ही रह गये। उनके सब अधिकार छिन गये। रावलों की प्रेरणा से इसके विरुद्ध अन्दोलन होने लगा। सरकार के इस काम को धर्म में हस्तक्षेप करना बताया गया। अतः सन् १९६२ में सरकार ने गूँठ गाँवों की आमदनी फिर मन्दिर में देनी आरम्भ कर दी। मन्दिर का प्रबन्ध पूर्व की भाँति टिहरी दरबार के ही अधिकार में आ गया। दरबार की ओर से मैनेजर लिखवार (नायब) रावल आदि की नियुक्ति होने लगी। हाँ, सदावर्ती गाँवों की आमदनी सरकार ने पूर्ववत अपने अधीन रखी, उनसे अँगरेजी औषधालयों का तथा सदावर्ती धर्मशालाओं की मरम्मत आदि का प्रबन्ध होता है। वह प्रबंध अब तक वैसा ही चला आ रहा है।

इस प्रबंध से रावलों की आमदनी तो बढ़ गई किन्तु मन्दिर का कोई विशेष उपकार नहीं हुआ। दरबार के नियुक्त हुए आदमियों को रावल के ही अधीन रहना था। दरबार रावल के विरुद्ध कुछ करना भी चाहे तो उसे अँगरेजी सरकार के न्याय विभाग की शरण लेनी पड़ती क्योंकि वह जमीन अँग्रेजी राज्य में थी। इस द्विविध शासन के कारण कोई सुन्दर प्रबन्ध हुआ नहीं। रावलों की स्वतन्त्रता बढ़ गई। वे अपने को स्वाधीन समझकर खुलकर खेलने लगे और जो बात न करने की थी उन्हें भी करने लगे। गढ़वाल के जिलाधीश (डिप्टी कमिश्नर) ने रावल पर कुमाऊँ की अदालत में दीवानी दावा भी कर दिया। उसका फैसला सन् १८९९ ई० में हुआ। उसके अनुसार रावल को स्वतन्त्र मान लिया गया। अब टिहरी दरबार केवल नायब रावल को नियुक्त कर दे, बस इतना ही अधिकार उसका रहा। आमदनी खर्च का सब अधिकार रावल को ही रहा। वह चाहे जितना खर्च करे, चाहे जो करें, इसमें टिहरी दरबार या नियमा-

नुसार सरकार भी कोई हस्तक्षेप न कर सकती थी। इससे मन्दिर की व्यवस्था और भी बिगड़ गई।

उन दिनों टिहरी के वर्तमान महाराज अप्राप्त वयस्क (नाबालिक) थे। इसलिये राज्य का प्रबन्ध अँग्रेजी सरकार की सलाह से एक समिति (कौन्सिल) करती थी। उसके सभापति एक अँग्रेज थे। कुमाऊँ के कमिश्नर ने सरकार तथा दरबार की समिति के सभापति की सलाह से रावल की स्वीकृति लेकर एक सरकारी तहसीलदार (पं० शालिगराम वैष्णव) को मन्दिर का मैनेजर बनाकर भेज दिया। ३ वर्ष तक वे रावल की सम्मति से मन्दिर का सब प्रबन्ध करते रहे। नियमानुसार सरकार को इस प्रकार का मैनेजर नियुक्त करने का कोई अधिकार नहीं था। इधर सरकारी व्यवस्थापक रहने से रावल की स्वतन्त्रता में बाधा पड़ने लगी। वह मनमानी न कर सकते थे। सरकारी व्यवस्थापक प्रत्येक बात का हिसाब रखता उसे सरकार के यहाँ भेजता। इसलिये रावल ने ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी कि विवश होकर सरकार को ३ वर्ष बाद अपना व्यवस्थापक (मैनेजर) वापिस बुला लेना पड़ा। यह सन् १९१५ से १९१९ तक की बात है। अंग्रेजी सरकार इस घटना से अनुभव करने लगी कि जब तक कोई नियम (कानून) न बनेगा तब तक मन्दिर का प्रबन्ध ठीक-ठीक न होगा।

रावल ने जब देखा सरकार ने अपना प्रबन्धक वापिस बुला लिया है, तो अपना पक्ष पुष्ट करने के लिये उसने दरबार को लिखा कि टिहरी से कोई व्यवस्थापक भेजा जाय, टिहरी दरबार ने अपना एक (डिप्टी कलेक्टर) व्यवस्थापक मन्दिर के प्रबन्ध के लिये भेज दिया। रावल जानता था कि जब मैंने सरकारी प्रबन्ध को हटा दिया है तो दरबार का भेजा हुआ प्रबन्ध तो नाममात्र का है वह मेरे अधीन ही रहेगा। उसे जब चाहूँ हटा सकता हूँ।

साल भर तक दरवार का प्रवन्धक मन्दिर की व्यवस्था करने लगा। दरवार का प्रबन्धक समझता था कि व्यवस्था सब मेरे अधिकार में है, रावल समझता था दरवार का भेजा प्रबन्धक मेरे अधीन है। इसी पर तनातनी हो गई। खजाने की दो तालियाँ रहती थीं एक दरवार के प्रबन्धक पर एक रावल पर। किसी बात पर रावल और व्यवस्थापक में तनातनी हो गई। रावल ने खजाना नहीं खोला। अब व्यवस्थापक भोग आदि की व्यवस्था कैसे करे, जब किसी तरह भी रावल राजी नहीं हुआ तो दरवार के व्यस्वथापक ने पूजा न रुके सब काम सुचारु रीति से हो रावल के ताले को तुड़वा कर काम चलाया। रावल ने फौजदारी का मुकदमा चलाया। दरबार का व्यवस्थापक अंगरेजी अदालत द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। दरबार को इस घटना से बड़ी ठेस लगी। जैसे तैसे उन्होंने उसे छुड़वा कर वापिस बुला लिया।

अब दरवार के सामने एक ही प्रश्न था, यदि मन्दिर का प्रबन्ध दरबार को करना है तो बदरीनाथ की उतनी भूमि टिहरी राज्य में मिला ली जाय। युक्तप्रान्त के प्रान्तीय शासक (गवर्नर) ने कहा यदि जनता इस बात पर राजी हो जाय तो हम बदरीनाथ की भूमि को दरबार को दे सकते हैं। इस पर देश में बड़ा आन्दोलन हुआ। रावल इसके विरुद्ध था कि टिहरी दरबार में बदरीनाथ न जाय। दोनों ओर से खूब प्रयत्न हुआ, आन्दोलन सभा समितियाँ होने लगीं। कुछ दिनों तो ऐसा मालूम पड़ने लगा कि बदरीनाथ मन्दिर निश्चित टिहरी दरबार को मिल जायगा, किन्तु सरकारी नीति तो रहस्यपूर्ण विचित्र ही होती है। अन्त में यह प्रस्ताव अव्ययहार्य ठहराया गया। जनता का अधिकांश मत भी टिहरी दरबार के पक्ष में नहीं था। शीतकाल में निवास की, दीवानी फौजदारी के मुकदमों की, सीमा निर्णय की बहुत-सी अड़चने थीं। जोशीमठ से बदरीनाथ तक की पूरी भूमि पर अधि-

कार दरबार का मिलता तब तो व्यवस्था हो भी सकती थी, किन्तु सरकार इतना भूमिभाग देने को तैयार न थी, अतः यह व्यवस्था स्वीकृत न हुई।

रावलों का जितना काल रहा वह तब तक तो ठीक रहा जब तक गढ़वाल नरेश का इस भूमि भाग पर शासन रहा। गढ़वाल राज्य का अधिकार जाते ही रावल स्वेच्छाचारी बन गये जैसे कि प्रभुता पाकर हो ही जाता है। देवोत्तर सम्पत्ति को अपनी निजी सम्पत्ति समझने लगे। लगभग १५० वर्ष रावलों का बद्रीनाथ के मन्दिर पर पूर्णाधिकार रहा। इसमें भाँति-२ के उलट-फेर और आन्दोलन होते रहे। इन डेढ़ सौ वर्षों में ११-१२ रावल हुए उनकी सूची इस प्रकार है:—

सं० नाम रावल	पूजा में प्रवेश संवत्	कब तक	के वर्ष पूजा की
१—गोपाल रावल	१८३३ से	१८४२ तक	९ वर्ष
२—रामचन्द्र रामब्रह्म रघुनाथ रावल	१८४२"	१८४३"	१"
३—नीलदन्त रावल	१८४३"	१८४८"	५"
४—सीताराम रावल	१८४८"	१८५९"	११"
५—नारायण रावल (प्रथम)	१८५९"	१८७३"	१४"
६—नारायण रावल (द्वितीय)	१८७३"	१८९८"	२५"
७—कृष्ण रावल	१८९८"	१९०२"	४"
८—नारायण रावल (तृतीय)	१९०२"	१९१६"	१४"
९—पुरुषोत्तम रावल	१९१६"	१९५७"	४१"
१०—वासुदेव रावल (हटाये गये)	१९५७"	१९५८"	१"
११—रामा रावल	१९५८"	१९६२"	४"

इस प्रकार संवत् १९६२ तक ११ रावल हुए। सं० ३२ में रामा रावल का देहान्त हो गया। उस समय वहाँ और कोई नम्बूदी ब्राह्मण नहीं था। पूजा बन्द नहीं हो सकती थी, अतः जो वासुदेव रावल विशेष कारण से पूजा से पृथक कर दिये गये

थे वे ही फिर रावल बनाये गये और उन्होंने ३५-३६ वर्ष और पूजा की। यह सब उथल-पुथल इन्हीं के समय में हुई।

अन्त में १९३९ में बदरीनाथ मन्दिर विधान (बदरीनाथ एक्ट) नाम का युक्त—प्रान्तीय धारा सभा से एक नया विधान (कानून) बना जिसे टिहरी दरबार ने भी स्वीकृत कर लिया। उसके अनुसार श्री बदरीनाथ के प्रबन्ध का समस्त अधिकार "बदरीनाथ प्रबन्धक समिति" नाम की एक चुनी हुई संस्था को दे दिया गया जिसकी ओर से वैतनिक मन्त्री मन्दिर में रहता है। वर्तमान समय में समिति के मन्त्री ठाकुर प्रतापसिंह जी चौहान (डिप्टी कलेक्टर) हैं। इस समिति के होने से अब पुरानी सभी व्यवस्थायें रद्द कर दी गईं। पुराना अब कोई नियम-कानून- निर्णय इसमें लागू न होगा। समिति के होने के पश्चात् अब रावल का प्रबन्ध के सम्बन्ध में कोई अधिकार नहीं रहा। अब उसकी स्थिति एक वेतन भोगी पुजारी के समान है। समिति चाहे जिस रावल को रख सकती है। समिति के सम्बन्ध में आगे के अध्याय में बताया जायगा, कि उसकी व्यवस्था का क्या आधार है और वर्तमान प्रबन्ध किस प्रकार का है।

—

२५—श्री बदरीनाथ मन्दिर का वर्तमान प्रबन्ध

बदरी सदृशं क्षेत्र नैवेद्यसदृशं वसु।
नारदीय समंक्षेत्र न भूतो न भविष्यति ॥*

(स्कन्द-पु०)

हम पहिले ही बता चुके हैं कि संवत् १९९६, में युक्त-प्रान्तीय धारा सभा (यू० पी० कौंसिल) में 'श्री बदरीनाथ-विधान' (श्रीबदरीनाथ एक्ट) पास हो गया, उसके अनुसार सं०१९९६-९७ से मन्दिर का प्रबन्ध समिति द्वारा होता है इसमें १२ सदस्य होते हैं। ३ सदस्य तो युक्त-प्रांतीय दोनों धारा सभाओं (यू० पी० कौंसिल और ऐसम्बली) के होते हैं। उन्हें धारा सभाओं के केवल हिन्दू सदस्य ही चुनते हैं। दो सदस्यों की सरकार द्वारा नियुक्त होती है। दो सदस्य गढ़वाल जिला समिति (डिस्टिक्य बोर्ड) के हिन्दु सदस्यों द्वारा चुने हुए होते हैं। चार सदस्य टिहरी दरबार की ओर से होते हैं। सभापति को स्वयं अंग्रेजी सरकार नियुक्त करती है। समिति की ओर से एक मन्त्री बराबर मन्दिर में रहता है। वही सब देखभाल तथा प्रबन्ध समिति के आदेशानुसार करता है। आगे हम श्री बदरीनाथ विधान का हिन्दी अनुवाद तथा सदस्यों की सूची देंगे।

---

* बद्रीवन के समान दूसरा क्षेत्र, बद्रीनाथ के भोग के समान दूसरा धन और नारदीय क्षेत्र के समान दूसरा स्थान न तो संसार में हुआ और न होगा।

मन्दिर की आय—यह बात पहिले ही कह चुके हैं,प्राचीन राजाओं ने कुछ गाँव मन्दिर को भेंट किये थे। वे गाँव गढ़वाल कुमायूँ तथा टिहरी राज्य में हैं। अल्मोड़ा जिले में पैंतालीस गाँव समूचे हैं तथा छब्बीस गाँव में कुछ हिस्सा है। गढ़वाल जिले में एक सौ चौंतिस समूचे तथा एक सौ ग्यारह गाँव में कुछ भूमि है। ये पहाड़ी गाँव नाम मात्र के गाँव हैं। देश के गाँवों की तरह नहीं। इन दो सौ, ढाई सौ गाँवों की कुल वार्षिक आय पहिले सम्भवतया सात हजार के लगभग थी। अब भूमिकर में कुछ वृद्धि होने से बारह हजार के लगभग है। इनकी आमदनी को सरकार स्वयं वसूल करके मन्दिर को दे देती है। सदावर्ती गाँव इनसे अलग हैं। उनकी आमदनी को सरकार वसूल करके उसे सड़क शिफाखाना आदि के कामों में स्वयं ही लगाती है।

गाँवों की आय के अतिरिक्त मन्दिर में जो चढ़ावा आता है वह भी सब मन्दिर के ही काम में लगाया जाता है। मन्दिर में जो भगवान् के सामने चढ़ाते हैं उसे भगवान् की भेंट कहते हैं। भेंट के अतिरिक्त भी कई प्रकार से और भी आमदनी होती हैं। जैसे—

जो १०१) देते हैं उनकी ओर से भगवान् का अभिषेकविशेष पूजा नियत दिन की जाती है। उस यात्री को अभिषेक, पूजा, दर्शन की विशेष सुविधा दी जाती है

अटका—२५) से कम नहीं लिखाया जाता। इसकी ब्याज से भगवान् की नित्य पूजा होती है।

भोग—१) देने से यात्री की ओर से भोग लगता है और उसे भगवान् का भोग मिलता है।

गद्दी भेंट—चार आने से कम नहीं होती। यात्री को अङ्ग वस्त्र, चन्दन तुलसी प्रसाद मिलता है।

नित्य भोग—२५२ रु० ६२ न० पैसे देकर। नित्य भोग

लगवाया जा सकता है, केवल भगवान् के भोग में १५) ६२ नये पैसे लगते हैं।

जीर्णोद्धार कोष—मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिये जो देना चाहे उसका अलग कोष है सहस्त्रार्चन के लिये १०) अष्टोत्तरी के लिये ५), कपूर आरती के लिये १), बड़ी आरती को ११), बालभोग के लिये १५), इस प्रकार सबके लिये बँधे हैं। सबकी रसीद कचहरी कर्यालय से मिलती है।

मन्दिर के हक़दार

श्रीबदरीनाथ मन्दिर के अधीन लगभग तीस मन्दिर भिन्न-भिन्न स्थानों में और भी हैं (जिनकी सूची हम आगे दे रहे हैं।) उन्हें मन्दिर की ओर से वार्षिक बन्धान मिलता है। इसी प्रकार मंदिर में वेतनभोगी नौकर बहुत कम हैं। अधिकांश वहाँ वंश परम्परा से चले आनेवाले कार्यकर्ता हैं। उन्हें मन्दिर का हक़दार कहते हैं। उन सबकी पृथक्-पृथक् सेवा बँटी हुई रहती है। उसके उपलक्ष्य में उन्हें निश्चित बन्धान नकदी तथा वस्त्र आदि के रूप में मिलते हैं। बहुत से लोगों को भगवान् का प्रसाद भी मिलता है। प्रसाद की सबकी बंटी (पतीली) प्रथक्-प्रथक् बनती हैं। जिन बटलोइयों में भात बनता है उन्हीं में ज्यों का त्यों भगवान् को भोग लगता है। भोग लग जाने पर तुरन्त ही हक़दार अपने-अपने प्रसाद की बंटी उठा ले जाते हैं। यहाँ नीचे हम मन्दिर के हक़दारों का नियत काम तथा उन्हें वार्षिक क्या मिलता है आदि सबकी सूची देते हैं। जिससे मन्दिर के प्रबन्ध को समझने में बहुत सहायता मिलेगी। यह हक़दारी प्रथा रावलों के समय से ही चली आ रही है।

—:—

मन्दिर श्री बद्रीनाथ जी के हकदारान
की
सूची व उनके कार्य

(१) भितला बड़वा—सरोला डिम्री कौम में से होता है, जिसको कि डिम्री पंचायत प्रति वर्ष बारी से देती है। डिम्री कौम की दो पंचायतें हैं—(१) डिम्मर और उमड़ा गाँव की और (२) रैंगाव व पाखी गाँव की।

भितला बड़वा श्री बदरीनाथ जी के मन्दिर के अन्दर रावल साहब (प्रधान पुजारी) के साथ श्री भगवान के कपाट खुलने से कपाट बन्द होने (आधा मई से लेकर आधा नवम्बर ६ माह) तक भगवान् की सेवा परिचर्या में सहकारी का काम करता है। प्राचीन मर्यादानुसार वह श्री बदरीश भगवान् की मूर्ति को स्पर्श नहीं कर सकता है। उसकी सेवाओं के उपलक्ष में उसे श्री भगवान् के कोष से नकदी व किस्म ये सब मिलाकर प्रायः तीन सौ पचास रुपये मिलता है। वह रावल साहब के साथ-साथ भगवान् की भोग पूजा के सोने-चाँदी वगैरह के बर्तनों तथा श्रृङ्गार के आभूषणों का भी ज़िम्मेवार है।

(२) लक्ष्मी बड़वा—सरोला डिम्री कौम से प्रतिवर्ष छः माह के लिये बारी से नियुक्त होता है। वह भितला बड़वा व प्रसादी बड़वा के साथ गाडू घड़ा (चाँदी का घड़ा) लेकर दरबार टिहरी जाता है और वहाँ से श्री भगवान् पर नित्य प्रति मलने का तेल लेकर श्री भगवान् के कपाट खुलने के समय रोज बदरीनाथ

पहुँचता है। उसका प्रधान कर्तव्य भगवान् के कपाट खुलने से कपाट बन्द होने तक श्री लक्ष्मीजी का अभिशेष पूजनादि करना है। श्री भगवान् का नित्य बालभोग पकाना, सायंकाल को ब्यालूभोग पकाना, अभिशेष (विशेष पूजा) के रोज विशेष केशिरिया भोग पकाना व विशेष चन्दन घिसना और भगवान् की नित्यनैमित्तिक पूजा के लिये रोज आध पाव चन्दन की लकड़ी को घिसकर चंदन तैयार करना भी उसका काम है।

लक्ष्मी बड़वा को उसकी सेवाओं के उपलक्ष में नकदी व किस्म सब मिलाकर प्रायः तीन सौ पचास रुपया श्री भगवान् के कोष से दिया जाता है।

(३) प्रसादी बड़वा—सरोला डिम्री कौम से प्रतिवर्ष वारी से छः माह के लिये नियुक्त होता है।

प्रसादी बड़वा भी भितला बड़वा व लक्ष्मी बड़वा के साथ गाडू घड़ा लेकर दर्बार टिहरी जाता है और श्रीभगवान् के कपाट खुलने पर तेल लेकर बदरीनाथ पहुँचता है। वह नित्य प्रति श्री भगवान् की भोगमंडी में, भगवान् का नित्यनियम भोग, पर्वीभोग यात्रि व अटका भोग या जो कुछ भी सामान भगवान् के भोग के निमित्त पके उसकी निगरानी व देखरेख करता है। जिससे भोग खयानत व खराब न हो।

प्रसादी बड़वा को उसकी सेवाओं के उपलक्ष में नकदी व किस्म सब मिलकर प्रायः तीन सौ पचास रुपया श्री भगवान् के कोष से मिलते हैं।

(४) उदासी (रसोइये)—प्रतिवर्ष उदासी सरोला डिम्री कौम में से छः माह के लिये वारी से नियुक्त किये जाते हैं।

ये लोग श्री भगवान् के कपाट खुलने पर श्री उद्धवजी (भगवान् की उत्सवमूर्ति) श्री योग ध्वनि मन्दिर पाण्डुकेश्वर (जहाँ

कि छः माह शीतकाल उद्धवजी की पूजा होती है) से बदरीनाथ और कपाट बन्द होने पर वापिस पांण्डुकेश्वर पालकी पर लाते हैं। इसी तरह मातामूर्ति (वामनद्वादशी) के अवसर पर उद्धव जी को पालकी पर मातामूर्ति माताजी के दर्शनों को ले जाते हैं और वापिस लाते हैं। इनका मुख्य काम श्री भगवान् का नित्य नियम भोग, पर्विभोग, यात्रि व अटकाभोग व उस भोग को पकाना है। जिसको पकाने के लिये मन्दिर का प्रधान अधिकारी आज्ञा दें। इनका कार्य मन्दिर के उस स्थान को जब आवश्य-यकता पड़े साफ करने का भी है जहाँ कि भगवान् की मूर्ति विरा-जती है।

इन छहों उदासियान को नकदी व किस्म सब मिलाकर प्रायः पन्द्रह सौ रुपया मन्दिर श्रीबदरीनाथजी के कोष से इनकी सेवाओं के उपलक्ष में मिलता है।

[५] ब्राह्मण सेवाकार—सरोल डिम्री कौम से प्रतिवर्ष नियुक्त किया जाता है।

ब्राह्मण सेवाकार नित्यप्रति भगवान् का साफा, अङ्गवस्त्र को साफ करता है वह आवश्यकतानुसार चन्दन की लकड़ी घिसकर यात्रियों को प्रसाद में दिये जाने के लिये चन्दन गोली तैयार करता है और भगवान् की चन्दन की चरणपादुकाओं को भी सुखाकर चन्दन गोली व चरणपादुकाओं को हिसाब के मुताबिक दफ्तर मन्दिर में दाखिल करता है। उसका कार्य रावल जी के पूजा के कपड़ों को तथा स्नान के कुण्ड को साफ रखने का है।

ब्राह्मण सेवाकार को उसकी सेवाओं के उपलक्ष में नकदी और किस्म सब मिलाकर प्रायः ३००) रु० के खजाना मन्दिर से मिलता है।

[६] वटवाला—सरौला डिम्री कौम में से प्रतिवर्ष वारीदार नियुक्त होता है। उसका काम यह है कि वह विजया-

दशमी व वसन्त पंचमी के अवसर पर श्री भगवान् का प्रसाद लेकर दरबार टिहरी में उपस्थित हो।

बटवाला को प्रतिवर्ष प्रायः ७० रु० नक़दी और किस्म श्री बदरीनाथ जी के कोष से मिलता है।

[७] नृसिंह बड़वा जोशीमठ—सरोला डिम्री कौम से प्रतिवर्ष एक साल के लिए वारीदार नियुक्त किया जाता है।

नृसिंह बड़वा का मुख्य कार्य एक साल तक जोशीमठ में श्री नृसिंह भगवान् तथा श्री दुर्गा जी का भोग पकाना है। यही बड़वा अपनी जोशीमठ की वारी पूरी कर श्री बदरीनाथ जी का भितला बड़वा होता है।

नृसिंह बड़वा को नकदी व किस्म सब मिलाकर वार्षिक ६००) रु० की आय श्री भगवान् के कोष से है। जिसका अधिक अंश श्रीनृसिंह भगवान् के नित्यनियम भोग से है जिसकी सूची (व्योरा खर्च) श्री बदरीनाथ जी के अधीन मन्दिरों की सूची में अन्यत्र दी गई है

(८) मंदिर के अधीन मंदिरों में सरोला डिम्री कौम के पुजारी

मन्दिर श्री बदरीनाथ जी के अधीन ३० मन्दिरों में से (जिनकी सूची अन्यत्र दी गई है) निम्नलिखित ९ मंदिरों में डिम्री पुजारी हैं—(अधीन मंदिरों पर जो व्यय वार्षिक होता है उसका अधिकांश पुजारी ही को प्राप्त होता है, खुलासा व्यौरा खर्च उसी सूची में दर्शाया गया है)

(१) वासुदेव मन्दिर जोशीमठ, (२) श्री भविष्य बदरी सुभाई, (३) सीतामठ चाँई,(४) ध्यानबदरी उर्गम, (५)। श्री वृद्ध-बदरी आणीमठ, (६) श्रीनृसिंह जी दाड़मी, (७) श्रीनृसिंह जी पारवी, (८) श्री लक्ष्मीनारायण डिम्बर, (९) श्री लक्ष्मीनारायण कुलसारी।

[९] महता भण्डारी—पांडुकेश्वर वामाणी ग्राम के

वाशिन्दगानों में से राजपूत वंश के महता व भंडारी कौम के होते हैं। प्रतिवर्ष बारीदार २ महता व १ भंडारी इन लोगों की पंचायत से नियुक्त किया जाता है जो कि कपाट खुलने से बंद होने तक मन्दिर में काम देते हैं।

दोनों महता व एक भंडारी तीनों व्यक्तियों के जिम्मे मन्दिर का चावल, आटा, दाल भंडार जो 'महता भण्डार' कहलाता है, रहता है। मन्दिर दफ्तर की आज्ञा अनुसार ये लोग भोगादि का सामान देते हैं।

इन तीनों महता भंडारियों को इनकी सेवाओं के उपलक्ष्य में नकदी व किस्म में प्रायः ८००) रु० मन्दिर कोष से मिलता है।

[१०] घड़िया बदरीनाथ—पांडुकेश्वर ग्राम के महता कौम से प्रति वर्ष ३ आदमी वारीदार नियुक्त किये जाते हैं, इन तीनों में से रोजाना एक-एक आदमी बारी-बारी से काम करता है।

घड़िया का काम मन्दिर को, मन्दिर की परिक्रमा को व सीढ़ियों को बराबर साफ करने का व जितनी बार आर्तियाँ हों आर्तियों को तैयार करने का तथा उनको हर बार साफ करने का है। भगवान् की अर्चन के लिये पुष्प तुलसी के पत्ते भी इनके ही जिम्मे रहते हैं।

इनकी सेवाओं के उपलक्ष्य में इनको नकदी व किस्म में सब मिलाकर प्रायः २५०) रु० के श्री मन्दिर बदरीनाथ कोष से मिलता है।

[११] कन्दी व कठारी—पांडुकेश्वर बामड़ी ग्राम की कन्दी कौम से वारीदार एक आदमी नियुक्त किया जाता है यह अपनी जिम्मेदारी पर अपने लोगों में से ९ आदमी या जितना अधिक मुनासिब समझे अपने सहकारी नियुक्त करता है जो कठारी कहलाते हैं।

इसका मुख्य काम यह है कि रोजाना दफ्तर के आर्डर के

मुताविक नित्य नियम भोग, पर्वों भोग, यात्री तथा अटका भोग विक्री वगैरह महता भंडार से लाकर चौकस प्रसादी अड़वा के भोग मंडी में भोग पकाने को दे और उस कुल भोग पकाने के लिये जितनी भी लकड़ी रोजाना आवश्यक हो भोग मंडी में देवे रोजमर्रा भोग मंडी की व भोग पकाने के वर्तनों की सफाई करना भी इसी का काम है। इसको अपने आदमियों को लेकर कम्दी ही जिम्मेवार है। इसको अपने आदमियों को लेकर रैंक वाल जोशी मठ वालों के शामिल, रावल जी को कपाट खुलने पर जोशीमठ से बदरीनाथ पालकी पर लाना पड़ता है और कपाट बंद होने पर उसी तरह जोशीमठ पहुँचाना पड़ता है। माता मूर्ति उत्सव पर रावल साहब को माता मूर्ति भी ले जाना पड़ता है।

कम्दी कठारियों को उनकी सेवाओं के उपलक्ष्य में प्रति वर्ष नकदी किस्म में लगभग ३०००) रु० के मन्दिर कोष से मिलता है।

[१२] दाणियाघटवाला (चौकीदार)—पंडुकेश्वर निवासियों में दो आदमी नियुक्त होते हैं। कपाट बंद होने के वाद जब तक काफी वर्फ नहीं गिर जाती है ये लोग पुरी बदरीनाथ में आ जाते हैं। इनकी सेवा के उपलक्ष में इनको मन्दिर से लगभग १००) रु० नकद व किस्म में वार्षिक दिया जाता है।

[१३] ग्वाला फय्या—फय्या ग्राम पांडुकेश्वर के निवासियों में है। उसके पास मन्दिर की गायें रहती हैं जिनकी वह खिदमत करता है। दूध देने वाली गाय वह बदरीनाथ में भेज आता है।

ग्वाला फय्या को उसकी इस सेवा के उपलक्ष में मन्दिर कोष से वार्षिक लगभग १००) रु० के नगदी व किस्म में दिया जाता है।

[१४] पंचदुरियाल पंडुकेश्वर बामणी—जो कि यहाँ के

असली वाशिंदगान हैं, को इनके ग्राम देवताओं की पूंजा के लिये समय पर नंगदी व किस्म कुल मिलाकर लगभग ३०) रु० वार्षिक दिया जाता है।

[१५]पंचस्यूँडार—वालों को नन्दाष्टमी को लोकपाल पूजा आदि के लिये नकदी व किस्म में कुल मिलाकर लगभग ३०) रु० वार्षिक दिया जाता है।

[१६] पंचआँजी पंडुकेश्वर—पंडुकेश्वर वामणी के निवासी हैं। ये गद्दी की सवारी करते बदरीनाथ से जोशीमठ जाने व जोशीमठ से बदरीनाथ आने पर तथा हर विशेष पर्वों व उत्सवों पर और बदरीनाथ में कपाट बंद होने तक बराबर बाजा बजाने व नौबत लगाने का काम करते हैं। उनको इस सेवाओं के उपलक्ष में मन्दिर-कोष से नगद व किस्म में वार्षिक लगभग ८०) रु० के दिया जाता है।

१७] मालिया मन्दिर—ढंगणी ग्राम निवासी ब्राह्मण परिवार के कुछ खास व्यक्ति हैं। मालिया मन्दिर का मुख्य काम भगवान् की पूजा के लिये ९ माला, तुलसी, दवनपत्र आदि देने का है। पुरी बदरीनाथ जी में शङ्कराचार्य जी तथा आदि केदारेश्वर के मन्दिर की नित्य सफाई करना और रोज भगवान् के भोग में से भोग ले जाकर उपरोक्त मंदिरों में भोग लगाने का काम भी इनका ही है। ये लोग यात्रियों के पास भगवान् को चढ़ाने के लिये माला भी बेचा करते हैं जिसके लिये ये मन्दिर को वार्षिक दस्तूर देते हैं। उपरोक्त सेवाओं के उपलक्ष में इन लोगों को मन्दिर कोष से नकदी व किस्म में वार्षिक लगभग १४०) रु० के मिलता है।

[१८] महन्त शृङ्गारी—महाराजा साहब रीवाँ का पुरी

बदरीनाथ जी में जो रामानुज कोट है उसमें रहने वाले वैष्णवों में से एक वैष्णव मन्दिर का महन्त शृंगारी होता है।

महन्त शृङ्गारी का मुख्य काम भगवान् के शृंगार के तमाम वस्त्रों को अपनी जिम्मेवारी पर साफ पवित्रता से रखने का है। वह आवश्यकतानुसार भगवान् के शृङ्गार के लिये नित्य प्रति वस्त्र लाता है और शृंगार उतरने के बाद ले जाता है। साथ ही वह रोज कपाट खुले रहने तक श्री भगवान् की ड्योढ़ी पर चँवर भी डोलाता रहता है।

महन्त शृंगारी को उसकी इन सेवाओं के उपलक्षण में नकदी व किस्म सब मिलाकर लगभग २००) रुपया मन्दिर कोष से मिलता है।

(१९) पञ्चमाणा—पञ्चमाणा ग्राम के श्रीमातामूर्ति (वावन दुआदशी) उत्सव पर श्री माताजी के भोग पकाने के लिये लकड़ी बर्तन लाते हैं और भगवान् के कपाट बंद होने के दिन उनकी कुमारी कन्यायें व्रत लेकर शुद्धता से श्री भगवान् को धारण कराने के लिये एक दिन में ऊन कातकर छोटी-छोटी चोलियाँ बनाती हैं जिनको भगवान् कपाट बंद होने के पश्चात् ६ माह शीतकाल तक धारण किये रहते हैं। इन्हीं चोलियों का सूत भगवान् के कपाट खुलने पर प्रसाद के रूप में सर्वसाधारण यात्रियों में बाँटा जाता है।

उनकी इन सेवाओं के उपलक्ष में पञ्चमाणा को नकदी व किस्म सब मिलाकर लगभग ६०)रु० मंदिर कोष से मिलता है।

(२०) चापरांगजुङ्ग थोलिंगमठ सर्जी न भोट—थोलिंग मठ भोट का मुख्य अधिकारी है और सर्जी भोट उसका चपरासी चापरांगजुङ्ग प्रतिवर्ष सर्जी भोट के मार्फत श्री बदरीश भगवान् की सेवा में बतौर सौगात नजराना के एक ऊनी पट्टी, पट्टी दुम्ब

(पेड़े) भोटिया चाय एक खत (पत्र) के साथ भेजता है। इस उपलक्ष में सर्जी भोट व फोन्यामाणा के मार्फत मन्दिर से पत्र के साथ जो भगवान् का प्रसाद व यहाँ की सौगात भेजी जाती है उस पर मन्दिर का लगभग २४) रु० व्यय होता है और इसी तरह सर्जीभोट पर भी उसके दस्तुराग में लगभग १०) खर्च हो जाता है।

(२१) रैंकवाल जोशीमठ—के वाशिंदगानों में एक खास कौम है मन्दिर श्री बदरीनाथ जी के स्योकाचार, घड़ियाचार श्री नृसिंह मन्दिर जोशीमठ व श्री दुर्गा जी के मन्दिर (भेंट) पर इनका हक है।

रैंकवाल लोग भी भगवान् के कपाट खुलने पर कुन्दी पण्डुकेश्वर के शामिल रावल जी को व भगवान् की गद्दी की सवारी को पालकी पर बदरीनाथ ले आते हैं तथा कपाट बन्द होने पर वापिस ले जाते हैं।

रैंकवाल लोगों को उनकी इन सेवाओं के उपलक्ष में मन्दिर श्री बदरीनाथजी के कोष से नगदी व किस्म में वार्षिक १५०) रु० के लगभग मिलता है।

(२२) स्योकारचार मन्दिर श्रीबदरीनाथ—रैंकवाल कौम जोशी मठ में से एक व्यक्ति ३ साल के लिये नियुक्त किया जाता है। इसके सिपुर्द मन्दिर की सामग्री-भण्डार जिसमें घी, तेल, नमक, मसाला, चीनी, गुड़, लकड़ी वगैरह रहता है। जोशी मठ व बदरीनाथ दोनों स्थलों पर मंदिर दफ्तर के आर्डर के अनुसार भोग वगैरह जिसको भी दिलाया जाय सामान तौलकर देना व जब सामान खरीदा जाय तोलकर हिफाजत से रखना इसका काम है।

स्योकार को उसके काम के उपलक्ष में मन्दिर कोष से नकदी

व किस्म में सब मिलाकर लगभग ३००) तीन सौ रु० वार्षिक मिलता है।

(२३) धड़ियाला नृसिंह मन्दिर—रैंकवाल कौम जोशीमठ से बारीदार सालाना श्री नृसिंह मन्दिर जोशीमठ के लिये नियुक्त किये जाते हैं।

श्री नृसिंह जी तथा श्री दुर्गा जी के भोग पकाने के लिये रोजमर्रा दोनों बार लकड़ी देना, चौका बर्तन करना, श्री दुर्गा जी की अखण्ड ज्योति को अखण्ड रखना और मन्दिर की सीमा को साफ रखना तथा मन्दिर की इमारतों पर घास-फूस न जमने देना इन दोनों धड़ियों के काम हैं।

इन दोनों धड़ियों को मन्दिर कोष से नकदी व किस्म में सब मिलाकर लगभग ७००) रु० के मिलता है जिसमें कि अधिकांश श्री नृसिंह जी के भोग से ही मिला करता है जिसके खर्च का व्यौरा मातहत मन्दिरों की सूची में अन्यत्र दिया गया है।

(२४) धड़िया वासुदेव मन्दिर—जोशीमठ के वाशिन्दगानों में से एक व्यक्ति एक साल के लिये नियुक्त किया जाता है। श्रीवासुदेव जी के भोग पकाने के लिये रोजाना लकड़ी देना चौका बर्तन करना व मन्दिर के आस-पास साफ़ सफ़ाई रखना इसका काम है। इसका इन सेवाओं के उपलक्ष में मन्दिर श्री बदरीनाथ जी से नकदी व किस्म में मिलाकर लगभग २००) रु० के मिलता है जिसमें अधिकांश श्री वासुदेवजी के भोग से मिलता है जिसका व्यौरा अधीन मन्दिरों की सूची में अन्यत्र दिखाया गया है।

दरबार टिहरी गढ़वाल श्री बद्रीनाथ जी
के
पारस्परिक सम्बन्ध

हिज हाइनेस महाराजा साहब बहादुर टिहरी गढ़वाल का वंशपरम्परा से मन्दिर श्री बद्रीनाथजी के साथ घनिष्ट सम्बन्ध चला आ रहा है। श्री बद्रीनाथ जी को टिहरी का राजवंश अपना इष्टदेव मानता है गोर्खा युद्ध से प्रथम समस्त गढ़वाल उनके ही राज्य में था, जिसके अन्तर्गत पुरी बद्रीनाथ भी थी। पुरी बद्रीनाथ अब गढ़वाल के उस भाग में है जो कि ब्रिटिश राज्यान्तर्गत है किन्तु उनके धार्मिक व प्राबन्धिक सम्बन्ध मन्दिर श्री बद्रीनाथ जी के साथ पूर्व की ही भाँति बने हुए हैं, जिनकी रक्षा ब्रिटिश राज्य ने भी की है।

अति प्राचीन काल में जब कि यहाँ का मार्ग अति दुर्गम था और यहाँ की यात्रा अति संकटमय थी तब भी टिहरी के राजवंश ने भगवान् श्री बद्रीनाथ जी को सुपूजित रखा और उस कठिन समय से लेकर अब तक वे प्राचीन मर्य्यादानुसार भगवान् की पूजा में पुजारी जो कि रावल कहलाता है, सुदूर प्रान्त दक्षिण निवासी श्रीमद्‌जगद्‌गुरु स्वामी शंङ्कराचार्य के वंशज नम्बूद्री ब्राह्मणों को नियुक्त करते चले आ रहे हैं। वे अपने किसी भी शुभ कार्य व उत्सव में श्री भगवान् बद्रीश का प्रसाद व रावल मन्दिर बद्रीनाथ, जो कि भगवान् के अर्चक हैं, का आशीर्वाद सर्वश्रेष्ठ समझते हैं।

वर्तमान समय में श्री बदरीनाथ मन्दिर एक्ट १९३९ के पास

हो जाने पर सन् ४० से श्री बद्रीनाथ मन्दिर कमेटी, मन्दिर का प्रबन्ध करने लगी है और एक्ट के अनुसार महाराजा साहब बहादुर टिहरी ही मन्दिर बद्रीनाथ जी के संरक्षक हैं। मन्दिर श्री बद्रीनाथ जी के नायब रावल नियुक्त करने तथा रावल की मृत्यु हो जाने पर नायब रावल को अपनी राजधानी में तिलक देकर रावल पद नियुक्त करने का अधिकार श्री श्रीमान् महाराजा साहब टिहरी को ही है। श्री बद्रीनाथ जी के कपाट खुलने का शुभ मुहूर्त श्री बसन्त पंचमी को दरबार टिहरी में होता है। उस अवसर पर मन्दिर श्री बद्रीनाथ जी से भितला बड़वा, लक्ष्मी बड़वा, प्रसादी बड़वा व बटवाला (जिनका कर्तव्य हकदारों की सूची में अन्यत्र दिखाया गया है) श्री भगवान् का प्रसाद व गाडवघड़ि लेकर दरबार में उपस्थित होते हैं। गाडवघड़ि (चाँदी का घड़ा) का खास राजमहल में बड़े समारोह के साथ स्वागत और पूजन किया जाता है और ब्राह्मण जिमाये जाते हैं। श्रीमान् महाराजा साहब, श्रीमती महारानी साहिबा तथा राजपरिजन बड़ी श्रद्धा व संयम से अपने हाथों तिल का शुद्ध, सुगन्धित तेल निकाल कर गाडवघड़ी पर मंगल गान व वाद्य के समारोह में भरते हैं और मन्दिर के उपरोक्त आदमियों के हाथ श्री बद्रीश भगवान् की सेवा में भेजते हैं। यही तेल भगवान् को नित्य ६ माह कपाट बन्द होने तक लगाया जाता है। श्री भगवान् के कपाट खोलने को वैशाख माह में टिहरी का राजपुरोहित मुहूर्त पट्टा लेकर आता है और विधि पूर्वक श्री गणेश पूजन कर भगवान् के कपाट खोलता है। राजपुरोहित के हाथ भी मुताबिक दस्तूर के भगवान् का प्रसाद श्रीमान् टिहरी नरेश को भेजा जाता है इसके अतिरिक्त प्राचीन प्रथानुसार श्रीमान् महाराजा साहब के जन्मोत्सव पर चपरासी मन्दिर द्वारा और भी विजया दशमी के उत्सव पर बटवाल

मन्दिर के हाथ भगवान् का प्रसाद श्रीमान् टिहरी नरेश को भेजा जाता है।

मन्दिर श्री बद्रीनाथ जी के वार्षिक बजट पर श्रीबद्रीनाथ मन्दिर कमेटी अपनी राय कायम कर उस अन्तिम स्वीकृति के लिये श्रीमान् महाराजा साहब (संरक्षक) की सेवा में भेजती हैं। वे यदि आवश्यक समझें तो अपना संशोधन देते हैं तब बजट पास हो जाता है।

श्री बद्रीनाथ मन्दिर ऐक्ट १९३९ के अनुसार, श्रीबद्रीनाथ मन्दिर कमेटी श्रीमान् सभापति महोदय सहित १२ सदस्य हैं जिनमें से ३ सदस्य दरबार टिहरी के हैं।

टिहरी के महाराजाओं ने ८५४।) रु० वार्षिक लगान के गाँव मन्दिर श्री बद्रीनाथ की भोग पूजा के लिये दान कर रखे हैं जिनकी गूँठ रकम मन्दिर को मिलती है। इसके अतिरिक्त टिहरी दरबार से मार्फत राजपुरोहित के ८७.३१ न० पै० ६ वार्षिक बन्धान मन्दिर श्री बद्रीनाथ का मिलता है।

आवश्यकीय नोट—

ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने मन्दिर के अर्थ विभाग में अपना कोई हाथ नहीं रखा है। कांग्रेस मन्त्रिमण्डल के समय जनता के घोर आन्दोलन करने पर बद्रीनाथ मन्दिर ऐक्ट १९३९ पास हुआ। जिसके मुताबिक श्री बदरीनाथ मन्दिर कमेटी बनी। जिसके सदस्यों की सूची निम्नांकित है। वरन ब्रिटिश गवर्नमेण्ट तो बराबर मन्दिर श्री बद्रीनाथ जी की शुभाकांक्षी रही और रहेगी। गढ़वाल अल्मोड़ा के पुराने राजा महाराजाओं ने बद्रीनाथ जी की भोग पूजा के लिये कतिपय गूँठ गाँव चढ़ाये हैं जिनको कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने भी कायम रखा और अभी तक उन गाँवों का बन्दोबस्त भी अपने खर्चे से करती है और बढ़ी हुई गूँठ रकम भी मन्दिर में ही देती है। हाल के बन्दोबस्त के बाद

गवर्नमेण्ट मय बढी हुई रकम के करीब १२०००) रु० अपने खर्च से अपने पटवारियों के जरिये वसूल कर मन्दिर श्री बद्रीनाथ जी को देती है।

कमेटी के सदस्यों की सूची

(१) औनरेबल डाक्टर सर सीताराम प्रेजिडेण्ट श्री बद्रीनाथ मन्दिर कमेटी (प्रेजिडेण्ट लेजिस्लेटिव कौन्सिल)

(२) मिस्टर वी० जी० खापर्डे सदस्य श्री बद्रीनाथ मन्दिर कमेटी (वाइस प्रेजीडेण्ट हिन्दू महासभा)

(३) श्री गोस्वामी गणेशदत्तजी सदस्य श्री बद्रीनाथ मन्दिर कमेटी (प्रवर्तक सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा व महावीर दल पंजाव लाहौर)

(४) पं० एम० सी० शर्मा सदस्य श्री बद्रीनाथ मन्दिर कमेटी (जनरल मिनिस्टर दरबार टिहरी)

(५) पं० इन्द्रदत्त सकनाली सदस्य श्री बद्रीनाथ मन्दिर कमेटी (चीफसेक्रेटरी दरबार टिहरी)

(६) पं० उमादत्त डङ्गवाल सदस्य श्री बद्रीनाथ मन्दिर कमेटी (स्पेशल आफिसर दरबार टिहरी)

(७) महन्त योगेन्द्र पुरी शास्त्री सदस्य श्री बद्रीनाथ मन्दिर कमेटी (मेम्बर स्टेट कौन्सिल टिहरी गढ़वाल)

(८) ठा० शंकरसिंह नेगी वकील सदस्य श्री बद्रीनाथ मन्दिर कमेटी (मेम्बर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड गढ़वाल)

(९) कुँवर रघुनाथसिंह वकील सदस्य श्रीबद्रीनाथ मन्दिर कमेटी (मेम्बर डिस्ट्रिक्ट गढ़वाल)

(१०) पं० हरगोविन्दास पन्त सदस्य श्री बद्रीनाथ मन्दिर कमेटी (एस० एल० ए०)

(११) कुँवर राघवेन्द्रप्रतापसिंह मादकपुर गौडा सदस्य श्री बद्रीनाथ मन्दिर कमेटी (एम० एल० ए०)

(१२) मिस्टर चन्द्रभाल जी, सिधारा बनारस सदस्य श्री बद्रीनाथ कमेटी (एम० एल० ए०)

कमेटी में सदस्यों का चुनाव होता रहता है अतः वे बदलते रहते हैं। (प्रकाशक)

श्री बद्रीनाथ मन्दिर कमेटी
के
अपने कार्य काल के संक्षिप्त कार्य क्रम

यह चतुर्थ वर्ष है जब से कि मंदिर श्री बद्रीनाथ जी का प्रबन्ध 'श्री बद्रीनाथ मन्दिर ऐक्ट १९३९, के अनुसार हो रहा है इससे पूर्व इस मन्दिर का सारा प्रबन्ध सन् १८९९ की एक रिमाइन्ड स्कीम के मुताबिक एकमात्र मंदिर के रावल (प्रधान पुजारी) के हाथ में था। रावलों को एकतन्त्र अधिकार मिले रहने से उन्होंने अपने अधिकारों का दुरुपयोग किया और वे स्वेच्छाचारी और विलासप्रिय हो गये। वे ब्रह्मचारी रहना छोड़ कर रखेलियाँ रखने और उनको व उनसे उत्पन्न सन्तानों से घरबार जोड़ने लगे। उनका ध्येय मन्दिर श्री बद्रीनाथ व उसके मातहत मन्दिरों व धार्मिक व आर्थिक उन्नति, मन्दिर इमारतों की रक्षा, धर्मोपदेश, विद्या प्रचार तथा यात्रियों के हित का न रह कर अपने निज के लिये सम्पत्ति को संचय करना तथा अपने नातेदारों का हितचिंतन ही रह गया। इसलिये प्रान्त के निवासी तथा अन्य सनातनी हिन्दुओं ने घोर आन्दोलन कर कांग्रेस मन्त्रिमंडल के समय में उपरोक्त ऐक्ट को जन्म दिला कर ही चैन लिया।

अब उपरोक्त ऐक्ट के अनुसार 'श्री बद्रीनाथ मन्दिर कमेटी, सन् १९४१ से मन्दिर श्री बद्रीनाथ व उसकी सम्पत्ति का प्रबन्ध कर रही है। सन् १९४० में कमेटी के सदस्यों का निर्वाचन होने तक स्पेशियल आफीसर (ठा० प्रतापसिंह चौहान डिप्टी कलक्टर जो अभी तक ऐक्ट को पूर्ण रूप से सफल बनाने के लिये कमेटी

की माँग पर गवर्नमेन्ट की आज्ञा से कुछ समय तक के लिये सेक्रेटरी के पद पर हैं) ने मन्दिर श्री बद्रीनाथ जी का प्रबन्ध किया। स्पेशियल ऑफीसर ने सबसे प्रथम मन्दिर पर जो एक भारी कर्जा रावल के समय से हो गया था उससे मन्दिर को मुक्त किया और अब इस नये प्रबन्ध के चार वर्षों (सन् १९४०-४३ में मन्दिर के रिजर्व फंड और 'अटका भोग फंड' से ५०,०००) रुपये जमा किये जा चुके हैं। स्पेशियल ऑफीसर तथा कमेटी का ध्यान इसके पश्चात् ही यात्रियों का कष्ट दूर करने, मन्दिर की इमारतों का पुनरोद्धार करने, यात्रियों के निवास के लिये पुरी में आधुनिक ढंग से काफी मकानात बनवाने, धर्मोपदेश कराने, धार्मिक तथा विद्या प्रचार संस्थाओं को और विद्यार्थियों को सहायता पहुँचाने और प्राचीन मर्य्यादा की रक्षा करते हुए अमितव्ययता को रोकने की ओर तथा मुख्यतः श्री भगवान् के भोग रागादि की सुव्यवस्था करने व भोग का सामान शुद्ध व प्रचुरता से रखने की ओर आकर्षित हुआ।

यात्रा लाइनमें खास-खास स्थानों को छोड़कर बीमार यात्रियों को किसी किस्म की औषधोपचार की सहायता नहीं मिलती थी और यदि दुर्भाग्य से किसी लावारिस (अनाथ) व्यक्ति का शरीरान्त हो गया तो उनके मृतक देह को भंगी (मेहतर) बिना दाह क्रिया किये हुए खड्ड में या गंगा में डाल देते थे। इन बुराइयों को दूर करने के लिए मन्दिर के व्यय पर नन्दप्रयाग से लेकर बदरीनाथ तक सफरी औषधालय और दो गश्ती वैद्यों की व्यवस्था को गई और एक वैद्य जो कि अँग्रेजी ढंग के औषधोपचार तथा चीर फाड़ में भी निपुण है खास मन्दिर श्री बदरीनाथ जी में नियुक्त किया गया। इसके अतिरिक्त, कमेटी ने गवर्नमेन्ट से लिख पढ़ कर केदारनाथ बदरीनाथ यात्रा लाइन पर फाटा व पीपलकोठी दो स्थानों में सरकारी खर्च से दो अधिक

अस्पतालों को खोलने की स्वीकृति करा ली है। साथ ही आरम्भिक रूप में चमोली-बदरीनाथ सेक्सन की खास-खास चट्टियों में चट्टी-चौधरियों को १०) रु० प्रत्येक सीजन में दिया जाकर लावारिश मृतकों की दाह क्रिया का भी प्रबन्ध किया गया जिसका अतिरिक्त खर्च मन्दिर कोष से मार्फत डिस्ट्रिक्ट हैल्थ ऑफिसर (सिविल सार्जन) को दिया जाने लगा है। यात्रियों को दर्शनादि में स्थान की कमी से जो कष्ट होते थे वह मन्दिर इमारत में सूक्ष्म परिवर्तन करके दूर कर दिये गये हैं। और पुरी के हर एक तीर्थ, घाट व मन्दिर परिक्रमा के कई स्थानों पर ब्रह्मकपाल में जो घाटिये, पुरोहित व अन्य व्यक्तियों द्वारा मनमानी तरह द्रव्य चढ़ाने के लिये यात्रियों को बाध्य किया जाता था वह बिलकुल रोक दिया गया। अभिप्राय कि मन्दिर के प्रत्येक कार्यों को व्यवस्थित रखने तथा हर एक तीर्थों के लिये उपनियम बनाये गये हैं।

सन् १९४६ से अब तक ४ वर्षों में, मन्दिर की परिक्रमा सुन्दर कटवा पत्थर बिछाकर चौरस कर दी गई है और परिक्रमा में यात्रियों के लिये निवास स्थान, भण्डार गृह, वाचनालय व औषधालय कटवा पत्थरों के तैयार किये गये हैं। मन्दिर का मुख्य प्रवेश द्वार (सिंह दरवाजा) निर्माण किया गया। दो आधुनिक ढंग के विश्राम भवन जिनमें कई स्यूट हैं तैयार किये गये हैं। इसके अतिरिक्त मन्दिर श्री बद्रीनाथ जी के अधीन मठों में से ज्योतिर्मठ. अणिमठ (वृद्ध बदरी) और चाईमठ का जीर्णोद्धार किया गया। इन सब कार्य पर ५०,०००) रु० व्यय किया गया है। इस समय पुरी बदरीनाथ जी में सब प्रकार के सुभीतेयुक्त एक आलीशान इमारत मन्दिर के बिल्कुल समीप यात्रियों के निवास के लिये बनाई जा रही है जो कि आधा (नीचे की मंजिल) बन चुकी है। यह इमारत

सन् १९४४ में यात्रियों के लिये तैयार हो जावेगी। इस इमारत को तैयार करने में ३५,०००) रु० व्यय होगा। यह सब कार्य, उन सनातनी हिन्दुओं तथा यात्रियों के दान से हुये हैं। जिन्होंने कि मन्दिर के जीर्णोद्धार कोष में यथाशक्ति सहायता (दान) दिये हैं मन्दिर श्री बदरीनाथ कमेटी अतिशीघ्र ही श्री नृसिंह मन्दिर ज्योतिर्मठ (जो कि अतिप्राचीन व प्रतिष्ठित है) का शीघ्रातिशीघ्र पुनरोद्धार करने के लिये तैयार है इस पर लगभग तीस चालीस हजार रुपया व्यय होगा। जहाँ तक हो सकेगा अन्य अधीन मन्दिरों का आवश्यकतानुसार जीर्णोद्धार शीघ्र करने की कमेटी चेष्टा कर रही है।

यात्रियों को धर्मोपदेश करने के लिये श्री कमेटी ने सन् ४१ से मन्दिर में कथावाचक का प्रबन्ध किया है।

मन्दिर कमेटी से आरम्भ में गढ़वाल और अल्मोड़ा जिला के अन्दर जो संस्कृत विद्यालय तथा अन्य धर्म व विद्या प्रचारक संस्थायें हैं उनमें से जिनको अति आवश्यकता समझी गई २,०००) की वार्षिक सहायता दी जा रही है। और गरीब छात्रों को १,०००) रु० वार्षिक छात्रवृत्तियाँ वितीर्ण की जा रही हैं। इसके अतिरिक्त कर्ण प्रयाग ऐंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूल में हाई स्कूल की इमारत बनाने के लिये एक मुश्त ३,०००) रु० दिया जा रहा है। कमेटी की हार्दिक अभिलाषा है कि ज्यों-ज्यों मन्दिर की आर्थिक दशा सुधरती जाय संस्कृत और औद्योगिक विद्या के प्रचार के लिये अधिकाधिक व्यय किया जाय। यह तो कमेटी निश्चय कर ही चुकी है कि मन्दिर श्रीवदरीनाथजी में एक संस्कृत व कर्मकांड की उच्च शिक्षा प्राप्त करने को विद्यालय स्थापित करें।

कमेटी ने उन तमाम अपव्ययों को रोक दिया है और कतिपय समाज व व्यक्तियों के अनुचित हकों को हटा दिया है जो रावलों के समय में स्वार्थवश दस्तूर में समय-समय पर करार दे

दिये गये थे और बहुत से अपरिमित दस्तूरों को परिमित कर दिया है।

भंडार गृहों में भगवान् की भोग पूजा का सब सामान शुद्ध व प्रचुर मात्रा में रखा जाता है। यही नहीं वरन कमेटी ने जिले के अन्दर खाद्य सामग्री की न्यूनता को अनुभव कर यात्रा लाइन में मातवर दुकानदारों को काफी खाद्य सामग्री जमा रखने के लिये, विना सूद मन्दिर से काफी रुपया दिया, यही कारण है कि विशेष संख्या में यात्रियों के आने पर भी ऐसे कठिन समय में यात्रियों को अन्न का जरा भी अभाव न रहा।

कमेटी ने हर तीसरे वर्ष मुनासिव व्यय पर मंदिर का हिसाब किताब गवर्नमेंट औडीटर द्वारा जाँच करने का भी प्रबन्ध किया है।

इस समय कमेटी बराबर गवर्नमेंट से लिखा-पढ़ी कर रही है, कि गवर्नमेंट कानूनन प्रतिवर्ष यात्रा लाइन की तमाम चट्टियों में खाद्य सामग्री का भाव नियत कर दे और कोई भी दूकानदार खराब समान न रखने पावे। चट्टियों के दुकानदार यात्रियों के ठहरने के मकान धीरे-धीरे खास ढङ्ग के स्वास्थ्यप्रद व सुभीते के बनावें, साथ ही उन चट्टियों में जहाँ कि पानी का अभाव है या अशुद्ध जल है, शुद्ध जल का प्रबन्ध किया जाय और यात्रा लाइन में जितना शीघ्र जहाँ तक हो सके मोटर सर्विस जारी कर दी जाय। पुरी बदरीनाथ को टाउन एरिया बनाने के लिये भी प्रार्थना की गई है।

श्री बदरीनाथ मंदिर कमेटी पूर्ण विश्वास करती है कि उसकी यह सब सद्भावनायें श्री बदरीनाथ जी की दया से सफल होवेंगी और मन्दिर श्री बदरीनाथजी की दिनों दिन उन्नति तथा यात्रियों को निकट भविष्य में सब प्रकार की सुविधा प्राप्त हो जावेंगी।

सन् १९३९ का संयुक्त-प्रान्तीय श्री बद्रीनाथ मन्दिर-विधान

संयुक्त प्रान्त की लेजिस्लेटिव एसेम्बली द्वारा पास किया गया अप्रैल १९, १९३६) और लेजिस्लेटिव कौंसिल द्वारा पास हुआ (अप्रैल २६, १९३९)।

संयुक्त-प्रान्त के गवर्नर द्वारा भारत-विधान १९३५ के ७५ वीं धारा के अनुसार स्वीकृति और ता० ९ दिसंबर १९३९ के संयुक्त प्रान्त के गजट में प्रकाशित किया गया।

श्री बद्रीनाथ मन्दिर और उसकी भेंट की सुव्यवस्था और संचालक के लिये सुधारक विधान।

घोषणा

क्योंकि श्री बद्रीनाथ मन्दिर की व्यवस्था और संचालन का सुधार करना समयानुकूल है, अतः निम्नलिखित विधान बनाया जाता है।

(१) नाम और आरम्भ

(१) यह बद्रीनाथ मन्दिर कहा जाय।

(२) यह उस दिन से काम में आवेगा (१९३९) जिसको प्रान्तीय सरकार सरकारी गजट में सूचना देकर नियत करेगी।

(२) १९३३ का २० वाँ

इस विधान की यथार्थता मानी जावेगी, चाहे इसकी कोई बात १९३३ के 'रिलीजस इण्डोमेण्ड ऐक्ट' के विपरीत हो या इसके प्रबन्ध की उस योजना के प्रतिकूल हो जो इसके पास होने

से पहिले अदालत द्वारा बनाई गई हो या किसी भी घोषणा रूढ़ि और परम्परा के विरुद्ध हो। शर्त यह है कि यदि कमेटी अपनी स्वतन्त्र रीति से ठीक समझे तो वह प्रान्तीय सरकार की पूर्व प्राप्त अनुमति से विधान के आरम्भ के साल के भीतर ऐसी घोषणा, रूढ़ि और परंपरा जो कि बद्रीनाथ मन्दिर सम्बन्ध की भेंट से सम्बन्ध रखती है, स्वीकार तथा काम में लावें या विधान के आरम्भ होने के पश्चात् उनकी स्वीकृति को रद्द कर दे, और कमेटी उनको स्वीकृति देकर तथा काम में लाकर घोषित करे कि उल्लिखित घोषणा रूढ़ि तथा परिपाटी पूर्ण पालन होगी, किन्तु उसमें कमेटी संशोधन अथवा परिवर्तन करना ठीक समझेगी तो कर सकेगी।

(२) परिभाषा

इस विधान में यदि इसके विषय या प्रसंग में कोई बात न हो तो:—

(अ) 'मन्दिर' का अर्थ है गढ़वाल का श्री बद्रीनाथ मन्दिर तथा अन्य वे मन्दिर जो इसके अन्तर्गत हों तथा उनसे मिले हुए तथा उनके आधीन समस्त मन्दिर तथा वे समस्त मन्दिर जो विधान के काम में आने के पश्चात् बनाये जायँगे।

(ब) 'भेंट' का अर्थ है वह समस्त सम्पत्ति चल या अचल जो मन्दिर की हो, या उसके संचालन व सुधार के लिये दी या अर्पित की जाय अथवा वह जो बाद को जोड़ी जाय या जो मन्दिर के भीतर पूजा या उसके सम्बन्धित किसी सेवा-कार्य या दान में दी जाय, और इसके अन्तर्गत वे मूर्तियाँ भी हैं जो वहाँ स्थापित हैं और मंदिर के आस-पास की भूमि और वे समस्त भेंट जो मन्दिर की परिधि के भीतर किसी को दी जाय।

. . . .

(स) 'कमेटी' का अर्थ है श्री बद्रीनाथ मन्दिर की कमेटी जो इस विधान के अनुसार स्थापित की गई है।

(द) 'अदालत' का अर्थ है वह मूल दीवानी अधिकारों की विशेष अदालत जिसको स्थानीय परिधि के भीतर मन्दिर स्थापित है।

(ई) 'योजना' का अर्थ है प्रबन्ध की वह योजना जो १९०९ के सिविल प्रोसीड्यू आर कोड दी ९२ वीं धारा के नियमों के अनुसार अदालत द्वारा निश्चित् की गई हो।

(४) सम्पत्ति का समर्पण

मन्दिर तथा उन समस्त भेंटों का स्वत्व जो मन्दिर के लाभ के लिये या किसी व्यक्ति के लाभ या यात्रियों की सुविधा, आराम या लाभ के लिये अर्पित की गई हैं तथा भविष्य में की जावेंगी, श्री बद्रीनाथ जी को समर्पित होंगी और ५ वीं धारा के अनुसार स्थापित कमेटी के अधिकार में रहेंगी।

(५) कमेटी

(१) मन्दिर तथा उसकी भेंट का शासन-प्रबन्ध तथा संचालन एक कमेटी के हाथ में रहेगा, जो निम्नलिखित रीति से बनाई जावेगी—

(अ) टिहरी राज्य से तीन व्यक्ति जो विधान के लागू होने के छः महीने के भीतर टिहरी के महाराजा और प्रान्तीय सरकार की सहमति से नियोजित रीति के अनुसार निर्वाचित अथवा नामजद किये जायँ।

(ब) जिला बोर्ड गढ़वाल के हिन्दू सदस्यों द्वारा निर्वाचित गढ़वाल निवासी दो व्यक्ति।

(स) दो व्यक्ति जो संयुक्त-प्रान्त की व्यवस्थापक सभा के हिन्दू सदस्यों द्वारा निर्वाचित हों और एक व्यक्ति जो संयुक्त प्रान्त

की व्यवस्थापक समिति (लेजिस्लेटिव कौंसिल) द्वारा निर्वाचित हो।

(द) कमेटी सभापति तथा दो सदस्य जो प्रान्तीय सरकार द्वारा नामजद हों।

(२) कोई व्यक्ति जो हिन्दू धर्म को नहीं मानता तथा मन्दिर में होने वाली पूजा पद्धति को स्वीकार नहीं करता, कमेटी का सदस्य या उसके सभापति पद का अधिकारी नहीं बन सकता।

(३) सदस्यों तथा सभापति की नामजदगी, निर्वाचन तथा नियुक्ति सरकारी गजट में प्रकाशित होगी।

(६) नामजदगी और निर्वाचन के अभाव में सरकार द्वारा नियुक्ति

यदि प्रान्तीय सरकार द्वारा निश्चित तिथि के भीतर या ऐसे निर्वाचन या नामजदगी की बढ़ाई गई तिथि के भीतर कोई सदस्य निर्वाचित या नामजद जैसा भी हो, न हो सके तो रिक्त में प्रांतीय सरकार किसी व्यक्ति को नियुक्त करेगी।

इस उपरोक्त प्रकार के समस्त रिक्त स्थानों या यदि धारा पाँच की उपधारा (१) की शाखा (अ) के अनुसार किसी भी स्थान की रिक्तता के अवसर पर या विधान के आरम्भ होने के छः महीने के भीतर टिहरी के महाराज तथा प्रान्तीय सरकार में आपस में समझौता न हो सकने पर प्रान्तीय सरकार रिक्त स्थानों की पूर्ति ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति से करेगी जो केवल गढ़वाल के निवासी हों और जिनमें से कम से कम एक सूची पतित द्विजेतर जाति का हो।

(७) संयुक्तता

कमेटी श्री बद्रीनाथ मन्दिर कमेटी के नाम से कही जावेगी। यह एक संयुक्त संस्था होगी अविरल उत्तराधिकार तथा एक

समान मुहर की अधिकारिणी होगी और इसी उल्लिखित नाम से मुकदमा करने वाली तथा मुकदमा की जाने वाली होगी।

(८) सभापति तथा सदस्यों के पद की अवधि

कमेटी के सभापति तथा सदस्य धारा (५) की उपधारा (३) के अनुसार प्रकाशित सूचना की तिथि से तीन साल तक पद ग्रहण करेंगे। पुनर्नियुक्ति या पुनर्निर्वाचन के (जैसा भी हो) योग्य होंगे।

(९) टिहरी राज्य के साथ समझौता करने का प्रान्तीय सरकार का अधिकार

विधान के नियमों का पालन करते हुए और सदा मन्दिर की भलाई के उद्देश्य से टिहरी के महाराजा मन्दिर के सम्बन्ध में ऐसे अधिकारों का प्रयोग कर सकते हैं, जिन पर महाराजा और प्राचीन सरकार का आपस में समझौता हो चुका हो।

(१०) कमेटी के सभापति तथा सदस्यों को निकालने का प्रान्तीय सरकार का अधिकार

(१) निम्नलिखित आधार पर प्रान्तीय सरकार कमेटी के सभापति अथवा किसी सदस्य को कुछ समय के लिए अथवा सदा के लिए अलग कर सकती है:—

(अ) वह फौजदारी अदालत द्वारा किसी अपराध के लिये दोषी ठहरा दिया गया है, जो सरकार की राय में नैतिक दुराचरण समझा जाता है।

(ब) वह भ्रान्त चित्त वं बहरा, गूँगा या कुष्ट रोगी है।

(स) उसने दिवालिया बनने के लिये विज्ञप्ति की है अथवा दिवालिया घोषित कर दिया गया है।

(द) वह मंदिर के शासन-प्रबन्ध में दुराचरण या दुर्व्यवहार

का दोषी है अथवा उसको अलग करने के लिये कोई दूसरा पर्याप्त कारण प्रस्तुत है।

(ई) उसने मन्दिर में की जाने वाली पूजा-पद्धति मनाना या हिन्दू धर्म को छोड़ दिया है।

(फ) वह कमेटी की लगातार तीन से अधिक बैठकों में अनुपस्थित रह चुका है और कमेटी को अपनी अनुपस्थिति का सन्तोष-जनक कारण बतलाने में असमर्थ है।

(ज) एक वकील की हैसियत से उसने कमेटी के विपक्ष में किसी अदालती मामले में किसी व्यक्ति की ओर से पैरवी की है।

(ह) वह मन्दिर का एक वैतनिक कर्मचारी है।

(२) इस धारा के अनुसार कोई भी व्यक्ति नहीं निकाला जायेगा, जब तक कि उसको अपने निकाले जाने के विरुद्ध समुचित कारण दिखाने का पर्याप्त अवसर न दिया जाय।

(११) कमेटी स्थगित करने का प्रान्तीय सरकार का अधिकार

(१) यदि प्रान्तीय सरकार की राय में कमेटी विधान द्वारा दिये गये कर्तव्यों का अतिक्रमण या दुरुपयोग करे तो प्रान्तीय सरकार उचित जाँच के बाद सूचना द्वारा कमेटी स्थगित अथवा उसके अधिकार अपने हाथ में ले सकती है तथा विधान के नियमों के अनुसार एक दूसरी कमेटी स्थापित करा सकती है।

(२) उपधारा (१) के अनुसार सूचना प्रकाशित करने के पूर्व प्रान्तीय सरकार कमेटी के सम्मुख ऐसा करने के कारण प्रस्तुत करेगी और उसके प्रमाणों तथा आपत्तियों पर (यदि कोई हो तो) विचार करेगी।

(३) इस धारा अनुसार जहाँ एक कमेटी स्थगित तथा अतिक्रमित की जायेगी, वहाँ प्रान्तीय सरकार नई कमेटी की व्यवस्था

होने तक के लिये किसी व्यक्ति को नियत करेगी। जिसको कमेटी के सब कार्य और अधिकार सौंपे जावेंगे।

(४) प्रान्तीय सरकार ऐसे कर्मचारी के लिये कुछ वेतन निश्चित कर सकती है और वह मन्दिर की आय से दिया जावेगा।

(१२) रिक्त स्थानों की पूर्ति

(१) कमेटी के सदस्यों तथा सभापति के स्थान की अस्थाई रिक्तता की पूर्ति उसी रीति से होगी जो धारा पाँच में नियत की गई है।

(२) रिक्त स्थान की पूर्ति करने वाले नियुक्त या निर्वाचित (जैसा भी हो) सभापति या सदस्य की अवधि उस दिन समाप्त हो जावेगी, जिस दिन उस सभापति या सदस्य की अवधि समाप्त हो जाती है जिसकी जगह पर उसकी नियुक्ति हुई है।

(३) अस्थाई रिक्तता के कारण कमेटी द्वारा किया गया कोई भी कार्य असंगत नहीं समझा जावेगा।

(४) यदि स्थान रिक्त होने के तीन महीने के भीतर कोई सदस्य निर्वाचित या नामजद न हो सके तो प्रान्तीय सरकार उस स्थान पर किसी व्यक्ति को नियुक्त करेगी।

(१३) कमेटी का कार्यालय तथा बैठकें

(१) कमेटी अपना काम करने के लिये अपना कार्यालय ऐसे स्थान या स्थानों पर स्थापित करेगी जिनको प्रान्तीय सरकार नियत करेगी।

(२) कमेटी की बैठकों में सभापति या उसकी अनुपस्थिति में सदस्यों में से एक सभापति बनेगा।

(३) जब तक कम से कम चार सदस्य उपस्थित न हों तब तक किसी बैठक में कोई काम न हो सकेगा।

(१४) रावल, नायब रावल और मन्त्री

कमेटी मन्दिर के लिये एक रावल और एक नायब रावल नियुक्त करेगी। एक मन्त्री भी, जो इसका प्रधान शासक होगा।

(१५) कमेटी कर्मचारी और सेवक, उनकी नियुक्ति एवं दण्ड-विधान

(१) वर्तमान रावल अपनी मृत्यु पर्यन्त, पद-त्याग तथा कमेटी द्वारा निकाले जाने तक अपने पद पर रहेगा।

(२) रावल के स्थान के रिक्त होने पर कमेटी नायब रावल को रावल बनावेगी।

(३) रावल और नायब रावल ऐसे काम करेंगे और ऐसे अधिकार ग्रहण करेंगे जैसे कि कमेटी द्वारा नियत किये जायेंगे।

(४) कमेटी समय-समय पर प्रान्तीय सरकार की अनुमति से रावल, नायब रावल, मन्त्री और अपने कर्मचारी तथा सेवकों की संख्या, उपाधि; वेतन को ...... तथा अन्य श्रमजीविका को निश्चित करेगी।

(५) रावल, नायब रावल और मन्त्री की अपेक्षा जिनको कमेटी द्वारा ही दण्ड दिया तथा हटाया जा सकता है, कमेटी के सभापति को कमेटी द्वारा बनाये नियमों का पालन करते हुए अन्य कर्मचारी और सेवकों को नियुक्त करने तथा बदलने, नियमों की अवहेलना या अनुशासन का उल्लङ्घन करने पर या असावधानी, अयोग्यता, कर्तव्य की अवज्ञा या अन्य अपर्याप्त कारण के लिये जुर्माना करने, अवनत करने, थोड़े समय के लिये तथा सदा के लिये अलग करने का अधिकार होगा, परन्तु उस नौकर के विषय में जिसका वेतन ५०) मासिक से अधिक न हो, सभापति इस उपधारा के अन्तर्गत सभापति व मन्त्री की

आज्ञाओं के प्रतिकूल अपील आज्ञा निकलने के तीस दिन के भीतर की जा सकेगी।

(६) रावल, नायब रावल या मन्त्री, अपने निकालने का प्रस्ताव कमेटी में होने पर उसके तीस दिन के भीतर प्रान्तीय सरकार के सम्मुख अपील कर सकते हैं और प्रान्तीय सरकार उन समस्त अनुकूल और सुलभ सामग्री पर विचार कर जिसको ये विचारानुकूल समझें ऐसी आज्ञा निकाल सकती है, जो उसकी सम्मति में उचित और अनुकूल जँचे और उसकी ऐसी आज्ञा अन्तिम होगी।

(१६) सदस्यों का उत्तरदायित्व

कमेटी का हर एक सदस्य कमेटी के धन या अन्य सम्पत्ति के खोने, बर्बाद या दुरुपयोग करने के लिये उत्तरदायी होगा। यदि ऐसा खोना, बर्बादी या दुरुपयोग उसके सदस्य की हैसियत से हठ-पूर्वक किये गये काम या भूल का प्रत्यक्ष फल हो तो कमेटी या सरकार उसकी पूर्ति के लिये उसके प्रतिकूल दावा कर सकती है

(१७) सम्पत्ति

(१) कमेटी की पूर्व-प्राप्त आज्ञा के बिना कमेटी को दिये गए कोई आभूषण या अन्य स्थाई सम्पत्ति हस्तान्तरित नहीं होगी। यदि सम्पत्ति का मूल्य एक सहस्र रुपये से अधिक हो तो प्रांतीय सरकार की पूर्व प्राप्त आज्ञा आवश्यक होगी।

(२) कमेटी और प्रान्तीय सरकार की पूर्व प्राप्त आज्ञा के बिना कमेटी को दी गई कोई अचल सम्पत्ति, चीज या अन्य प्रकार के बन्धक में ली गई भूमि न पाँच वर्ष से अधिक समय के लिये ली या बन्धक में दी जा सकती है, न बेची या अन्य प्रकार से हटाई जा सकती है।

(१८) ऋण लेने के अधिकार पर नियन्त्रण

प्रान्तीय सरकार की पूर्व प्राप्त आज्ञा की अपेक्षा और किसी तरह भी कमेटी को किसी से रुपया ऋण लेने का अधिकार नहीं होगा।

(१९) लेखा-जोखा

प्रान्तीय सरकार हर साल मन्दिर की आय-व्यय व भेंट की जाँच के लिये एक आडीटर नियुक्त करेगी और उसके वेतन को भी नियत करेगी, जो मन्दिर के धन से दिया जावेगा। आडीटर अपनी रिपोर्ट (............) कमेटी के सामने प्रस्तुत करेगा और उसकी एक प्रति प्रान्तीय सरकार को भी भेजे, जो जैसा उचित समझेगी वैसे आदेश उस पर देगी और कमेटी ऐसे आदेशों को पूरा करेगी।

(२०) शासन प्रबन्ध की रिपोर्ट

प्रान्तीय सरकार द्वारा नियत किये गये समय पर कमेटी मन्दिर के शासन प्रबन्ध की वार्षिक रिपोर्ट प्रान्तीय सरकार को देगी।

(२१) हिसाब और सूचना माँगने का सरकार का अधिकार

प्रान्तीय सरकार को अधिकार होगा कि वह समस्त ऐसी सूचना और हिसाब माँगे जो उसकी सम्मतियों में उनको पर्याप्त सन्तोष दे सकता है कि मन्दिर अच्छी प्रकार रखा जा रहा है। उसकी भेंट उन उद्देशों के लिये ही लगाई जा रही है जिनके लिये वे आरम्भ की गई थीं तथा हैं। कमेटी माँगे जाने पर तुरन्त ऐसी सूचना व हिसाब प्रान्तीय सरकार को देगी। प्रान्तीय सरकार जैसा उचित समझे वैसे आदेश कमेटी को देगी और कमेटी उनको पूरा करेगी।

(२२) निरीक्षण

(१) प्रान्तीय सरकार मन्दिर सम्बन्धी चल या अचल सम्पत्ति, लेख पत्रादि, योजनायें, खर्च का हिसाब तथा अन्य पत्रादि का निरीक्षण करने के लिये एक कर्मचारी को भेजेगी। कमेटी तथा उसके कर्मचारी ऐसे अफसर के निरीक्षण के लिये सुविधा देने के लिये बाध्य होंगे।

(२) प्रान्तीय सरकार इस अफसर के लिये वेतन नियत करेगी और वह मन्दिर के धन से दिया जायगा।

(२३) कमेटी के कर्तव्य

इस विधान के नियमों तथा जो कोई नियम इसके अन्तर्गत बनें उसका पालन करना कमेटी का कर्तव्य होगा।

(१) मन्दिर में अच्छी प्रकार पूजा करने के लिये प्रबन्ध करना।

(२) यात्रियों को अच्छी प्रकार पूजा करने के लिये सुविधायें देना।

(३) बहुमूल्य जमानत व जवाहिरात आदि धन को निश्चित रखने और श्री बदरीनाथ के समर्पित सम्पत्ति की रक्षा करने का प्रबन्ध करना।

(४) दाताओं को विश्वास दिलाना कि जहाँ तक मालूम है उनकी इच्छा के अनुसार भेंट की आय का खर्च हो रहा है।

(५) पूजकों तथा यात्रियों के लाभ के लिये निम्नलिखित उत्तरदायित्व ग्रहण करना—

(अ) उनके रहने के लिये घर बनाना।

(ब) मन्दिर की सफाई के लिये नाली आदि बनवाना।

(स) आवागमन के साधनों का सुधार करना।

(६) धार्मिक उपदेश और साधारण शिक्षा के प्रचार के लिये उचित प्रबन्ध करना।

(७) पूजा करने वालों व यात्रियों की चिकित्सा का प्रबन्ध करना ।

(८) वैतनिक कर्मचारियों के लिये उचित पुरस्कारादि का प्रबन्ध करना ।

(९) मन्दिर और उसकी भेंट के समुचित प्रबन्ध और यात्रियों की सुविधा के लिये आवश्यक और लाभप्रद समस्त काम करना ।

(२४) मुकदमे व पैरवी पर नियन्त्रण

विधान के अनुसार की गई या मानी जाने वाली बात के लिये किसी अदालत में भी प्रान्तीय सरकार के प्रतिकूल मुकदमा या कार्यवाही नहीं हो सकती ।

(२५) कमेटी को उपनियम बनाने का अधिकार

(१) कमेटी इस विधान से या इसके अन्तर्गत बने नियमों या अन्य कानून से असंगत न होने वाले उपनियम निम्नलिखित रीति से बना सकती है ।

(अ) सभापति, सदस्य और मन्त्रियों के बीच कार्य-विभाजन ।

(ब) बैठकों की अपेक्षा जिस रीति से उनका निर्णय हो ।

(स) कमेटी की बैठकों की कार्यवाही का क्रम और उसका संचालन ।

(द) कमेटी के अधिकारों का व्यक्तिगत सदस्यों या उप समिति या उपसमितियों को दिया जाना ।

(इ) कमेटी के कार्यालय में रखे जाने वाले हिसाब किताब ।

(फ) कमेटी धन की संरक्षता तथा खपत ।

(ग) कमेटी के आय-व्यय के पट्टे में किसी मद का मिलाया जाना तथा किसी को निकाला जाना ।

(ह) कमेटी की बैठकों का समय या स्थान ।

(ई) इसकी बैठकों की सूचना देने की विधि।
(ज) बैठकों में शान्ति स्थापना और कार्य-क्रम का सञ्चालन और संम्पति के अधिकार जिनको वह इसके निर्णयों को लागू करने के लिये काम में लावेगा।
(क) बैठकों की कार्यवाही लिखने और प्रकाशित करने की विधि।
(ल) कमेटी को दिये गये धन की रसीद देने वाले पुरुष।
(म) मन्दिर के भीतर शान्ति रखना और उसके भीतर प्रवेश करने वालों की सुव्यवस्था।
(न) धारा २३ में निर्दिष्ट कर्तव्यों का पालन।

(२) कमेटी द्वारा निर्मित कोई उपनियम, आज्ञा रद्द हो, तो परिवर्तन लागू नहीं होगा जब तक कि वही सर्व साधारण की आलोचना के लिये प्रांतीय सरकार द्वारा प्रकाशित और तत्पश्चात् पुष्ट नहीं किया जावेगा।

(३) समस्त उपनियम पुष्ट हो जाने के बाद सरकारी गजट में प्रकाशित होंगे और उसके बाद कानून का बल ग्रहण करेंगे।

(२६) सरकार को नियम बनाने का अधिकार

(१) विधान के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये उससे संगति रखने वाले नियम बना सकती है।

(२) विशेष रूप से और बिना उल्लिखित अधिकार की व्यापकता के प्रति द्वेष रखते हुए ये नियम निम्नलिखित उद्देश्यों के लिये होंगे।

(अ) ये सब बातें जिनके लिये नियम बनाने के लिये विधान स्वीद्वारा विशेष रूप से आवश्यकता दिखलाई गई हो या स्वीकृति दी गई हो।
(ब) सदस्य का निर्वाचन, निर्वाचन के झगड़ों का निर्णय करने के लिये न्याय-विधान और उसका कार्य-क्रम।

(स) कमेटी द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले बजट, पट्टे, हिसाब, रिपोर्ट और अन्य प्रकार की रचना।

(द) कमेटी के कर्मचारी और सेवकों की विशेषतायें। उनके लिये प्रेसिडेण्ट फण्ड की स्थापना और साधारणतः उनकी नौकरी की शर्तें।

(ई) रावल, नायब रावल और मन्त्री को मिलाकर कमेटी के कर्मचारी तथा सेवकों को छुट्टी तथा यात्रा-व्यय की स्वीकृति।

(फ) कमेटी के सभापति और सदस्यों को वेतन और यात्रा व्यय (जब वे कमेटी के प्रबन्ध सम्बन्धी किसी कार्यवश यात्रा करें) का देना, इस शर्त पर कि उनका वेतन व यात्रा व्यय उससे अधिक न हो जो प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों को मिलता है।

(ज) कमेटी द्वारा वाह्य सदस्यों का बनाया जाना जो दो से अधिक न हो, पर उनके ऊपर यह प्रतिबन्ध हो कि उनको कमेटी की किसी बैठक में मत देने का अधिकार न होगा।

(ह) धारा ५ की उपधारा १ की शाखा (अ) और धारा ९ के अनुसार टेहरी के राजा और प्रान्तीय सरकार के बीच समझौते को लागू करना।

(३) सरकार सूचना द्वारा इस विधान द्वारा पुष्ट किसी एक या अधिक अधिकारों को अपने अधीन संस्था के हस्तान्तरित कर सकती है।

(४) इस धारा के अनुसार नियम बनाने के अधिकार पूर्व प्रकाशन की शर्त के आधीन रहेंगे।

(२७) मध्यावस्था का प्रबन्ध

(१) प्रान्तीय सरकार विधान के आरम्भ बाद और कमेटी की स्थापना से पहिले कमेटी के समस्त या किसी काम के लिये

एक या अधिक व्यक्तियों को नियुक्त करेगी जो छः महीने से अधिक समय तक के लिये नहीं होंगे।

परन्तु प्रान्तीय सरकार ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों की नियुक्ति की अवधि बढ़ा सकती है, जो एक साल से अधिक नहीं होगी।

(२) उपधारा (१) अनुसार नियुक्त एक या अधिक व्यक्ति उनकी अपेक्षा जो धारा (२) की शर्तों में दी गई है अन्य समस्त अधिकार और स्वत्व का अधिकारी होगा और उन समस्त उत्तरदायित्वों को ग्रहण करेगा को विधान से कमेटी के लिये नियत हैं।

२६-श्रीबद्रीनाथ यात्रा का वर्तमान प्रबन्ध

यं भाग्यवन्त मनुकम्पयसेऽनुकम्पा,
सम्पात रम्य नयनान्त महान्तरायान् ।
निर्धूयतेऽसुलभ दर्शन माप्नुवन्ति,
त्वामागतोऽस्मि शरणं बदरीवनेस्मिन् ॥ *

हम पहिले ही बता चुके हैं कि बद्रीनाथ यात्रा का विशेष प्रचार विक्रम की पाँचवीं शताब्दी में हुआ। उससे पहिले नाम-मात्र के छोटे-छोटे मन्दिर आदि रहे होंगे। तब कोई अत्यन्त साहसी साधु महात्मा ही यात्रा के लिये जाते होंगे। धीरे-धीरे टिहरी दरबार की ओर से सड़क तथा सदावर्त का प्रबन्ध होने लगा इससे अधिक लोग यात्रा के लिये जाने लगे। जब से खूब चौड़ी-चौड़ी सड़कें बन गईं, ऊँची-ऊँची चढ़ाई काट दी गईं, यात्रा भर में सफाई का प्रबन्ध हो गया। जगह-जगह औषधालय (अस्पताल) खुल गये, स्थान-स्थान पर शुद्ध पानी के नल लग गये, यात्रा काल में पुलिस का प्रबन्ध होने लगा, इन सभी सुवि-धाओं के कारण अब यात्रा पहिले की अपेक्षा बहुत सरल हो गई। अब तो जो भी चाहे यात्रा कर सकता है। जब से ऋषिकेष से कीर्ति नगर तक मोटर चलने लगी तब से और सुविधा हो

---

* हे बद्रीविशाल ! आप जिस भाग्यवान् के ऊपर अपनी अनुकम्पा कर देते हैं। वही बड़े-बड़े विघ्नों को पार करके आपके देव दुर्लभ दर्शनों को प्राप्त कर लेता है। इसलिये हे मेरे कमलनयन ! मैं आपके इस बदरी वन में आया हूँ।

गई। अब तो अल्मोड़े से कर्ण प्रयाग तक मोटर सड़क बन रही है, संभवतया अगले साल कर्ण प्रयाग तक मोटर पहुँच जायगी। फिर तो ३-४ दिन का ही पैदल रास्ता रह जायगा। फिर तो मंसूरी, नैनीताल, अल्मोड़ा तथा शिमले की तरह हवा खोरी और सैर सपाटे वाले जो भी चाहेंगे बद्रीनाथ जा सकेंगे। बद्रीनाथ यात्रा में कई संस्थाओं के अलग-अलग प्रबन्ध हैं। यहाँ सबसे पहिले हम सरकारी प्रबन्ध का संक्षेप में परिचय देंगे।

यात्रा में सरकारी प्रबन्ध

गढ़वाल जिले की राजधानी (सदर मुकाम) आज कल पौड़ी मानी गई है। अँगरेजी राज्य के पहिले श्रीनगर ही गढ़वाल के नरेशों की राजधानी थी और गढ़वाल भर में यही सबसे बड़ा नगर माना जाता था। अँगरेजों ने श्रीनगर के स्थान पौड़ी को उपयुक्त स्थान समझा। सन्१८४० में यह जिले का प्रधान स्थान बनाया गया। तभी इसकी बस्ती हुई, पहिले पौड़ी नाम का यहाँ एक छोटा-सा पहाड़ी गाँव था। जिलाधीश (डिप्टी कमिश्नर) प्रधान चिकित्सक (सिविल सार्जन) जिले के शिल्प विशेषज्ञ (डिस्ट्रिक्ट इञ्जीनियर) जिला सभा (डिस्ट्रिक्ट बोर्ड) आदि के प्रधान कार्यालय यहीं पर हैं। बद्रीनाथ यात्रा का समस्त सरकारी प्रबन्ध यहीं से होता है। यहीं के अधिकारी यात्रा पथ में दौरा करते हैं और स्वास्थ्य सफाई तथा शान्ति की व्यवस्था का निरीक्षण करते हैं। पहिले चिकित्सा विभाग को ही लीजिये।

यात्रा पथ में चिकित्सा का प्रबन्ध—रास्ते में जो यात्री बीमार हो जायँ उनके लिये यात्रा पथ में ९ सरकारी अँगरेजी औषधालय हैं। उनमें चिकित्सक (डाक्टर) सहायक चिकित्सक (कम्पाउण्डर) और मेहतर नौकर आदि रहते हैं। इनका निरीक्षण जिले के प्रधान चिकित्सक (सिविल सार्जन) करते हैं। हम पहिले ही बता चुके हैं सदावर्त के गाँवों की जो आमदनी होती

है उसमें कुछ सरकार भी सहायता मिला देती है। उसी से ये यात्रा पथ के धर्मार्थ औषधालय चलते हैं। पहिले सदाव्रत द्रव्य का उपयोग एक स्थानीय समिति के अधीन था। अब जिलाधीश (डिप्टी कमिश्नर) ही सर्वेसर्वा हैं चाहें जैसे खर्च करें।

स्वास्थ्य का प्रबन्ध—गढ़वाल जिले में स्वास्थ्य विभाग के पृथक् पदाधिकारी नहीं होते। जो इस जिले का प्रधान चिकित्सक (सिविल सार्जन) होता है वही जिले का स्वास्थ्य संरक्षक (डिस्ट्रिक्ट हैल्थ आफीसर) भी होता है। इस विभाग की तरफ से प्रत्येक चट्टी पर एक दो भङ्गी रहते हैं। इनके निवासगृह (क्वाटर्स) सरकार की ओर से प्रत्येक चट्टी पर पक्के टीन से छाये हुए बने रहते हैं। ये लोग यात्रियों को नियत स्थान पर शौच जाने को कहते हैं। चट्टी की सफाई करते हैं और इधर उधर की गन्दगी को दूर करते हैं। इनके काम देखने के लिए सफाई निरीक्षक (सेनेटरी इन्सपेक्टर) भी रहते हैं जो बराबर दौरा करते रहते हैं तथा सफाई का निरीक्षण करते हैं। यात्रा भर में ३ सफाई निरीक्षक हैं। जिनकी सीमायें बँटी हुई हैं। उन्हीं में बराबर घूमते रहते हैं। जब ६ महीने यात्रा बन्द हो जाती है, तो यात्रा की सड़क के आस-पास के गाँवों में जाकर स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रचार करते हैं व्याख्यान देते हैं लोगों के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में बताते हैं। इन सबके काम को स्वास्थ्य संरक्षक (हैल्थ आफीसर) देखते हैं और उनके दो सहकारी (असिस्टेण्ट हैल्थ आफीसर) भी होते हैं जो बराबर दौरा करते हैं और सफाई निरीक्षकों के भी कामों का निरीक्षण करते हैं। इसी विभाग की ओर से दो चलते फिरते चिकित्सक (हैल्थ डिपार्टमेन्ट के डाक्टर) होते हैं जो यात्रा में घूम-घूम कर दवा दारू देते हैं और यात्रियों के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में ध्यान रखते हैं।

सड़क, मकान तथा पुलों का प्रबन्ध—सरकार का एक

जनता की सुविधा के लिए शिल्प विभाग (पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेन्ट) है। इसका प्रधान शिल्पज्ञ (डिस्ट्रिक्ट इञ्जीनियर) पौड़ी में रहता है। इसके नीचे ६ शिल्प कार्य निरीक्षक (ओवरसियर) हैं। इनकी भी सीमायें बँटी हुई हैं। अपनी सीमा की सड़क का उसके अन्दर जितने सरकारी विश्राम गृह (डाक बँगले) हैं पानी के नल हैं तथा इस सम्बन्ध के जितने सरकार से संबंधित मकान हैं उन सबका निरीक्षण तथा मरम्मत ये शिल्प कार्य निरीक्षक (ओवरसियर) करते हैं। इनके नीचे तीन-तीन चार-चार जमादार रहते हैं एक-एक जमादार के अधीन दस-दस बीस-बीस कुली रहते हैं। ये सदा सड़कों की मरम्मत करते रहते हैं जहाँ कहीं सड़क टूट गई फौरन कुली वहाँ जाते हैं और ६ घन्टे में कम से कम उन्हें यात्रियों के निकलने योग्य तो रास्ता बना ही देना चाहिए। ये सड़क की मरम्मत करते रहते हैं, उस पर मिट्टी बिछाते हैं। छोटे-छोटे कामों को ये ही करते हैं। कोई बड़ा पहाड़ टूट जाय, अधिक सड़क टूट जाय, पुल टूट जाये तो ये काम ठेकेदारों के द्वारा कराये जाते हैं। यहाँ के डाक बँगलों में ठहरने के लिए जिले के शिल्पाधिकारी (डिस्ट्रिक्ट इञ्जिनियर) से आज्ञा लेनी पड़ती है। हाँ, रहने की बहुत ही आवश्यकता हो तो और डाँक बँगले में कोई न टिका हो तो एक दिन कोई भी प्रतिष्ठित यात्री नियत शुल्क ॥।) फीस जमा करके ठहर सकता है। उसकी सूचना उसे शिल्पाधिकारी को पौड़ी भेज देनी चाहिये।

पहिले यात्रा में कहीं-कहीं पानी का बड़ा कष्ट था। एक लखपती यात्री ने सरकार के खजाने में कुछ रुपये जमा कर दिये। उन्हीं से स्थान-स्थान पर पानी के नल लगाये गये हैं जिनमें आस-पास के झरनों से शुद्ध जल लाया गया है जो सदा बहता रहता है। ये भी सब इसी विभाग के अधीन हैं। इस विभाग

का भी अधिकांश खर्च सदावर्त के रुपयों से दिया जाता है। कुछ सदावर्ती धर्मशालायें भी हैं जो अब सरकार के अधीन हैं। उनमें अब यात्री तो कोई ठहरते नहीं। सरकारी काम में आती हैं। वैसे हैं ये मन्दिर की ही सम्पत्ति। इनकी मरम्मत भी इसी द्रव्य से होती है। इसी विभाग की देख-रेख में वे हैं। इनके निरीक्षण के लिये शिल्पाधिकारी (इंजिनियर) को ५०) मासिक वेतन अलग मिलते हैं।

डाक घरों का प्रबन्ध—हरिद्वार से लेकर बद्रीनाथ तक ६-६,७-७ मील की दूरी पर, स्थान-स्थान पर डाक घर तथा तार घर हैं। तार श्री बद्रीनाथ तक गया है। बहुत से डाकखाने तो यात्रा के दिनों में ही खोले जाते हैं। जैसे बद्रीनाथपुरी का पांडुकेश्वर का। आप अपनी चिट्ठियाँ इन डाकखानों में डाक-अधिकारी (पोस्ट मास्टरों) के द्वारा मँगा सकते हैं। खर्च कम हो तुरन्त अपने घर तार दीजिये। दूसरे दिन डाक हुण्डी (मनीआर्डर) आपके पास पहुँच जायेगा। इन डाकघरों का निरीक्षण भी इस विभाग के निरीक्षकों के द्वारा होता रहता है।

पुलिस का प्रबन्ध—गढ़वाल जिले में अब तक पुलिस नहीं होती थी, क्योंकि यहाँ के लोग इतने पिछड़े हैं कि उन्हें पुलिस की आवश्यकता ही नहीं होती। पटवारी ही यहाँ के पुलिस का काम करते हैं। यहाँ न सिपाही, न थानेदार, न थाना निरीक्षक। सब काम पटवारी, नायब तहसीलदार, तहसीलदार ही कर लेते हैं। जब से हम नीचे के उन्नत सभ्य लोग यात्रा में आने लगे तब से इस शान्त वातावरण में भी पुलिस की आवश्यकता प्रतीत हुई। हम ठहरे सभ्य ? चोरी, बदमाशी, लड़ाई झगड़ा, मुकद्दमा तथा कलह करना ही सभ्यता के प्रधान चिह्न हैं। इसीलिये अब थोड़े दिनों से यात्रा के दिनों में स्थान-

स्थान पर पुलिस की चौकियाँ भी होने लगी हैं। यात्रा के समय के लिये खास बद्रीनाथ जी में भी एक पुलिस थाना खुल जाता है। ये लोग क्या काम करते हैं भगवान् ही जाने। इनसे यात्रियों को कुछ लाभ हुआ है या परेशानी बढ़ गयी है, इसे कौन बतावे ?

यह तो हुई सरकारी प्रबन्ध की बात। अब आप काली कमली क्षेत्र के प्रबन्ध की भी बात सुनिये।

बद्रीनाथ यात्रा में काली कमली का प्रबन्ध—

उत्तराखण्ड की यात्रा में काली कमली क्षेत्र का भी प्रबन्ध एक प्रशंसनीय है, अतः अब संक्षेप में हम इसका भी परिचय पाठकों को करा देना चाहते हैं। पहिले यहाँ एक विरक्त महात्मा स्वामी विशुद्धानन्द गिरि जी महाराज निवास करते थे, उनकी तपस्या और सिद्धि की बहुत-सी बातें सुनी जाती हैं। सुनते हैं पहिले उन्होंने बद्रीनाथ जी से ऊपर नारायण पर्वत पर घोर तपस्या की, तभी भगवान् बद्रीनाथ जी ने उन्हें आदेश दिया कि तुम बद्रीनाथ यात्रा के यात्रियों की सुविधा का प्रबन्ध करो। भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य करके उन्होंने यात्रियों के लिये धर्मशाला और अन्न क्षेत्र आदि का प्रबन्ध करना आरम्भ कर दिया। वे सदा एक काली कमली ही रखते थे इसीलिये उनका पूरा नाम बहुत कम प्रसिद्ध हुआ, वे काली कमली वाले बाबा के ही नाम से समझे और बोले जाते थे।

काली कमली वाले महात्मा विशुद्धानन्द गिरिजी महाराज ने प्रथम यात्रा सम्वत् १९४१ में की थी। तभी से काली कमली क्षेत्र का जन्म हुआ। श्री स्वामी जी महाराज ने स्वयं यात्रा करके देखा यात्रा में गरीब आदमियों को ठहरने का, भोजन का बड़ा ही कष्ट है। उनकी यात्रा में पूछताछ करने वाला कोई नहीं है, वे यात्रा कष्टों से अधमरे हो जाते हैं कोई कोई मर भी जाते हैं। इन दुःखों को देखकर उनका हृदय द्रवीभूत हो गया और उन्होंने यात्रा पथ

में यात्रियों की सहायता के लिये कुछ करना निश्चय किया। वे कलकत्ते जाकर धनिक मारवाड़ियों से मिले और अपने मनोरथ को उनके सामने कह सुनाया।

इस सम्बन्ध में एक बड़ी ही मनोरंजक किंवदन्ती प्रसिद्ध है। स्वामी विशुद्धानन्द गिरी जी महाराज ने कलकत्ते जाकर बहुत से धनिकों से धर्मशाला तथा क्षेत्र खोलने को कहा। किन्तु सभी ने उनकी अनसुनी कर दी। हँसी में टाल दी। तब स्वामीजी ने सोचा—"बिना चमत्कार के नमस्कार नहीं होती।" उन्होंने एक फूटा घड़ा सिर पर रखा और उसमें दहकते हुए कोयले भर कर बाजार में होकर निकले। लोगों ने देखा महात्मा के नंगे सिर पर कोयले दहक रहे हैं। लम्बी-लम्बी लपटें निकल रही हैं, किन्तु सिर जलता नहीं। इस चमत्कार को देखकर सभी आश्चर्यचकित हो गये और उनकी आज्ञानुसार सब कुछ प्रबन्ध किया।

इस किंवदन्ती में कितना सत्यांश है। हम इसकी तह में जाना नहीं चाहते, किन्तु यह तो निर्विवाद है कि वे महात्मा सिद्ध परोपकारी तथा अद्वितीय दयावान् थे। वे ऋषीकेश में रह कर धनी मानी यात्रियों को धर्मशाला सदावर्त के लिये उपदेश देते रहते थे। जनता ने उन त्यागी महात्मा के उपदेशों की ओर ध्यान दिया और स्थान-स्थान पर क्षेत्र खुलने आरम्भ हुए। तेरह वर्ष तक महात्माजी ने इस परोपकारपूर्ण कार्य को अपने सामने कराया। सम्वत् १९१३ में वे गोलोकवासी हुए। तब तक नौ क्षेत्र सदावर्त के स्थान-स्थान पर खुल चुके थे। ऋषिकेश में साधुओं को भिक्षा दी जाती थी। क्षेत्र का काम दिनों दिन बढ़ता ही जा रहा, था कि बीच में उन्होंने अपना पञ्चभौतिक शरीर त्याग दिया।

महात्मा काली कमली वाले ने कोई शिष्य नहीं किया था।

परोपकार ही उनका कार्य था। उनकी विमल कीर्ति ही उन्हें अमर करने वाली निधि थी। विश्वास ही उनका उत्तराधिकारी था। उनके समीप में बहुत से साधु भी परोपकार के कार्य में हाँथ बटाते थे और उनकी आज्ञा का पालन करते थे। उनमें दो मुख्य थे। एक तो बाबा रामनाथ और दूसरे स्वामी आत्मप्रकाश जी। इन दोनों ने ही महात्मा विशुद्धानन्द गिरिजी के काम सम्हाला। कुछ काल के पश्चात् कलियुग के प्रभाव से इनको दोनों में कुछ मनोमालिन्य हो गया। अतः स्वामी आत्मप्रकाश जी ने मुनि की रेती के सामने उस पार एक स्वर्गाश्रम नाम की पृथक संस्था बना ली। वे भी अपने नाम के पीछे काली कमली वाला लगाते थे। पीछे वे अन्धे हो गये थे हमने उनके दर्शन किये थे। स्वर्गाश्रम बड़ी अच्छी शान्त एकान्त जगह है। आरम्भ में वह स्थान बड़ा ही रमणीक था और अच्छे-अच्छे महात्मा यहाँ आकर रहते थे। व्यवस्था भी सुन्दर थी। पीछे से दिनों दिन लोभ और स्वार्थ के प्राबल्य से इसकी व्यवस्था बिगड़ने लगी। स्वामी आत्मप्रकाशजी के परलोक होनेके बाद तो फिर यह एक उजड़ा हुआ वर्तमान कालीन महन्तों का मठ ही बन गया। यही स्वर्गाश्रम रह गया।* अस्तु स्वामी रामनाथ जी ने काली कमली क्षेत्र की बड़ी उन्नति की। ये भी अपने नाम के पीछे काली कमली वाला जोड़ते थे, इन्होंने तो बाबा रामनाथ काली कमली वाले को मकान, कागज, चिट्ठी-पत्री, कपड़े,पुस्तक आदि पर लिखा कर इतना प्रसिद्ध किया कि असली काली कमली वाले बाबा लुप्त हो गये और काली कमली वाले रामनाथ

---

*अब फिर इसके सुन्दर भविष्य की कल्पना की जा सकती है। वर्तमान समय में यहाँ पर अच्छे साधु महात्मा निवास करते हैं। —प्रकाशक

ही प्रसिद्ध हो गये। चाहे जो हों, इन्होंने काली कमली क्षेत्र का विस्तार बहुत अधिक किया, स्थान-स्थान पर धर्मशाला, प्यांऊ, सदावर्त क्षेत्र औषधालय आदि खोले तथा बहुत-सा धन भी क्षेत्र के लिये एकत्रित किया। स्वामी विशुद्धानन्द गिरिजी के अनन्तर लगभग २९ वर्ष इन्होंने क्षेत्र का काम सुचारू रूप से चलाया। संवत् १९२२ में इनका शरीरान्त हो गया। इसके पश्चात् बाबा मनीरामजी ने क्षेत्रका कार्य सम्हाला। एक प्रबन्धक समिति (ट्रस्ट) भी बन गयी थी। मनीरामजी तथा समिति की देखरेख में भी काम अच्छी तरह से होता रहा। दो तीन वर्ष हुए मनीराम जी का स्वर्गवास हो गया। तब से उसका प्रबन्ध कलकत्ता की 'काली कमली क्षेत्र समिति' के अधीन है। सभा-समितियों का जैसा लीचर और ढीला-ढाला कागजी काम होता है वैसा हो रहा है। बिना एक जिम्मेदार सच्ची लगन के त्यागी पुरुष के बिना ऐसे काम सुचारू ढँग से होते नहीं। किन्तु लगन के सच्चे कार्यकर्ता आटे के तो बनाये ही नहीं जाते वे तो भगवान् की ओर से भेजे जाते हैं। अपने आप पैदा होकर काम सम्हालते हैं। उनके अभाव में ही इन निर्जीव और नपुंशक समिति तथा सभाओं का निर्माण होता है।*

क्षेत्र का कार्य

काली कमली क्षेत्र का प्रधान कार्यालय ऋषीकेश है। इसकी

---

* सभासमितियों के सम्बन्ध में लेखक महोदय का यह मत अधिकांशत: ठीक है। परन्तु वर्तमान समय में "काली कमली क्षेत्र समिति" तत्परता से सेवा कार्य कर रही है और एक त्यागी सच्चे लगन वाले महात्मा को क्षेत्र में नियुक्त करने का विचार कर रही है, जिससे क्षेत्र का कार्य और अच्छे ढंग से चले।

—प्रकाशक

ओर से पहाड़ों में तथा देश में स्थान-स्थान पर क्षेत्र हैं जिनमें साधुओं को बना बनाया भोजन दिया जाता है। सदावर्त हैं जिन में सूखा सीधा मिलता है। जहाँ पानी का कष्ट है वहाँ यात्रा के दिनों में पानी पिलाने का प्रबन्ध है। गौशाला, पाठशाला, धर्मशाला, औषधालय आदि का भी प्रवन्ध है ऋषीकेश में जितने साधु रोटी लेने आते हैं उन सवको भिक्षा मिलती है। बद्रीनाथ को जाने वाले साधु सन्त तथा गरीव अभ्यागतों को प्रतिवर्ष नियत संख्या में सदावर्त को चिट्ठियाँ भी मिलती हैं, जिनसे नियत स्थानों में चिट्ठी वालों को सीध। सामान विना मूल्य के मिल जाता है। धर्मशालाओं में गरीब, अमीर सभी को ठहरने का प्रबन्ध है। प्रतिष्ठित यात्रियों को खातिर की चिट्ठियाँ मिलती हैं। जिन्हें दिखाने पर धर्मशाला के चौकीदार उन्हें यथायोग्य जगह देते हैं।

क्षेत्र के अधीन ऋषिकेश में एक आयुर्वेदिक महाविद्यालय तथा निर्माणशाला भी है जिसमें आयुर्वेद की शिक्षा दी जाती है तथा देशी दवाइयाँ तैयार को जाती हैं। इस समय क्षेत्र की ओर से लगभग ५७ सदावर्त, १२ औषधालय, ६५ धर्मशालायें, ४२ प्याऊ, ५ गोशाला, ३ पाठशाला तथा आयुर्वेद महाविद्यालय और औषधि निर्माणशाला हैं। इन सब में द्रव्य का उतना अभाव नहीं जितना प्रबन्ध का अभाव है। रामनाथजी ने अपने नाम से एक राम नगर भी ऋषिकेश से दो मील दूर बसाया है। बदरीनाथ के यात्रियों को इस संस्था से बहुत अधिक सहायता मिलती है। यात्रा में जाने वालों को ऋषिकेश में पहिले काली कमली क्षेत्र में जाकर अपनी आवश्यक सुविधाओं का प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

पंजाबी सिन्ध क्षेत्र का प्रबन्ध

काली कमली क्षेत्र के समान 'सिन्ध पंजाब क्षेत्र' नामक

कार्यालय भी ऋषिकेश में ही है। विशाल और विस्तृत भवन में इसका कार्यालय है। इसका कार्यक्षेत्र भी बड़ा विशाल है। इसमें कुछ ऐसे सेवा परायण पंजाबी भक्त हैं जो बिना विज्ञापन किये चुपचाप सेवा कार्य करते हैं। इसकी भी भीमगोड़ा, कनखल आदि में बड़ी विशाल शाखायें हैं। यत्रापथ में इसकी ओर से भी सदावर्त और अन्न क्षेत्र हैं जो भी यात्री चाहें यहाँ से अन्न ले आवे। ऋषिकेश में इस क्षेत्र की ओर से पाठशाला, अँगरेजी औषधालय (अस्पताल) आदि है। थोड़े ही दिनों में संस्था ने बहुत उन्नति की है।

इन्दौर राज्य की ओर से सदावर्त

इन्दौर राज्य की ओर से भी यात्रा में सदावर्त का प्रबन्ध था। वह अब भी है। किन्तु नाम मात्र का ही रह गया है। जहाँ और सदावर्त नहीं हैं, वहाँ इनकी ओर से हैं। बदरीनाथ में भी एक पंडा के द्वारा चिट्ठी वालों को मिलता है। इससे १०।५ यात्री अभ्यागत ही लाभ उठाते होंगे ?

सब यात्रा का प्रबन्ध देख सुनकर अब आइये। बदरीनाथ की यात्रा के लिये चलें। अब तो सब समझ ही लिया। रास्ता मेरा देखा हुआ है मेरे साथ आइये।

—०—

२७—श्री बद्रीनाथ यात्रा की तैयारियाँ

नार्य्याऽनुजात गुणग्राऽङ्क धृतैस्तनूजैः,
सर्वन्नमर्पयतुमुत्सुक एव धन्यः।
त्वासन्नमभ्युपैति कठिनेन पथाऽनपेक्त-
त्वामागतोऽस्मि शरणं बदरीवनेऽस्मिन् ॥

श्री बदरीनाथ यात्रा के सम्बन्ध में लोगों की विचित्र २ प्रकार की धारणायें जमी हुई हैं। प्राचीन काल में बदरीनाथ की यात्रा को वे ही लोग जाते थे जिन्हें मरना होता था। बद्रीनाथ के यात्री से घर वाले निराश हो बैठते थे। वह भी सिर पर कफन बाँध कर मृत्यु को आलिंगन करने की भावना से जाता था। भाग्यवश लौट आये तो ठीक है। नहीं बद्रीक्षेत्र में सद्गति तो हो ही गई। यात्री अपने दोनों हाथों में लड्डू समझकर ही आगे बढ़ता था।

"चढ़ै तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर।"

किन्तु अब वह समय नहीं रहा। बद्रीविशाल भगवान् ने इन हीनवीर्य कलियुगी जीवों की निर्बलता देखकर अपनी पुरानी कठोरता त्याग दी। अब वे सर्व साधारण के लिये सरल हो गये। अब चाहे जैसा भी सुख सुविधा में पला हुआ आदमी क्यों न हों, यदि उसे यात्रा का समय है तो वह जितने चाहें उतने आराम से यात्रा कर सकता है। खर्च की परवाह न करें। उसे पैदल चलना भी न पड़ेगा। हाँ अभी रेल, मोटर, घोड़ा-गाड़ी तो वहाँ तक नहीं जातीं, किन्तु मनुष्यों की सवारियाँ तो बड़े आराम से बद्रीनाथ पहुँचा देती हैं। वे सवारियाँ कई प्रकार की होती हैं।

यात्रा की सवारियाँ

अब बद्रीनाथ जाने के लिये श्रीनगर तक मोटर जाती है। अगले साल कर्ण प्रयाग तक भी मोटर जाने लगेगी। मोटर सड़क रुद्र प्रयाग तक गई है। आगे भी शीघ्रता से बन रही है। इस लिये जहाँ तक मोटर जाती है, वहाँ तक तो सवारी से जाने वाले यात्रियों को ४ प्रकार की सवारियाँ मिल सकती हैं। [१]घोड़ा, [२] झँपान, [३]डाँडी और [४] कंडी। अब इनका विवरण भी सुन लीजिये।

घोड़ा या टट्टू—श्री बद्रीनाथ तक घोड़े मजे से जाते हैं। नीचे जो लोग घोड़े की सवारी करते हैं, वे पहिले पहल पहाड़ों पर घोड़े की सवारी करने में भयभीत होते हैं। उन्हें डर लगता है कि घोड़ा कहीं ऊँचे नीचे से हमें लेकर स्वयं गिर न जाय, किन्तु पहाड़ी टट्टू बड़े अभ्यस्त होते हैं। छोटी से छोटी, कठिन से कठिन जगह में शरीर को साध कर बड़ी ही आसानी से निकल जाते हैं। पहाड़ी टट्टू सीधे भी बहुत होते हैं। वे बिना दौड़ाये अपने आप दौड़ते भी नहीं। जो शरीर से सबल हो, घोड़े की सवारी का अभ्यास हो या जो मनुष्यों की पीठ पर तीर्थ यात्रा में जाना न चाहते हों उनको घोड़े की सवारी उत्तम है। घोड़े वाले से तय कर लेना चाहिये। कोई बँधा हुआ भाड़ा नहीं है समय के अनुसार जो भी तय हो जाय।

झँपान—यह एक आराम कुर्सी की तरह होता है, इसमें आदमी आराम से बैठ सकता है। इसे प्रायः चार कुली उठाते हैं यदि मोटा यात्री हो तो ६ या ८ कुली भी लगते हैं। उनके लिये यात्री एक बोझ की गठरी ही है। कभी-कभी यात्री को तोल कर ही चढ़ाते हैं, जिससे पीछे झंझट न हो।

डाँडी—डाँडी भी वैसी ही होती है। जूए की तरह

उसमें आगे लकड़ी लगी रहती है। जिनमें दो कुली आगे दो पीछे लगते हैं। इसमें प्रायः एक ही आसन से बैठना पड़ता है झँपान से इसमें कम सुविधा रहती है। इसे भी ४ या ६ कुली ही ले चलते हैं। धनिक यात्रियों के लिये झँपान या डाँडी ही आराम-प्रद सवारी है।

कण्डी—जो गरीव वूढ़े यात्री हैं। पैदल नहीं चल सकते। झँपान, डाँडी किराये पर कर नहीं सकते, उनके लिए यह कंडी सवारी है। यह सवारी क्या है मौत है। एक बोझ ढोने की गठरी टोकरी-सी होती है। उसमें दोनों तरफ मजवूत रस्सी वँधी रहती है। उसमें पैर लटका कर गुड़ीमुड़ी मारकर यात्री बैठ जाता है। उस टोकरी को कुली पीठ पर लाद लेता है। पट्टे को माथे पर लगाकर एक हाथ में लकड़ी लेकर चलता है आदमी को आदमी उठा कर ले जाता है किन्तु किया क्या जाय विवशता सब कुछ करा लेती है। बद्रीनाथ स्वामी का आकर्षण इतना प्रबल होता है, कि मनुष्य किसी भी प्रकार की असुविधाओं की परवाह नहीं करता।

यह तो सवारी वालों के लिये हुई, अब हम सर्व साधारण यात्रियों के सम्बन्ध की वातों पर विचार करेंगे।

बद्रीनाथ यात्रा का समय

श्री बद्रीनाथ के पट वैशाख शुक्ला से कार्तिक तक खुले रहते हैं। कार्तिक के अन्त में अथवा मार्गशीर्ष के आरम्भ में भगवान् के पट वन्द हो जाते हैं। उस समय भगवान् की उत्सव-मूर्ति पांडुकेश्वर आ जाती है। ६ महीने उत्सव-मूर्ति की पांडुकेश्वर में ही पूजा होती है। वद्रीविशाल की पूजा देवता करते हैं। वरफ पड़ने से मनुष्यों का रहना उस समय असम्भव हो जाता है। प्रायः वैशाख शुक्ला अक्षय तृतीया के लगभग पट खुलते हैं। इसलिये यात्री अक्षय तृतीया के दिन पहुँचने की व्यग्रता करते हैं। वे

पट खुलते ही बद्रीविशाल के दर्शन करना चाहते हैं। उस समय बड़ी भीड़ रहती है। हरिद्वार से यात्री चैत्र में ही चल पड़ते हैं बहुत से तो पट खुलने से १०- ५ दिन पहले पहुँच जाते हैं। फिर जिसे जो सुविधा होती है, दर्शन करने जाता रहता है। कार्तिक तक यात्रा बराबर चलती रहती है। जिन्हें पट खुलते ही दर्शन करने हैं उन्हें तो चैत्र में जाना ठीक है, अथवा जिन्हें ज्येष्ठ, आषाढ़ में जाना ही है, किन्तु जिन्हें किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं, जो भीड़-भम्भड़ को पसन्द नहीं करते, जो पहाड़ी दृश्यों को यात्रा के साथ-साथ सुखद मनोरम दृश्य भी देखना चाहते हैं उन्हें जन्माष्टमी से लेकर क्वार के दशहरे तक यात्रा करनी सुखकर होगी। उस समय रास्ते की बर्फ गलकर धुल जाती है। गरमी शान्त हो जाती है। बद्रीनाथ में ठण्ड हो जाती है। पहाड़ों पर हरियाली छा जाती है। चट्टियों की गन्दगी दूर हो जाती है। भीड़ भाड़ छँट जाती है। चट्टियाँ खाली मिलती हैं और वातावरण पवित्र और सात्विक हो जाता है। पहाड़ी लोग इसी समय में यात्रा करते है। उनकी यात्रा श्रावण से शुरू होती है। लोगों की धारणा है कि भाद्रपद क्वार में वैशाख ज्येष्ठ की अपेक्षा वहाँ अधिक ठण्ड हो जाती हैं। किन्तु यह भ्रम गलत धारणा है। चैत्र से लेकर ज्येष्ठ तक जोशीमठ से इधर तक बड़ी गरमी पड़ती है और उधर बर्फ के कारण बड़ी सरदी होती है। वर्षा हो जाने पर बरफ गल जाने से ऊपर की सरदी कम हो जाती है और नीचे की गरमी भी हल्की हो जाती है। इसलिये यात्रा का उपयुक्त समय श्रावण के बाद ही है। फिर जिसे जैसी सुविधा।

यात्रा में आवश्यक सामान

यात्रा में क्या-क्या सामान ले जाना चाहिये। इसका निश्चित निर्णय कुछ भी नहीं किया जा सकता। हमने हजारों साधुओं

को देखा है उनके पास कुछ भी सामान नहीं। एक कम्बल लेकर नंगे पैरों जाते हैं। किसी पर सदावर्त की चिट्ठी होती है। किसी पर नहीं भी होती, कोई बिल्कुल नंगे ही जाते हैं। मजे में यात्रा करके लौट आते हैं। उनको सामान की क्या जरूरत जो धनिक हैं, जिनके पास पैसा है। मनमाने कुली ले जा सकते हैं। वे अपनी समस्त सुविधाओं की चीजों को ले जायँ। उनके लिये भी कोई निर्णय नहीं दिया जा सकता। किन्तु जो मध्यवित्त साधारण यात्री हैं। एक दो कुली पर ही सामान ले जाते हैं। उनके लिये कुछ सामान का विधान बताया जा सकता है। बहुत से आदमी जाड़े के कारण बहुत बड़ा बिस्तर बहुत से ऊनी कपड़े साथ ले जाते हैं, जो व्यर्थ का बोझ है। यात्रा भर में दो ही जगह ठंड हैं। केदार में और खास बदरीनाथ में शेष रास्ते भर कहीं ठण्ड नहीं। वैशाख ज्येष्ठ में तो जोशी-मठ तक बड़ी भारी गरमी होती है अतः एक दो कम्बल को छोड़कर अधिक ऊनी कपड़े लाने की जरूरत नहीं।

कपड़ों में इतने कपड़ों से काम चल सकता है—धोती दो जोड़ा, कमीज कुर्ते ४, कोट १, पायजामा एक ऊनी एक सूती, मोजा दो जोड़ी, साफी ४, बनियाइन या बंडी ४, साफा या पगड़ी एक, चद्दर दो, दरी एक, कम्बल २, तकिया १, तकिये के खोल २, ऊनी शाल १, एक आदमी को इतने कपड़े बहुत पर्याप्त।

बर्तन—१ लोटा, १ गिलास, १ कटोरी, १ बालटी बाकी तो बर्तन प्रत्येक चट्टी पर मिलते हैं। बोझा बढ़ाने की जरूरत नहीं।

दवा—रास्ते भर शफाखाने औषधालय हैं फिर भी त्रिफला, हिंगाष्टक चूर्ण, अमृतधारा, काली मिरच, सौंठ, मिश्री, सौंफ, अजवाइन, काला नमक। ये चीजें थोड़ी साथ रखनी चाहिये। क्योंकि भोजन के अतिक्रम से पेट में प्रायः गड़बड़ी हो ही जाती है।

और जरूरी चीजें—यात्रा में जूते बहुत जरूरी हैं रास्ते

में सब दूकानों पर मिलते हैं। फिर भी दो जोड़ी जूते रबड़ की तली वाले अवश्य साथ रहने चाहिए। छाता, मौमजामा, लालटैन, मौमबत्ती, दियासलाई, साबुन, कंघी, तेल (बाबू हों तो बाल बनाने का रेजर) नमक, पिसा मसाला ये चीजें जरूर साथ रहें। एक सबसे आवश्यक चीज है। नीचे लोहा लगी लाठी। लाठी के बिना पहाड़ी यात्रा अत्यन्त कष्टकर हो जाती है। लाठी से बड़ा सहारा मिलता है।

खाने की चीजें—बहुत से लोग खाने का सामान भी साथ रखकर बोझा बढ़ाते हैं। हरिद्वार से बद्रीनाथ तक ३-३ ४-४ मील पर बराबर चट्टियाँ बनी हुई हैं। उनमें खाने-पीने का सामान मिलता है और बनाने को बर्तन भी। दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह मील पर बड़ी-बड़ी चट्टियाँ तथा पहाड़ी कस्बे हैं, जहाँ सब देश की चीजें मिलती हैं। अतः दो-चार दिन के लिये थोड़ी जलपान की चीजों को छोड़कर और कुछ भी साथ न बाँधना चाहिये।

हाँ मेवा जरूर साथ रहे। पिस्ता,बदाम, किशमिश, छुआरों के टुकड़े, अखरोट ये सब खूब साफ करके मिला लिये जायँ। इनमें छोटी-छोटी मिश्री की कंकड़ियाँ भी मिला दी जाँय। यात्रा में चलते समय छटाँक आध पाव जेब में डाल ली। फिर देखिये कैसा आनन्द आता है। यात्रा मालूम ही न पड़ेगी। मिठास के साथ कितने ही चले जाइये।

यात्रा में कुली

जहाँ से मोटर छोड़ते हैं वहाँ से अपना बोझा ढोने के लिये कुलियों का प्रबन्ध करना पड़ता है। पहिले सब कुली ऋषिकेश से ही किये जाते थे। पैदल जाने वाले अब भी यहीं से करते हैं, किन्तु कीर्ति नगर तक मोटर जाने के कारण प्रायः सभी यात्री मोटर से जाते हैं, अतः अब तक श्रीनगर से कुली

करते रहे। कर्ण प्रयाग तक मोटर चली जायगी तो कर्ण प्रयाग में कुली होंगे। पहाड़ी कुली बड़े सीधे-साधे मेहनती होते हैं। कुलियों के लिये सरकारी आढ़त (एजेन्सी) भी है। वैसे भी मिलते हैं। इनमें बोझे को लेकर उसी हिसाव से तय करना होता है। साधारणतया एक कुली मन भर बोझा ले जाता है। अधिक भी ले जाते हैं। ये लोग रास्ते में बर्तन तक भी मल देते हैं। इनाम के लोभ से पैर दवा देते हैं, तेल मल देते हैं और भी आवश्यक सेवायें कर देते हैं, किन्तु गरीबी के कारण इतने गंदे रहते हैं कि इनसे कुछ काम लेने की इच्छा नहीं होती।

पंडे या पंडों के गुमास्ते

यात्रा आरम्भ करते ही हरिद्वार अथवा ऋषिकेश में बदरीनाथ के पंडे या पंडों के गुमास्ते मिल जाते हैं। बहुत से यात्रियों के साथ तो वे नीचे से ही आते हैं। गरमियों में वे नीचे देश में अपनी-अपनी जिजमानियों में घूमा करते हैं, किसी अच्छे धनिक सम्भ्रान्त यात्री को बदरीनाथ आते देखते हैं तो उसके साथ हो लेते हैं। बहुतों को उत्साहित करके लाते भी हैं ये प्रायः देवप्रयागी पंडे ही होते हैं, क्योंकि देश के लोगों के पंडे देवप्रयागी पंडे ही होते हैं। पहाड़ के लोगों के पंडे डिमरी पहाड़ी होते हैं। ये पंडे या गुमास्ते यात्रियों की सुविधा का बहुत ध्यान रखते हैं। इनसे नये याँत्रियों को बहुत सुविधायें मिलती हैं। किन्तु इनकी दृष्टि सदा दक्षिणा की ही ओर लगी रहती है। बड़ी-बड़ी आशा लगाकर यात्री को सुख सुविधा पहुँचाते हुए पैदल-पैदल कई सौ मील की यात्रा करके साथ जाते हैं। उन्हें पंडे वेतन देते हैं। धनी यात्रियों के पथ प्रदर्शक पंडे या पंडों के गुमास्ते ही होते हैं। अब आप यात्रा के लिये तैयार हो चुके न? तो अब देर न कीजिये चलिये अब यात्रा शुरू करें अब देर करने से क्या लाभ?

२८—श्री बदरीनाथ यात्रा

त्वन्मार्ग मध्य पतितान् विमलान् प्रयागान्
त्रीन् लोकभूमिकतया प्रतिमन्यमानः ।
कामन्नहं स्वयमनुष्ठित तीर्थकृत्य—
स्त्वामागतोऽस्मि शरणं बदरीवनेऽस्मिन् ॥

हरिद्वार से ऋषिकेश

श्री बदरीनाथ की यात्रा देश (मैदान में रहने वालों) के लिये हरिद्वार से ही आरम्भ होती है। हरिद्वार का नाम हरद्वार हरिद्वार, गंगाद्वार, कुशावर्त तथा क्षेत्र मायापुरी ये नाम प्रसिद्ध हैं। हरि-बदरीनाथ का द्वार है इससे हरिद्वार, हर-केदार नाथ जी का दरवाजा है, इसलिये हरद्वार भी ठीक है। गंगाद्वार तो प्रत्यक्ष है। यहीं आकर गंगा समतल भूमि पर उतरी हैं। नौका से उस पार जाइये। प्रत्यक्ष आपको ऐसा प्रतीत होगा मानों गंगाजी पहाड़ों में से दरवाजा बनाकर निकल रही हैं। दत्तात्रेय जी की पूजा की कुशाओं को गंगाजी बहा ले गई थीं। शाप के भय से उनके आवर्तों में फिर लौटकर कुशा, दत्त भगवान् के समीप आ गईं। इसलिये इनका नाम कुशावर्त पड़ा। पुण्यदात्री पवित्र ७ पुरियाँ मानी जाती हैं। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, उज्जैन और द्वारिका। इनमें माया-पुरी यही गंगाद्वार और हरिद्वारपुरी है। दक्ष प्रजापति का यज्ञ यहीं हुआ था, सती ने यहीं अपने पिता के यज्ञ में देह त्याग किया। मैत्रेय मुनि ने यहीं पर विदुरजी को भागवत की कथा सुनाई। हरिद्वार, मायापुर, कनखल, ज्वालापुर, और भीमगोड़ा

इन पंच पुरियों को मिलाकर हरिद्वार कहलाता है। सरकारी सम्बन्ध में भी इन पंचपुरियों की नगर समिति(म्युनिसिपैलिटी) एक ही है हरिद्वार ई० आई० आर० रेल का स्टेशन है। कलकत्ता पंजाब तथा देहली से सीधी गाड़ियाँ आती जाती हैं। रेल की यह लाइन देहरादून तक ही गई हैं। गरमियों में हरिद्वार में खूब चहल-पहल रहती है। हरि की पौड़ी की रङ्गभूमि (प्लेट-फार्म) की शाम शोभा अवर्णनीय होती है। जगह-जगह कथा, वार्ता, व्याख्यान, भजन, उपदेश, भण्डारे, दान लेने की दुकानें, देश-देश के रङ्ग-बिरङ्गे यात्री, वहाँ का घड़ी स्तूप (टावर) सायंकालीन गंगाजी की आरती। असंख्यों बड़ी-बड़ी मछलियों को यात्रियों के द्वारा आटे की गोलियाँ खिलाना, हरे दोनों में गुलाब के फूलों को भरकर उसमें दीपक जलाकर गंगाजी में प्रवाहित करना, ये सब बड़े ही सुखद दृश्य हैं। यात्री इस चहल-पहल को देखकर अपने को एक नये लोक में आया हुआ अनुभव करता है। सामने ऊँचे-ऊँचे पर्वत, नीचे हरी-हरी घास नहर निकालने के लिये जगह-जगह बाँध और पुल ये सब कहने सुनने के नहीं देखने योग्य ही दृश्य हैं। यहाँ सैकड़ों धर्मशालायें हैं, जिनका प्रवन्ध बड़ा ही सुन्दर है। भाटिया भवन अत्यन्त भव्य और सर्व सुविधा पूर्ण धर्मशाला है यहाँ पर कुशावर्त, नीलधारा, बिल्वकेश्वरशिव, उस पार चंडी देवी, दक्ष प्रजापति का मन्दिर, सप्तसरोवर, मायापुर, कनखल ये स्थान हैं। काँगड़ी, गुरुकुल, ज्वालापुर, महाविद्यालय, ऋषिकुल, आयुर्वेदिक महा-विद्यालय श्रवणनाथ, ज्ञानमन्दिर तथा बहुत से साधु अखाड़ों के मठ, मन्दिर, औषधालय, पुस्तकालय, बँगले, बगीचे दर्शनीय हैं बद्रीनाथ जी यहाँ से लगभग १८२ या १८४ मील हैं। यात्रा का सब सामान यहीं से खरीद लीजिये और जल्दी से ऋषिकेश को चल दीजिये। ऋषिकेश को मोटर, ताँगे भी जाते हैं। रेल भी

जाती है पैदल चलना हो यह तुम्हारी इच्छा। टहलते हुए चले चलेंगे १४-१५ मील कुछ अधिक तो है नहीं। किन्तु ताँगे, मोटर, रेल के रहते शक्ति भर पैदल कौन जाता है। आगे चाहे पैदल ही चलना पड़े। अच्छी बात है मोटर से ही चलिये। गठरी मुठरी बाँधकर हरि की पौढ़ी पर नहा धोकर श्राद्ध, पिंड तर्पण करके दान दक्षिणा लेकर, बोल बद्री विशाल लाल की जय। चलिए मोटर में बैठ जाइये। मोटर या ताँगा एक मील चलने पर दाईं तरफ भीमगोड़ा आता है।

भीमगोड़ा—लगभग हरिद्वार से मील भर आगे भीमगोड़ा कुण्ड है। यहाँ भीम के दर्शन हैं, कुण्ड हैं, धर्मशालायें हैं, इन्हें देखते-भालते साधु सन्तों के मठ बगीचों को देखते परदूनी, राया वाला स्टेशन होते हुए सत्यनारायण जी पर रुकिये।

६॥ मील सत्यनारायणजी—भीतर भगवान् सत्यनारायणजी का मन्दिर है। काली कमली क्षेत्र की धर्मशाला है। आटे की चक्की है, प्याऊ है, चने बँटते हैं। जल्दी चलिये, समय से ऋषिकेश पहुँचना भी है। पैदल होते तो इन बहुत से नदी नालों के घोड़ा पछाड़ आदि नाम भी बताते। अब तो बीबी वाला दुघू पानी, रामनगर होते हुए ऋषिकेश पहुँच जाइये।

ऋषिकेश (हरिद्वार से १४ मील)

हरिद्वार से अब आप १४ मील आये। हरिद्वार सहारनपुर जिले में है ऋषिकेश है देहरादून में। आसपास के गाँव जमीन सब भरत मन्दिर के अधीन हैं। भरत जी का मन्दिर प्राचीन और विशाल है। ऋषिकेश एक छोटा-सा कस्बा है। यह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। मेरे देखते-देखते जंगल से शहर हो गया। त्रिवेणीघाट पर स्नान कीजिये काली कमली, पंजाबी क्षेत्र, खुरजा वाली धर्मशाला, सहारनपुर वाली बहुत-सी धर्मशालायें

हैं। चाहे जिसमें ठहर जाइये। काली कमली, पंजाबी क्षेत्र के प्रधान कार्यालय यहीं हैं। काली कमली से सदावर्ती या खातिरी की चिट्ठी लेनी हो तो किसी तरह अपना परिचय देकर उसे प्राप्त कर लीजिये। जूता, लाठी भूल गये हों तो यहीं खरीद लीजिए। दवा दारू भी लेनी हो तो मूल्य देकर या बिना मूल्य ले लीजिए। पहिले यहीं से पैदल यात्रा होती थी। यदि आपको कीर्तिनगर मोटर से जाना है, तब तो आपको किसी पथ-प्रदर्शक की जरूरत ही नहीं। झट से मोटर अड्डे पर जाकर टिकट ले लीजिए। पट से गाड़ी में बैठ जाइए। सर्र से मोटर चल देगी। सट से शाम को देव प्रयाग पहुँच जाइये। यात्रियों की भीड के साथ ३-४ मील जाकर श्री नगर में काली कमली वाली धर्मशाला में सो जाइये। लीजिये बात की बात में आप ऋषिकेश से ६४ मील आ गये। यदि पैदल यात्रा की बहार देखनी है तो टिहरी राज्य की मोटर सड़क से न जाकर हमारे साथ गंगा पार करके उस पार गढ़वाल जिले की सड़क से चलने पर प्रकृति का दृश्य भी देखने को मिलेगा और चलने का अभ्यास भी हो जायगा। ऋषिकेश से थोड़ी दूर चलकर चन्द्रमाला नदी पड़ती है उसके पार टिहरी राज्य की सीमा आ जाती है। इस स्थान का नाम है मुनि की रेती। यहाँ टिहरी राज्य की चुङ्गी की चौकी थाना आदि है। पहिले यहीं से स्वर्गाश्रम को पार होते थे। इस मील डेढ़ मील टिहरी राज्य की सीमा से जाने का कारण है। यात्रियों को बहुत चुङ्गी देनी पड़ती थी। इस असुविधा को दूर करने को अब भरत मन्दिर के सामने से ही नौका से उस पार हो सकते हैं। टिहरी राज्य की भूमि रास्ते में पड़ती नहीं। मुनिकीरेती के सामने स्वर्गाश्रम है जिसके सम्बन्ध में हम पीछे बता चुके हैं इसलिये अब उधर क्यों जाना। सीधे लक्ष्मण झूला से पार हो लें, ऋषिकेश से लगभग तीन मील है

अब हम हरिद्वार से १७ मील आ गये बड़े-बड़े स्थानों के आगे जो हम संख्या लिख दें उससे समझ ल हरिद्वार से कितने मील आये।

लक्ष्मण झूला [हरिद्वार से १७ मील]—यदि आपने पहिले कभी पहाड़ की यात्रा नहीं की है तो आप लक्ष्मण झूला को देखकर विस्मित होंगे। लोहे के तारों का गंगाजी के ऊपर झूला की तरह पुल बँधा है। उसमें बीच में खम्भे नहीं। इधर उधर खूब मजबूत लोहे के मोटे-मोटे रस्सों से बँधा है। उस पर चलते हुए जोर-जोर से कूदिये। धीरे-धीरे पुल हिलेगा। झूले की तरह झोटे से लगेंगे। कमजोर हृदय वालों का हृदय धड़कने लगेगा। उस पार आ जाइये। अब आप निश्चित रूप से बदरी नाथ के रास्ते पर आ गये। इधर देश रहा। सामने पहाड़ी देश अब मन-ही-मन सबको नमस्कार कर लीजिये। लक्ष्मण झूला को हम पहली चट्टी मानते हैं। मन्दिर हैं, धर्मशाला हैं, पाठशा-लायें हैं, सदाव्रत हैं। अब तो लक्ष्मण झूला भी छोटा-मोटा शहर ही बन गया है। पहिले घोर जंगल था। यहाँ से दो मील आगे गरुड़ चट्टी है।

गरुड़ चट्टी—बड़ी सुन्दर बड़ी अनुपम जगह है बद्रीनाथ न भी जाना हो तो ऋषिकेश जाने वाले यात्रियों को भी दौड़कर इसका दृश्य देख आना चाहिये। मीलों लम्बा आम का बगीचा है अब तो कट रहा था। केले के पेड़ हैं, झरना है, कुण्ड हैं, गरुड़ भगवान् के दर्शन हैं। पहाड़ के ऊपर कुटिया है। बस और क्या कहें, 'अवसि देखिये देखन जोगूँ' यहाँ गरुड़ भगवान् की पूजा कीजिये। ये रास्ते भर आपके साथ रहेंगे। ये ही अपने पंखों के बल आपको बद्रीनाथ पहुँचायेंगे। 'बोल गरुड़ भगवान् की जय' चलिये चलें अब देर करने का काम नहीं।

अच्छा तो हाँ, यहाँ हमारा तुम्हारा एक फैसला हो जाय। आप कै मील चलना चाहते हैं? भाई ८ मील, अधिक से अधिक १० मील, इससे ज्यादा नहीं। बात तो ठीक कहते हो किन्तु बद्रीनाथ के यात्री का इस मामले में कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये। देश छोड़ते ही उसके सिर पर चलने का भूत सवार हो जाता है। चलने का उसे नशा हो जाता है। वह मोह ममता को छोड़ देता है। परिचितों की परवाह नहीं करता, साथियों को छोड़ देता है, सगे सम्बन्धियों से मुँह मोड़ लेता है। उसे एक धुन सवार हो जाती है आगे चलना है। सबसे एक ही प्रश्न पूछता है 'आगे की चट्टी कितनी दूर है?' वह शरीर के प्रति निष्ठुर बन जाता है, सुखों को तिलांजलि दे देता है। उसके जीवन का व्यापार चलना ही हो जाता है किसी तरह बद्रीविशाल लाल के दर्शन हो जायँ यही उसकी प्रतिक्षण मनोकामना बनी रहती है। उसका साथी बीमार हो जाय परवाह नहीं करेगा, सगा सम्बन्धी थक जाय, घायल हो जाय उसके लिये रुकेगा नहीं। डाँडी कर देगा। घोड़े का प्रबन्ध करेगा, किन्तु चलना बन्द नहीं कर सकता। वह जल्दी-से-जल्दी यात्रा समाप्त करना चाहता है। तुम भी यात्री ही तो हो। अभी बड़ी-बड़ी डींग हाँक रहे हो कि कितना चलेंगे इतनी देर आराम करेंगे, उस समय उठेंगे नहा धोकर पूजा पाठ करेंगे, भोजन करके आराम करेंगे। फिर २-४ मील धीरे-धीरे टहलते-टहलते चलेंगे, किन्तु जहाँ २-४ दिन चले फिर सब संध्या पूजा भजन भूल जाओगे। बिना नहाये धोये पेट पूजा करनी शुरू कर दोगे। हम यदि अकेले हों तो आठ नौ दिन में ऋषिकेश से पैदल मजे में पहुँच सकते हैं क्योंकि ऋषिकेश से १६८ या १६९ मील है। १८-२० मील रोज चलना हमारे लिये कोई बड़ी बात नहीं और चलते भी इतना किन्तु सब के साथ आनन्द से चलें। १२-१३ मील से अधिक

नहीं, ६-७ मील से कम नहीं। फिर जिसको जैसी सुविधा हो। हम उसी के अनुसार पड़ाव नियत करते हैं। पहिला पड़ाव तो हरिद्वार से ऋषिकेश। मोटर रेल या ताँगे से आइये या पैदल। १४-१५ मील है। अब दूसरा पड़ाव रखिये।

१२॥ मील ऋषीकेश से नाई मोहन (ह ० २६ मील)

ऋषीकेश से मुनि की रेती, लक्ष्मणझूला, गरुड़चट्टी होकर आगे बढ़िये। दो मील आगे फुलवारी चट्टी है। यहाँ गङ्गा और हिमवती (हिंडल) नदी का सुन्दर संगम है। मनोरम पर्वतीय दृश्य हैं। हम पहिले ही बता चुके हैं पहाड़ी रास्ते प्रायः नदियों के किनारे होते हैं। ऋषिकेश से लक्ष्मण झूला तक तो हम गंगा के बाँयें किनारे-किनारे आये। लक्ष्मणझूला पार करके दायें किनारे-किनारे फुलवारी चट्टी तक दायें किनारे-किनारे गंगाजी की घाटी से होकर चले। नीचे बहुत नीचे गंगाजी बह रही हैं। ऊपर पतली सी सर्पिणी के आकार की टेढ़ी मेढ़ी सड़क का सहारा लेकर हम चल रहे हैं मानों गंगाजी की शिखा सूत्र हो। फुलवारी चट्टी में हिंडल नदी गंगाजी में मिली हैं इसलिये उनके किनारे की घाटी से चलना पड़ता है। महादेव में काली कमली की धर्मशाला है। उससे आध मील आगे ही नाइमोहन चट्टी है। धर्मशाला में न ठहरना हो तो चट्टी में ही ठहरिये। ४-५ दुकाने हैं हिंडल नदी है। जल कम है। हाँ, एक बात याद रखें सोते समय नमक मिले गरम पानी से खूब मल-मलकर पैर धो डालिये तैल की मालिस कर लीजिये। इससे पथ का श्रम दूर हो जायेगा ऐसा रोज कीजिये! सावधान, हमें अब आगे याद न दिलानी पड़े नमक डालकर गरम पानी से रक्त का संचार ठीक हो जाता है। चलिये अब तीसरा पड़ाव है।

१४ मील नाई मोहन से महादेव चट्टी (ह० ४०॥ मील)

बस, अब पहाड़ी यात्रा का आनन्द आयेगा। एकदम पहाड़

की चोटी पर चढ़िये और फिर उतरिये। यह कठिन चढ़ाई है। यात्री दूसरे ही दिन इस चढ़ाई को देखकर डर जाता है। चढ़ाई का अन्त नहीं। चढ़ते-चढ़ते पैर थक जाते हैं शरीर पसीने से लथपथ हो जाता है। छोटा विजनी, बड़ी विजनी, नौढ़ाखाल, कुण्डबन्दर, भेलये छोटी-छोटी चट्टियाँ रास्ते में पड़ती हैं। इनमें किसी में एक किसी में दो चार दुकानें हैं। जहाँ थक जायँ वहीं लेट लगालें, जहाँ भूख लगे वहीं गरमागरम दूध लेकर चढ़ा जायँ। रास्ते भर प्रायः सब चट्टियों पर गरमा गरम दूध मिलता है पहिले तो बड़ा शुद्ध दूध मिलता था, किन्तु हम नीचे के अशुद्ध लोगों की भावना और संसर्ग ने उतनी शुद्धता नहीं रहने दी, रोटी बनाना चाहें तो सामान बर्तन लेकर रोटी बना लें। नहीं तो शाम को महादेवचट्टी में ही ठहरना ठीक होगा, क्योंकि वहाँ धर्मशाला भी है, शिवालय है। मील भर आगे डाक बंगला है। गंगास्नान का सुपास है और तुम्हें इससे अधिक सुविधायें चाहिये ही क्या? अब चौथा पड़ाव है।

९ मील महादेव चट्टी से व्यासघाट (ह० ५० मील)

अब फिर चलिये गङ्गाजी के किनारे-किनारे ही। दो मील तक तो अच्छा है, अच्छे के मानी आप यही समझें कि बहुत चढ़ाव उतार नहीं है। वैसे तो पहाड़ों में समतल भूमि कहाँ? कहीं चढ़ना तो कहीं उतरना है फिर चढ़ाई शुरू होती है। मील भर चढ़कर इससे छुट्टी पाइए। इस प्रकार ओखलघाट सिमालाखण्ड होते हुए काँडी आइए। भोजन बनाना हो तो यहीं बना लो। यह बड़ी चट्टी है, गोपालजी का मन्दिर है, छोटी धर्म-शाला भी है। दवादारू की जरूरत हो तो शफाखाना भी है। यहाँ से व्यास घाट तीन ही मील है। रास्ता सुन्दर है। व्यासघाट परम मनोरम स्थान है। गङ्गाजी बिल्कुल समीप हैं। नहाने का बड़ा सुभीता है काली कमली की धर्मशाला है वृत्रासुर के भय से

देवराज इन्द्र ने यहाँ शिवजी की तपस्या की थी। नयार (नव-वालिका) नदी यहीं आकर गंगाजी में मिली है, इसीलिए इसे इन्द्र प्रयाग कहते हैं। बड़ी जगह है पन्द्रह बीस दुकानें हैं बाँघाट और पौड़ी से जिलाबोर्ड की दो सड़कें यहाँ आकर मिलती हैं। उस पार व्यासजी का एक छोटा-सा मन्दिर है। कभी व्यासजी ने यहाँ आकर तपस्या की होगी। इससे आगे अब पाँचवाँ पड़ाव है।

८॥ मील व्यासघाट से देवप्रयाग (ह० ५९ मील)

अब डर की कोई बात नहीं, देवप्रयाग तक बड़ा सुन्दर रास्ता है। मीलभर आगे साक्षी गोपालजी मिलेंगे। श्रीजगन्नाथ जी जाते समय भी साक्षी गोपाल मिलते हैं। बिना गोपालजी को साक्षी कराए यात्रा व्यर्थ ही है। छालुड़ो उमरासू और सौड़ू इन छोटी-छोटी चट्टियों को पार करते, कहीं दूध पीते, कहीं चना चबाते आप देवप्रयाग पहुँच जाइए। बोल राजा रामचन्द्र की जय।

देव प्रयाग

देव प्रयाग अत्यन्त रमणीक स्थान है। श्री बद्रीनाथ मार्ग में देव प्रयाग, रुद्र प्रयाग, कर्ण प्रयाग, नन्द प्रयाग और विष्णु प्रयाग ये पञ्च परम पवित्र प्रयाग हैं। उनमें यह प्रथम प्रयाग है। भगवती भागीरथी और अलकनन्दा का सुन्दर संगम है, शोभा अनुपम है दृश्य नयनाभिराम है, संगम का दृश्य अकथनीय है। देव प्रयाग दो भागों में बसा है। अलकनन्दा के इस पार ब्रिटिश गढ़वाल है। उस पार टिहरी राज्य है। बीच में केवल पुल ही है। उस पार टिहरी राज्य की तहसील है, नगर समिति (टाउनएरिया) शफाखाना, न्यायालय (कचहरी) है इस पार काली कमली की धर्मशाला, बाजार, डाकखाना और मकान हैं। यात्रा में यह पहिला प्रधान तीर्थ है। बद्रीनाथ के देव प्रयागी

पण्डे यहीं रहते हैं। यहाँ आपको मोटी-मोटी वहियाँ लिये हुए पण्डों का दल दौड़ता उछलता, चिल्लाता मिलेगा। आप अपना नाम गोत्र बताइये। यदि आपके पूर्वज कभी भूले भटके यहाँ आए हों तो झट आपको घर भर के नाम मिल जायँगे। ये पंडे संभ्रान्त यात्रियों के बराबर साथ जाते हैं। टिहरी देव प्रयाग में श्री रघुनाथ जी का बड़ा ही विशाल प्राचीन मन्दिर है। विशाल भव्य मूर्ति दर्शनीय हैं। रघुनाथ जी की इतनी ऊँची मनोहर मूर्ति कम देखने में आई। यहाँ के भट्ट, दरवार की ओर से पूजा करते हैं। देव प्रयाग की चारों दिशाओं में चार शिवजी हैं जो क्षेत्रपाल माने जाते हैं। केदारखण्ड में देव प्रयाग का वड़ा माहात्म्य बताया है। कोई देव शर्मा नाम के ब्राह्मण थे, उनकी घोर तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् ने उन्हीं के नाम से इस परम पावन तीर्थ को प्रसिद्ध कर दिया। यहाँ यात्री पिंडदान करते हैं। विश्राम लेते हैं, चिट्ठी पत्री लिखते हैं आवश्यक सामान खरीदते हैं। पहाड़ का यह एक साधारण शहर ही समझा जाता है। यहीं से गङ्गोत्री, यमुनोत्री को रास्ता जाता है, यमुनोत्री यहाँ से ९९ मील और गङ्गोत्री १२५ मील हैं। टिहरी होकर रास्ता है टिहरी तीस मील होगी। यहाँ एक अलकनन्दा पर एक भागीरथी पर दो पुल हैं। देशी पण्डाओं की अपेक्षा यहाँ के पण्डे सौम्य होते हैं चार सौ पाँच सौ घर पण्डों के हैं। दशरथजी ने भी यहाँ तपस्या की थी इसलिये उनके नाम का यहाँ दशरथ पर्वत भी है जिससे शान्ता नदी निकलती है। यहीं बसन्त पञ्चमी को पहाड़ी मेला होता है। रघुनाथ जी के मन्दिर में बड़ा उत्सव मनाया जाता है सवारी निकलती है। देव प्रयाग का दूसरा नाम वाह भी है। अब छठा पड़ाव है।

(९ मील) देवप्रयाग से रानीबाग (ह० ६८ मील)

देव प्रयाग से अब अलकनन्दा के किनारे-किनारे चलना

पड़ता है। जो यात्री यहाँ से गङ्गोत्री जाते हैं उन्हें भागीरथी गङ्गा के किनारे-किनारे उस पार जाना होता है। भागीरथी गङ्गा यहाँ से छूट जाती हैं अब रह जाती हैं अलकनन्दा। अलकनन्दा के किनारे-किनारे आँख बन्द किये चले चलिये न बहुत चढ़ाई न बहुत उतराई। दृश्य मनोहर है, रास्ता साफ है, अलकनन्दा बहुत नीचे दिखाई देती हैं। उस पार टिहरी राज्य की कीर्ति नगर वाली मोटर सड़क भी दिखाई देती है। विद्याकोटि सीता कोटि दो छोटी-छोटी चट्टियों के पश्चात् रानीबाग आ जाता है। साधारण चट्टी है। पानी का सुभीता है। सभी खाने पीने की चीजें मिलती हैं। डाँक बँगला भी है। यहीं तान दुपट्टा सोइये। आगे चलना हो तो तीन मील रामचट्टी है। अब कल ही ठीक है। हाँ, तो सातवाँ पड़ाव है।

(११ मील) रानीबाग से श्रीनगर (कु० ७९ मील)

अब तो यात्री चलने का आदी हो जाता है। चले चलिये रानीबाग से रामपुर दिगोली की चट्टियों को पार करके भिल्ल केदारजी का मन्दिर सड़क के किनारे ऊँचे पर मिलेगा। बनवास के समय जब अर्जुन ने दिव्यास्त्रों के लिये शिवजी की तपस्या की थी, तब शिवजी यहीं भील (किरात) का भेष बनाकर अर्जुन के पास आए थे। अर्जुन ने साधारण भील समझ कर बड़ा भयङ्कर युद्ध उनके साथ किया। जब अर्जुन की एक भी न चली तो उन्होंने शिवजी की पूजा की। देखते हैं पूजा की सामग्री किरात वेषधारी शिव के ऊपर चढ़ रही है। अर्जुन समझ गए ये शिवजी हैं। उन्हें प्रसन्न किया, शिवजी ने अपना पाशुपतास्त्र दिया और समर विजयी होने का वरदान भी दिया।

कवि ने किरातार्जुनीय में बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। भिल्ल केदार के समीप ही खण्डव नदी अलकनन्दा में मिलती

है। इस संगम का नाम शिव प्रयाग है। इसके आगे ही श्रीनगर आ जाता है रास्ते में शङ्कर मठ मिलता है। बाईं ओर कमलेश्वर महादेव का मन्दिर छूट जाता है। तब चौपर के आकार का श्री-नगर शहर आ जाता है।

श्रीनगर

यह बहुत प्राचीन ऐतिहासिक स्थान है। सुनते हैं श्री शङ्करा-चार्य ने ही श्री यन्त्र पर इस शहर को बसाया था। अलकनन्दा में श्री चक्र अब भी है, सुनते हैं अब वह उलटा हुआ है, गढ़वाल नरेशों की राजधानी श्री नगर ही थी। सम्वत् १९५१ की बाढ़ में पुराना श्री नगर बह गया। तब यह नया नगर निर्माण हुआ। इस बाढ़ का इतिहास भी बड़ा विचित्र है। जिसे हम चमौली से आगे बतायँगे। इस बाढ़ में यहाँ के प्राचीन ऐतिहासिक राजमहल गैरोला मठ, श्री बद्रीनाथ मठ, केशोराय मठ, जैनियों के मठ आदि सभी बह गये। केवल शङ्कर मठ और कमलेश्वर महादेव का मन्दिर ये दो बच गये जो अब तक भी हैं। कुछ टूटे फूटे सुन्दर भग्न मन्दिर अब तक भी खड़े हैं। इस क्षेत्र का नाम श्री क्षेत्र है, सत्ययुग में कोई सत्यसन्ध नाम के राजा हो गए हैं। कोलापुर के उत्पातों से दुखी होकर महाराज ने श्री यन्त्र की स्थापना करके अलकनन्दा के बीच में महामाया दुर्गादेवी की आराधना की, उनकी तपश्चर्या से प्रसन्न होकर देवी ने वरदान दिया। उन्हीं के प्रसाद से महा बलवान् कोलापुर को मार सके। तभी से यह श्री क्षेत्र प्रसिद्ध हुआ।

भगवती अलकनन्दा जहाँ धनुषाकार हो गई हैं। इसे धनुष तीर्थ कहते हैं, यहाँ राजा नरिष्यमान के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को जब इन्द्र ने चुरा लिया तो राजा नरिष्यमान ने यहीं भगवान् को आराधना करके अश्व का पता लगाया। अतः इसे अश्व तीर्थ भो कहते हैं। यहाँ विष्णु भगवान् का एक मठ है जिसे शङ्कर

मठ कहते हैं। सुनते हैं गढ़वाल नरेश के किसी शङ्कर डोभाल ने इसे बनवाया था इसलिये इसका नाम शङ्कर मठ हुआ।

कमलेश्वर शिवजी का मंदिर भी बहुत प्राचीन अलकनन्दा के तट पर है। बाढ़ में यही मन्दिर बच गया। बात ऐसी है कि जब रावण का वध करके श्रीरामचन्द्रजी उत्तराखण्ड के तीर्थों का दर्शन करते हुए यहाँ आये तो उन्होंने सहस्र कमलों में शिवजी की आराधना आरम्भ कर दी, शिवजी ने एक दिन वैसे ही उनकी भक्ति प्रकट कराने के निमित्त एक कमल चुरा लिया। अब तत्काल कमल कहाँ से आवे। राघवेन्दु ने सोचा हमें लोग कमल नयन कहते हैं,कमल ऐसे समय भी काम न आये तो कब आवेंगे। उन्होंने अपना नेत्र निकालकर शिवजी के ऊपर ज्योंही चढ़ाना चाहा कि शिवजी ने प्रकट होकर उनका हाथ पकड़ लिया। कमलेश्वर भगवान् की मूर्ति बड़ी ही भव्य है। एक ओर थोड़ी कटी-सी प्रतीत होती है। उसके सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है कि पहिले यहाँ घोर जंगल था। कोई शिवजी की पूजा नियम से तो करता नहीं था, कभी कोई आ गया तो पूजा कर गया। एक गौ नियम से आती। आकर शिवजी के ऊपर खड़ी हो जाती, उसके स्तनों से अपने आप दूध की धारा बहने लगती। जब सब दूध चढ़ जाता तो वह चली जाती। गौ के ग्वाले ने सोचा "इस गौ का दूध कहाँ जाता है।" थोड़े दिनों बाद उसे पता चल गया एक दिन जब गौ वहाँ खड़ी होकर दूध चढ़ा रही थी ग्वाले ने छिपकर देख लिया। उसने कुल्हाड़ी का प्रहार किया। गौ के तो लगी नहीं, शिवजी के वह कुल्हाड़ी लग गई। तभी से शिव-लिंग कट गया है। कमलेश्वर महादेव श्रीनगर शहर से लगभग मील भर दूर अलकनन्दा के तट पर हैं।

श्रीनागेश्वर और कंसमर्दिनी के भी स्थान हैं हनुमान मन्दिर, गैरोलामठ, ठाकुरद्वारा संस्कृतपाठशाला ये सब स्थान भी प्रसिद्ध

हैं। अंग्रेजी हाईस्कूल, डाँकबँगला, डाकखाना, तारघर, शफाखाना तथा कुली एजेंसी का भी सरकारी प्रबन्ध यहाँ है। काली कमली की बड़ी धर्मशाला है, जिसमें एक विष्णु मन्दिर भी है। यहाँ की मूर्तियाँ बड़ी ही सुन्दर हैं। धर्मशाला बहुत बड़ी है, जिसमें जल आदि की सुविधा है। पहिले गढ़वाल जिले की कचहरियाँ तथा जिलाधीश का निवास स्थान यहीं था जब से ये सब कार्यालय पौड़ी चले गये और पौड़ी जिले का मुख्य स्थान (सदर मुकाम) मान लिया गया तब से श्रीनगर की मुख्यता कम हो गई नहीं तो गढ़वाल भर में यह सबसे बड़ा और प्रधान नगर था। श्रीनगर से हरिद्वार ७९ मील, कोटद्वार ५७ मील, पौड़ी ८ मील गंगोत्री १३० मील, यमुनोत्री १२० मील, केदारनाथ ७५ मील और बद्रीनाथजी १०८ मील हैं। यहाँ चाहें तो आप एक दो दिन निवास कर सकते हैं। हाँ, तो अब आठवाँ पड़ाव है।

[८॥ मील] श्रीनगर से भट्ठीसेरा [ह० ८६॥ मील]

श्रीनगर से आगे बिल्कुल देश का सा मार्ग है, उसी तरह की समतल सड़क वैसे ही घने आमों के बगीचे, अलकनन्दा शान्त हैं। शहर की शोभा दूर से सुन्दर और सुहावनी प्रतीत होती है। आगे शुकरता नाम की छोटी चट्टी मिलती है, कहते हैं पूर्वकाल में यहाँ व्यासनन्दन शुकदेवजी ने तपस्या की थी। इससे आगे फरासू नाम का गाँव मिलता है। ऐसी प्रसिद्धि है कि यहाँ परशुरामजी ने तपस्या की है। सम्भव है यहाँ पर उन्हें जन-संहारी परशु फरसा मिला हो। आगे भट्ठीसेरा की चट्टी मिलती है। काली कमली की धर्मशाला है, डाकखाना है, बड़ी बस्ती है, दुकान है बीच में एक नाला है आनन्द की जगह है। विश्राम योग्य स्थान है अब नवाँ पड़ाव है।

[११] मील भट्ठी सेरा से रुद्रप्रयाग (ह० ९८ मी०]

अब तक आपने खूब सीधा रास्ता तै किया। नाई मोहन

वाली चढ़ाई को भूल गये होंगे। अब लीजिये फिर चढ़ाई उतराई का ताँता लगा। डरिये नहीं बहुत कठिन चढ़ाई उतराई नहीं। पहाड़ियों के लिये तो सीधा ही रास्ता है। एवः निष्कंटका पंथा यत्र संपूज्यते हरिः। राम-राम करते हुए चढ़िये। फिर उतरिये फिर चढ़िये। इस प्रकार छाँतीं खाल खाकरा नर कोटा, पंच भयाखाल, गुलाबराय होते हुए रुद्र प्रयाग पहुँच जाइये। भोजन बनाने की चिन्ता हो तो गुलाब राय में ही बना खा लीजिये। बड़ी चट्टी है पानी का सुपास है। यदि चले चलें तो डेढ़ दो मील रुद्र प्रयाग पहुँच कर सब कुछ हो।

रुद्र प्रयाग

रुद्र प्रयाग के गाँव का नाम है पुनाड़। डाक बँगला रास्ते में ही आमों के पेड़ों के पास मिलेगा। सड़क से ऊपर रुद्र प्रयाग या पुनाड़ गाँव की बस्ती है। पहाड़ी कस्बा है। आगे अलकनन्दाजी का पुल है। यहीं से बदरीनाथ केदारनाथ को सड़कें अलग होती हैं। बदरी नाथ के यात्री सीधे अलकनन्दा के किनारे-किनारे चले जाते हैं। केदारनाथ के यात्री अलकनन्दा के पुल को पार करके संगम के समीप की सड़क से सड़ासड़ सटक जाते,हैं हमें वैसे तो सीधे ही चलना है। किन्तु यह पंच प्रयागों में से दूसरा प्रयाग है। लगे हाथों स्नान भी करते चलिये। रात्रि में रहना भी यहीं है और काली कमली की धर्मशाला भी पुल पार ही है। पार करते ही धर्मशाला मिलेगी। आगे मन्दाकिनी और अलकनन्दा का नयनाभिराम चित्ताकर्षक सुखद संगम है। जब दोनों आपस में जोर से टक्कर लगाकर मिलती हैं तो दोनों का जल बाँसों उछल जाता है। दृष्टि ठहरती नहीं, नयन तृप्त नहीं होते। उस पार टिहरी राज्य है। पुराने ढंग के झूले से उधर जाने वाले मन्दाकिनी पार करते हैं। इस पार ही नीचे संगम जाने को पटियाला महाराज की बनवाई सीढ़ियाँ हैं। रुद्रनाथजी का मन्दिर

है, संस्कृत पाठशाला है केदार खण्ड में लिखा है यहाँ पर नारद जी ने संगीत विद्या की कामना से शिवजी की आराधना की थी। तब शिवजी ने प्रसन्न होकर उन्हें संगीत विद्या का सम्पूर्ण रहस्य बताया। केदार खण्ड में इसका विस्तार से वर्णन है। यहीं से केदारनाथ जी को रास्ता जाता है जो केदारनाथ होकर चमौली (लाला साँगा) में फिर इसी बद्रीनाथ के रास्ते में मिल जाता है। अब दशवाँ पड़ाव है।

[७ मील] रुद्र प्रयाग से शिवानन्दी [ह० १०५ मील]

रुद्र प्रयाग में आप संगम पर हैं, या काली कमली धर्मशाला में है यदि आप को केदारनाथ होकर जाना है तब तो आप मन्दाकिनी के किनारे-किनारे सीधे चले जाइये। यदि सीधे बद्रीनाथ जाना है तो फिर से लौटकर अलकनन्दा के पुल को पार करके सीधे सड़क पर सरक आइये और चलिये। डेढ़ या दो मील आगे अलकनन्दा के उस पार कोटीश्वर महादेवजी का मन्दिर दिखाई देगा। जो मकान आदि दिखाई देते हैं ये तो सब वहाँ के महन्त जी के हैं। शिवजी तो बिलकुल अलकनन्दा जी के तट पर एक प्राकृतिक गुफा में हैं उनके ऊपर हमेशा प्राकृतिक जल बिन्दु टपकते रहते हैं। उस पार रुद्र प्रयाग से यहाँ आने को सीधी सड़क है। हम वहाँ गये थे बड़ा ही रमणीक स्थान है। इस पार से ध्यान से देखने पर स्पष्ट रूप से मूर्ति के दर्शन होते हैं। रास्ता बड़ा सीधा है मानों देश की कच्ची सड़क पर चल रहे हों। रास्ते में चट्टियाँ भी नहीं सुमेर पुर की छोटी-सी साधारण चट्टी है। उसके बाद तीन मील पर शिवानन्दी चट्टी है। शिवानन्द कोई गढ़वाल नरेश के मन्त्री थे, उन्होंने यहाँ एक विष्णु भगवान् का मन्दिर भी बनवाया था। कुछ गाँव भी पुराने जमाने के लगे हैं। छोटी-सी धर्मशाला भी है डाकघर है, पानी का सुपास है गंगा जी समीप ही हैं। यहीं

विश्राम कीजिये क्योंकि कर्ण प्रयाग यहाँ से ग्यारह मील है। अब ग्यारहवाँ पड़ाव है।

(११ मील) शिवानन्दी से कर्ण प्रयाग [ह० ११६ मील]

शिवानन्दी से भी रास्ता बड़ा सुन्दर है। प्राकृतिक दृश्य मनोरम हैं। देखते भालते चलिये, दो मील आगे नगरासू है जहाँ डाक बँगला भी है। फिर कमैड़ा है जोशी भाइयों की दूकान है, जल का सुपास है गरमागरम दूध मिलता है। मिठाई और समान भी मिलता है। आगे चलिये तो गोचर नाम का लम्बा चौड़ा मैदान मिलेगा। रास्ते भर में इतना विस्तृत समान मैदान इस पहाड़ में न मिलेगा। सुनते हैं पहिले कोई रानी यात्रा को जा रही थी। तब यहाँ बहुत-से खेत थे, किसी किसान के खेत में किसी की गौ चर रही थी। वह उसे बुरी तरह से मार रहा था। रानी को दया आ गई, उसने कहा—भाई गौ माता को इस तरह क्यों मारता है? उसने क्रोध में कहा—यदि तुम इतनी ही दया वाली हो तो इस जमीन को लेकर गौओं के चरने को लगा दो। हमारा नुकशान होगा तो हम मारेंगे ही। रानी को यह बात लग गई, झट उसने यह जमीन मोल लेकर गौओं के चरने को बंजर छोड़ दी। तब से इसका नाम गोचर पड़ा। बड़े पुराने-पुराने विशाल बरगद पीपल आम के पेड़ हैं। जब बद्रीनाथ के लिये हवाई जहाज चलते थे तब यहीं तक आते थे। उनके उतरने का यही अड्डा था। यहाँ से यात्री बहत्तर मील श्री बद्रीनाथ पैदल जाते थे। उस हवाई जहाज के व्यापारी के एक दो जहाज गिरकर टूट गये। उसे विशेष लाभ भी नहीं हुआ अतः हवाई जहाजों का जाना बन्द हो गया। अब तो मोटर ही आ रही है। इससे डेढ़ मील आगे चटवा पीपोली चट्टी है। ५-७ दुकानें हैं श्री सम्प्रदाय का मन्दिर है। बड़ी इलायची यहाँ बहुत पैदा होती है। आमों के खूब पेड़ हैं। अलकनन्दा समीप ही है।

चट्टी से थोड़ी ही दूर पर बाईं ओर शांति सदन नामक संस्था है इसके संस्थापक 'उत्तराखण्ड रहस्य, नामक पुस्तक के लेखक पं० शालिगराम जी वैष्णव हैं। आप पहिले तहसीलदार थे। सरकार की ओर से तीन साल श्री बद्रीनाथ मन्दिर के व्यवस्थापक (मैनेजर) भी रहे थे। आपके एक गोविन्दप्रसाद नाम के बड़े ही होनहार लेखक, कवि तथा कलाकोविद पुत्र थे जो प्रयाग विश्वविद्यालय में बी० ए० में पढ़ते थे। पढ़ते समय ही उनकी अकाल मृत्यु हो गई। अपनी एक मात्र सन्तान के नाम को स्थाई करने के निमित्त वैष्णव जी ने यहाँ "गोविन्द पाठशाला" नामक संस्कृत पाठशाला खोल रखी है, जिसमें आस-पास के बालक निःशुल्क विद्या पाते हैं। पुस्तकालय भी है, बड़ा रमणीक स्थान है, गंगा जी बिलकुल समीप हैं, उस पार जाने को यहाँ अलकनन्दा गंगाजी पर जिला बोर्ड का पुल भी हैं। इससे चार मील आगे कर्ण प्रयाग है।

कर्ण प्रयाग

पंच प्रयागों में से कर्ण प्रयाग तीसरा प्रयाग है। पहाड़ी कस्बा है। बहुत-सी दुकानें हैं सभी सामान मिलता है डाकघर, तारघर, शफाखाना, डाक बँगला, अँग्रेजी हाई स्कूल सभी यहाँ हैं। यह बड़ा महत्व का स्थान है। यहाँ से सड़क सीधी रानी खेत को भी जाती है। रानी खेत यहाँ से ६२-६३ मील है। भिकिया सैण पैंसठ मील है,जहाँ से अड़तीस मील रामनगर रेल स्टेशन तक मोटर जाती है। जब तक मोटर नहीं थी तो प्रायः लौटने वाले यात्री यहीं से जल्दी रेल मोटर मिलने के लोभ से रामनगर काठगोदाम होकर लौटते थे। अब तो कर्णप्रयाग तक ही मोटर जा रही है, इसीलिये अब वह रास्ता उतना चालू न रहेगा। देश में डाक रानीखेत के रास्ते से कर्णप्रयाग होकर

आती है। पुराना कर्ण प्रयाग इक्यावन की बाढ़ में जब पूरा वह गया तब यह नया नगर बसा है।

कर्ण प्रयाग में पिंडर और अलकनन्दा का सुन्दर संगम है। दूर से देखने में संगम का दृश्य बड़ा ही मनोरम प्रणवाकार दिखाई देता है। प्रधान सड़क से थोड़ा हटकर संगम है। पिंडर के पुल से संगम को सड़क गई है। शहर में काली कमली की तथा सदावर्ती सरकारी धर्मशाला है। संगम पर शिवालय है, साधुओं के ठहरने को स्थान है। दृश्य बड़ा नयनाभिराम है। संगम के सामने ही उमा देवी का प्राचीन मन्दिर है। महादानी कर्ण ने उमा देवी का आश्रय लेकर अजेय बनने के लिये यहाँ सूर्यदेव की आराधना की थी। जिससे उन्हें अभेद्य कवच और अक्षय तूणीर मिले थे। तभी से इस स्थान का नाम कर्ण प्रयाग पड़ा। संगम के जल में एक कर्ण कुण्ड भी बताया जाता है जो बहुत गहरा है। उस तीक्ष्ण धार में कर्ण कुण्ड का पता लगाने कौन जाय। पाँचों प्रयागों में जब हमने भागवत सप्ताह किये थे तब यहाँ संगम पर ही रहे। दोनों गङ्गाओं के जल की टक्करों से हर समय एक अनिर्वचनीय शब्द होता रहता है। यहाँ भी संगम स्नान, दान और तर्पण का माहात्म्य है अब आगे बारहवाँ पड़ाव है।

[१२ मील] कर्णप्रयाग से नन्दप्रयाग [ह० १२८ मील]

कर्णप्रयाग से चलिये रास्ता सीधा है दो मील पर उमट्टा चट्टी मिलेगी। फिर जैकण्डा तब लगासू। लगासू चट्टी का दृश्य बड़ा ही सुन्दर है। देखने से देश का सा दृश्य मालूम पड़ता है मानों हरिद्वार ऋषिकेश में बैठे हों। एक हिन्दी पाठशाला है मन्दिर है, उपजल है ऐसी जगह धर्मशाला का अभाव बहुत अखरता है। सड़क-सड़क जाने से रास्ता में थोड़ी चढ़ाई-उतराई

पड़ती है। गङ्गा किनारे-किनारे पगडण्डी से जाने से चढ़ाई-उत-राई थोड़ी बच जाती है। यहाँ के दृश्यों को देखकर हृदय अपने आप नाचने लगता है। और नेत्र देखते-देखते थक जाते हैं। थके हुए यात्रियों के लिए ये दृश्य कुछ नहीं के बराबर हैं। उन्हें तो एक ही ध्वनि है—"चलि रे मन बदरीनाथ।" उन्हें बदरीनाथ बाबा को देखना है जिनके देखने से सब देश देख लिये जाते हैं। वे अपनी धुनि के पक्के होते हैं—उनका यही निश्चित सिद्धान्त होता है—धुनि धुनि रे धुनिया अपनी धुन। पराई धुनी का पाप न पुन। लंगासू से नावलो सोनला को छोटी-छोटी चट्टियों को पार करते हुए नन्द प्रयाग पहुँच जाइये।

नन्द प्रयाग

पञ्च प्रयाग में से नन्द प्रयाग चौथा प्रयाग है। डाकघर, तार घर, डाक बंगला, हिन्दी मिडिल स्कूल आदि यहाँ हैं। पहाड़ी कस्बा है सभी चीजें यहाँ मिलती हैं। यहाँ से आगे स्थूल बदरी है। यह स्थूल बदरी क्षेत्र की सीमा है। बदरी क्षेत्र के चार रूप बताये गये हैं,स्थूल (नंदप्रयाग से विष्णुप्रयाग तक) सूक्ष्म (विष्णु प्रयाग से देव देखनी तक) अति सूक्ष्म (देव देखनी से ऋषि-गङ्गा तक), विशुद्ध क्षेत्र (ऋषि ङ्गगा से माणा तक) नन्द प्रयाग का नाम कण्वाश्रम भी है कहते हैं कण्व ऋषि ने कभी यहाँ तपस्या की थी। वैसे कण्व ऋषि का स्थान तो भाबर में मालती नदी के किनारे है जो बिजनौर के समीप गङ्गाजी में आकर मिली है। नन्द प्रयाग नन्दा और अलकनन्दा का संगम है। यहाँ श्री भागवत दासजी वैष्णव द्वारा स्थापित गोपालजी का मन्दिर है। इस इतने बड़े तीर्थ में एक भी धर्मशाला नहीं है। एक सड़क अल्मोड़ा से गरुड़ होती हुई यहाँ आकर मिलती हैं। अल्मोड़े से आने वाले यात्री इसी सड़क से आते हैं गरुड़ यहाँ से पैंतालीस मील है और बदरीनाथ ५४-५५ मील है। यहाँ पर किसी नन्द

नामक राजा ने यज्ञ किया था इसीलिये इसका नाम नन्द प्रयाग पड़ा। यहाँ लक्ष्मी नारायण का मन्दिर भी है जिसे बद्रीनाथ मन्दिर से कुछ वार्षिक धन मिलता है। पुराना शहर बाढ़ में बह जाने पर यहाँ नया नगर बसा है। यहाँ से लाल सांगा या चमोली छः मील है जो कर्ण प्रयाग से लेकर बद्रीनाथ की तहसील है। गढ़वाल जिला लम्बाई के हिसाब से भारतवर्ष में सबसे बड़ा जिला होगा। पहिले जिले भर में एक ही तहसील थी। अब पौड़ी, लैंसडौन और चमौली तीन हो गई हैं। चमौली के बराबर लम्बी तहसील भी दुनिया भर में शायद ही कोई होगी। फिर भी यहाँ तहसीलदार नहीं रहता। नायब तहसीलदार ही काम करता है। इसलिये तेरहवाँ पड़ाव चमोली ही ठीक रहेगा।

(७ मील) नंदप्रयाग से चमौली लालसाँगा [इ० १३५ मील]

नन्द प्रयाग से चलिये सीधा रास्ता है। दृश्य सुन्दर हैं। सड़क समतल है, अलकनन्दा का किनारा है। तीन मील पर मैंठाणा चट्टी मिलेगी। साधारण गाँव है। यहीं के नामसे मेठाणा ब्राह्मण प्रसिद्ध हैं। नालों और पुलों की भरमार है। आगे कुहेड़ चट्टी आती है। बस इसके बाद लाल साँगा आ जाता है। एक ओर बाजार है, डाकघर, तारघर, अस्पताल काली कमली की धर्मशाला सत्र पास ही पास हैं। दूसरी ओर कचहरी, डाकबँगला आदि हैं। बाढ़ में पुराना नगर बह जाने पर फिर से यहाँ कचहरी आदि बनी हैं। नया बाजार बना है। यहाँ अलकनन्दा जी पर बड़ा पुल है। सुनते हैं पहिले पुल लाल रङ्ग से पोता गया था इसलिये इसका नाम लाल साँगा पड़ गया, किन्तु अब तो पुल काले रङ्ग का हो गया है। रुद्र प्रयाग से यात्री केदार होकर बदरी जाते हैं वे लौटकर यहीं लाल साँगा के पुल पर मिलते हैं। केदारनाथ यहाँ से ६४, ६५ मील तथा बदरीनाथ ४७ मील हैं। काली कमली की धर्मशाला यहाँ बड़ी है।

गंगाजी यहाँ से बहुत नीचे हैं। यहाँ से अब जल्दी-जल्दी चलना है। अब चौदहवाँ पड़ाव है।

(९ मील) चमौली से पीपल कोटि (ह० १४४॥ मील)

चमौली से गंगा के किनारे-किनारे बड़ा सुन्दर रास्ता है। चट्टियों की भरमार है। मील-मील पर चट्टी ले लीजिये। दो मील पर मठ चट्टी है। गाँव बड़ा है। कई दुकानें हैं। दूध पीना हो, पेड़े उड़ाने हों, चने चबाने हों तो खरीद लीजिये। आगे मील भर पर छिनका चट्टी है फिर बोला है। इसके आगे ही बिरही गंगा और अलकनन्दा गंगा का संगम है। सम्वत् १९५१ की बाढ़ यहीं से आरंभ हुई थी। बाढ़ का भी वृत्तान्त सुनते चलिये। सं० १९५० (सन् १८९३) में एक दिन सहसा एक बड़ी भारी पहाड़ की चोटी टूटकर विरही नदी में गिर पड़ी इस स्थान का नाम 'गौना' था जो संगम से छः मील ऊपर था। इस बड़े भारी पहाड़ के गिरने से विरही गंगा का बहाव एकदम रुक गया। पहाड़ी नदी ठहरी। दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़, जल का प्रवाह कभी बन्द नहीं होता था। नदी को निकलने का रास्ता नहीं था। ११ महीने तक पानी एकदम रुका रहा। परिणाम यह हुआ कि २५ मील की गोलाई का हजार फुट गहरा एक बड़ा भारी तालाब बन गया। सरकार की तरफ से इस जल को निकालने का बड़ा भारी प्रबन्ध किया गया। लाखों रुपये खर्च किये गये, हजारों कुली वहाँ काम करते। बहुत से शिल्प विद्या विशारद (इञ्जीनियर) वहीं एकत्रित हुए। वहाँ का प्रबन्ध ही अलग लेना पड़ा। पौड़ी तक तार लगाया गया, लोगोंका विचार था नहर बनाकर कहीं से इस जल को निकाल देंगे, किन्तु उन पहाड़ की चट्टानों को काटकर नहर बनाना साधारण कार्य नहीं था। इसलिये सोचा गया, जैसे हो तैसे इस जल को धीरे-धीरे अलकनन्दा में ही बहाया जाय। इसके लिये कुछ पहाड़ी चूहे

सँगाये गये और भी कुछ उपाय किये गये कि धीरे-धीरे सब पानी बह जाय। किन्तु भवितव्यता बड़ी बलवती होती है। मनुष्य सोचता कुछ है हो जाता कुछ है। सहसा एक दिन (२५ अगस्त सन् १८९४ को) आधी रात के समय जल का बाँध एकदम टूट पड़ा। उसकी बाढ़ से हरिद्वार तक से समस्त नगर बह गये। लोगों को पहिले ही सूचना दी गई थी कि बाढ़ आने वाली है। गाँव भी खाली कराये गये थे, किन्तु पता किसे था ऐसा होगा। चमोली के बाजार लोहे का पुल, मन्दिर सब बह गये। इसी तरह नन्दप्रयाग के बाग बगीचे, मन्दिर, पुल, बाजार, सब चौपट हो गये। कर्ण प्रयाग एकदम नष्ट हो गया, उसके खँडहर भी नहीं बचे। रुद्र प्रयाग का पुल और नगर का नामों निशान भी न बचा। श्रीनगर की समस्त श्री महाराज के प्राचीन ऐतिहासिक किले, प्राचीन सैकड़ों मठ मन्दिर, बाजार सब जल-राशि में स्वाहा हो गये। उन मन्दिरों के ध्वंसावलेश खँडहर उनकी अद्भुत कारीगरी की अब भी साक्षी दे रहे हैं। देव प्रयाग बहुत ऊँचे पर था, किन्तु वह भी आधा एकदम बह गया। व्यासघाट सफा हो गया। ऋषिकेश के साधुओं की कुटियाँ बह गईं। आपस में नमोनारायण करते-करते साधुओं ने कुटियों के साथ ही जल-समाधि ले ली। हरिद्वार में आते-आते जल की बाढ़ फैल गई। यहाँ पहाड़ भी दूर थे फिर भी ११ फुट पानी चढ़ जहाँ से चला था लगभग २५०-२७५ फुट ऊँचा पानी चला था। हरिद्वार में नहर का गोदाम तो बच गया शेष समस्त शहर जलमग्न हो गया। ऐसी बाढ़ के लिये 'न भूतो न भविष्यति' कहा जा सकता है। विरही गंगा ने समस्त नगरों व गाँवों को विरही बना दिया। संसार में विरह ही सबसे बुरी चीज है, किन्तु विरह के बिना सुख नहीं, जीवन का निस्तार नहीं। विरही ही से सुखास्वाद होता है।

अच्छा तो आगे चलियें, अब देर करने से काम न चलेगा। सिया सैंन हाट चट्टी होते हुए अलकनन्दा को पार करके पीपल कोटि के लिये चल पड़िये। यहाँ चढ़ाई है तनिक सावधानी से चलिये। विना दूध पिये चढ़ाई नहीं चढ़ी जाती। यदि साथ में मिश्री, घी, काली मिर्च हो तो उन्हीं का गोला बनाकर निगल जाइये, तब देखिये कितनी जल्दी चढ़ाई समाप्त होती है। अच्छा तो पीपलकोटि आ गई! रास्ते में खूब पीपल हैं इसलिये इसका नाम पीपलकोटि है। अच्छा-सा सुन्दर सजा हुआ बाजार है, डाक बँगला, डाकघर, तारघर यहीं हैं बदरीनाथ मन्दिर की धर्मशाला भी है, यहाँ चँवर, ऊनी कपड़े, मृगचर्म, शिलाजीत और गढ़वाल तथा कुमाऊँ की चीजें बहुत बिकती हैं। जल का सुपास है, भोजन बनाने की सुविधा है आवश्यक सामान खरीदना चाहें खरीद लें। अब तो बदरीनाथ जी ३८ मील हैं इसलिये शीघ्रता करें। अब १५ वीं मञ्जिल है।

[१० मील] पीपलकोटि से गुलाबकोटि [इ० १५४॥]

पीपल कोटि से बिलकुल सीधा रास्ता है। आँखें बन्द करके दौड़ते हुए चले जाइये। एक ओर अलकनन्दा है। दूसरी ओर पहाड़, बीच में सड़क है। ४ मील चलने पर गरुड़ गंगा मिलेगी यहाँ से नीचे ही गरुड़ गंगा अलकनन्दा में मिली है पाँखो गाँव में नृसिंह मन्दिर है। चट्टी के समीप गणेश जी तथा गरुड़ भगवान् की मूर्तियाँ हैं। यहाँ स्नान करने और यहाँ से पत्थर ले जाने से सर्प बाधायें कम होती हैं। इसका वर्णन हम अन्यत्र गरुड़शिला के प्रसंग में कर चुके हैं। भोजन बनाना हो तो यहाँ काली कमली की धर्मशाला है। दुकानें हैं। दूध भी मिलता है। चलना हो तो आगे चलिये। इसके आगे टंगनी चट्टी है। कई दुकानें हैं। चट्टी है, सब चीजें मिलती हैं फिर आती है पाताल गंगा। खबरदार होशियार! नीचे न देखिये, बड़ा भयानक दृश्य

है। पाताल गंगा यहाँ अलकनन्दा में मिली हैं। पाताल गंगा सचमुच पाताल गंगा है। नीचे देखने से डर लगता है। सड़क वालों ने सड़क को सब जगह पहाड़ तोड़ फोड़कर, काट छाँटकर अपने अधिकार में कर लिया है, किन्तु पाताल गंगा अभी तक विद्रोही ही बनी हैं। वर्षा में तो यह रास्ता बन्द ही करना पड़ता है। ५-७ मील घूम फिरकर एक पहाड़ से चढ़कर आना पड़ता है। बालू और पत्थर के चूर्ण का सा पहाड़ है, जो वर्षा होते ही फिसल पड़ता है। बरसात में रास्ता बड़ा भयंकर हो जाता है। कई बार दुकानें बह गईं, आदमी गिर पड़े, पहाड़ टूट पड़ा, अब भी रास्ता ठीक नहीं है। पाताल गंगा के पुल को पार करके चट्टी मिलती है ३-४ दुकानें हैं। आवश्यक सामान मिलता है। यहाँ गणेशजी की एक छोटी-सी बड़ी भव्य मूर्ति है। गरुड़ गंगा से दो मील आगे गुलाब कोटि की चट्टी है। दोनों ओर ५-६ दुकानें हैं, सब चीजें मिलती हैं ऊपर डाक बँगला है। गाँव में एक मुरली मनोहरजी का प्राचीन मन्दिर है। पहिले यहाँ भी एक गढ़ था। गुलाब सिंह नाम के कोई राजवंशीय मंडलीक राजा थे उन्होंने ही इस गाँव को बसाया और इस मंदिर को बनवाया था। मन्दिर में मूर्ति बड़ी ही चित्ताकर्षक है। सड़क से ऊपर पड़ जाने के कारण यात्री इस मंदिर में दर्शन करने नहीं जाते। बहुत दूर तो है नहीं, यदि सड़क बन जाय तो यात्री जाने लगें। यह पूरा गाँव मंदिर में लगा हुआ है। यहाँ के वैष्णव मन्दिर के पुजारी हैं। रात्रि में ठहरने के लिये चट्टियाँ है। अब सोलहवाँ पड़ाव।

[८ मील] गुलाबकोटि से जोशी मठ [ह० १६२॥ मील]

गुलाबकोटि से चलिये, दो मील आगे हेलङ्ग या (कुमार) चट्टी आती है। यहाँ काली कमली वाले की धर्मशाला है। ५-७ दुकानें हैं डाकघर है, बदरीनाथ मन्दिर की धर्मशाला है इसके

आगे खणोटी, जड़झूला ये दो छोटी-छोटी चट्टियाँ हैं इसके आगे सिंहधार है। यह जोशीमठ का ही एक भाग है। यहाँ से एक सड़क तो नीचे होकर ही विष्णु प्रयाग को चली जाती है। दूसरी जोशीमठ के बाजार में होकर नृसिंह मन्दिर के सामने से विष्णु प्रयाग जाती है।

जोशीमठ

ज्योतेश्वर में ज्योतेश्वर महादेव और भक्तवत्सल भगवान् के दो ही मन्दिर हैं। ज्योतेश्वर शिवजी का मन्दिर बहुत ही जीर्ण शीर्ण दशा में है सब से अधिक दर्शनीय वह पुराना सहतूत का-सा पेड़ है। इतना मोटा पेड़ हमने आज तक कहीं नहीं देखा। प्रसिद्धि ऐसी है कि यह सत्ययुग का पेड़ है और प्रत्येक युग में एक गाँठ पड़ जाती है उसमें कई गाँठें हैं। श्री ज्योतेश्वरजी के समस्त मन्दिर को ही वह घेरे हुए है। यह स्थान श्री बद्रीनाथ मन्दिर के अधीन है। दुख है कि यहाँ की पूजा आदि का प्रबन्ध बहुत ही असन्तोषजनक है शाम को दीपक भी नहीं जलता। मन्दिर कमेटी को इधर ध्यान देना चाहिये।

ज्योतेश्वर के समीप ही एक जगह है जिसे भारतधर्म महा-मंडलने खरीदा था। जिसे ज्योतिर्मठ कहते हैं उसमें एक मठ गत। वर्ष बन गया है और पूर्णागिरी और देवीजी का मन्दिर बना है जिसमें पूर्णागिरि और देवी की स्थापना होगी ऐसा सुना जाता है कि जोशीमठ पहाड़ी कस्बा है। तारघर, शफाखाना मिडिल स्कूल, डाक बंगला और काली कमली की बड़ी धर्मशाला यहाँ है। यहाँ से एक सड़क नेतिघाटी होकर कैलाश मानसरोवर को जाती है। दूसरी विष्णु प्रयाग होकर बदरीनाथ को जाती है। जाड़े के दिनों में श्री बदरीनाथ मन्दिर के सेवक, अधिकारी तथा वहाँ का कार्यालय यहीं रहता है। रावल भी ६ महीने यहीं रहते

हैं। बड़ी सुन्दर, सुहावनी और उपजाऊ भूमि है। श्री बदरीनाथ यहाँ से १९-२० मील ही है।

[९ मील] जोशी मठ से पांडुकेश्वर। [हं० १७१॥]

जोशी मठ से चलिये, एकदम उतरते ही जाइये। दो मील तक बराबर उतराई ही उतराई है। कैंची की तरह घूम घुमाव से नीचे ही उतरते चलें बिलकुल नीचे उतरने पर विष्णु प्रयाग पहुँच जाते हैं, यहाँ पर विष्णु गङ्गा या धौली गङ्गा का अलकनन्दा के साथ संगम हुआ है।

विष्णु प्रयाग

यहाँ पाँचवाँ अन्तिम प्रयाग है। यहाँ से सूक्ष्म बदरी क्षेत्र आ जाता है। यहीं से आगे को पर्वत श्रेणियों को गन्धमादन कहते हैं। दाईं ओर के पर्वत को नर और बाईं ओर के पर्वत को नारायण पर्वत कहते हैं। यहाँ का दृश्य अब विचित्र ही हो गया है। विष्णु प्रयाग में स्थान बहुत ही संकुचित है। संगम की सीढ़ियाँ भी बड़ी दुर्गम और डरावनी हैं, पत्थर काट-काट कर सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। धौली गङ्गा का प्रखर प्रचण्ड प्रवाह है। संगम के समीप उतरने में डर लगता है। स्नान करना हो तो लोटे से कर सकते हैं। घूमने की इस जलयुद्ध में हिम्मत किसकी है? सड़क के ऊपर विष्णु भगवान् का मन्दिर है। मूर्ति बड़ी ही प्राचीन और सुन्दर है। सुनते हैं यहाँ नारदजी ने हरी मंत्र का जप करके भगवान् को प्रसन्न किया था और यह वरदान प्राप्त किया था कि आप यहीं विराजें। तबसे भगवान् की स्थिति यहीं है। यहाँ पर दो-तीन दुकानें भी हैं ठहरने को कोई जगह नहीं है।

विष्णु प्रयाग से मील भर आगे बलदूड़ा चट्टी है। २-३ दुकानें हैं, काली कमली की धर्मशाला है आगे चार मील पर घाट

चट्टी है। यहाँ भी दो-चार दुकानें हैं, इसके आगे पांडुकेश्वर हैं। यहाँ पर महाराज पांडु ने तपस्या की थी। यहीं पर पांडवों का जन्म हुआ था। पांडुकेश्वर भगवान् को स्थापना भी पांडु राजा ने की थी। यहाँ कालो कमली की धर्मशाला है, डाक-बंगला भी करोव मील भर दूर है। ध्यान बदरी का या पांडुकेश्वर भगवान् का मन्दिर है, जिसका समस्त प्रवन्ध मन्दिर श्रीबदरीनाथ की ओर से ही होता है। रात्रि भर यहीं आराम कीजिये अब कल तो बदरीनाथ पहुँचना ही है। कुल ११ मील तो शेष रह गया, अतः अब अन्तिम अठारहवाँ पड़ाव है।

[११ मील] पांडुकेश्वर से बदरीनाथ [ह० से १८२॥मील]

'बोल बदरी विशाल लाल कीजय'। आज बाबा बदरी विशाल की विशाल पुरी पहुँचना है पांडुकेश्वर बदरीनाथ का शीतकालीन निवास है। भगवान् की उत्सव मूर्ति तथा बहुत से काम करने वाले यहीं सर्दी में आकर रहते हैं। वामनी गाँव के सभी लोग यहीं के होते हैं। इसीलिये इसे बदरीनाथपुरी से पृथक् समझना ही नहीं चाहिये बहुत से लोग रोज प्रातः बदरीनाथ जाते हैं और शाम को लौट आते हैं। पांडुकेश्वर से आगे चलिये मील भर पर शेष धारा है। यहाँ पर शेषजी का मन्दिर था। रामानुज कोट की ओर से धर्मशाला, सदावर्त भगवान् की पूजा के लिये पुष्प वाटिका आदि बहुत से स्थान थे। अभी-अभी ३ वर्ष हुए एक पहाड़ के गिरने से उस तूफान बाढ़ के कारण शेष धारा के सब मकान, सब जमीन पता नहीं कहाँ चली गई। अब नाम-निशान भी शेष नहीं। पता नहीं शेष जी को क्या सूझी। वहाँ पर शेषजी ने आकर तपस्या की थी, क्योंकि बिना तपस्या किये इतने भारी भूमंडल को सरसों की दाने की तरह सिर पर कैसे धारण कर सकते थे। रावल की सवारी जब आती जाती है तो यहाँ पूजा करके ही जाते हैं।

शेष धारा से आगे चलिये। विनीक की छोटी चट्टी चिर लामवगड़ को चट्टी मिलेगी। यहाँ काली कमली की धर्मशाला है। किन्तु अब वह सड़क से नीचे पड़ गई है, इसलिये वहाँ कम यात्री ठहरते हैं। यहाँ २-४ दुकानें हैं। चट्टी छोटी है किन्तु गरमागरम दूध तथा चाय की कमी नहीं। यहाँ से आगे वैखानस टीला है। कहते हैं महाराज मरुत्त ने यहीं यज्ञ किया था। यहीं पर अग्नि को अजीर्ण हुआ था। सैकड़ों वर्षों तक निरन्तर हाथी की सूँड़ के समान धारा से घी पीते-पीते अग्नि को अत्य-धिक तृप्ति हो गई थी। अब भी खोदने पर भस्म के समान काली-काली राख निकलती है। कोई-कोई यात्री यहाँ हवन भी करते हैं। बहुत ऊँचे हम लोग आ गये। नये-नये यात्री के सिर में चक्कर आने लगता है, जी मिचलाता है, फिर पग-पग की चढ़ाई तो रीढ़ की हड्डी को तोड़-सी देती है। सब अंग शिथिल पड़ जाते हैं। हे बदरीनाथ बाबा ! तुम इतने ऊँचे आकर इस सर्दी में क्यों बैठे हो। बैठे हो तो बैठे रहो। हमारी दुर्दशा क्यों करते हो ? क्यों इतनी कठिन परीक्षा लेते हो। इस चढ़ाई में नया-नया यात्री सचमुच घबड़ा जाता है। हम लोग रोज के आदी तो खटाखट चले जाते हैं। अब आई बदरी नाथ पुरी। खूब मजे से प्रसाद, दाल-भात उड़ावेंगे और केसरिया भात का गप्फा लगावेंगे। 'बोल बदरी विशाल लाल की जय' 'बोल गरुड़ भगवान् की जय, थके हुये यात्री बूढ़ी-बूढ़ी मातायें बड़े कष्ट से जय जयकार करती हैं। उधर से जो यात्री दर्शन करके लौटते हैं, वे जिस भी यात्री को देखते हैं, बड़े उल्लास से चिल्ला उठते हैं, 'बोल बदरी विशाल लाल की जय' क्योंकि वे तो बदरी नाथ बाबा के दर्शन कर आये। उनका चेहरा प्रसन्नता से जगमगाता रहता है। मानों उन्होंने कोई बड़ी भारी निधि पा ली है। मानों उन्हें अपने इष्ट की प्राप्ति हो चुकी है। उधर से

तो उतराई है। बिना इच्छा के दौड़ना पड़ता है। बदरीनाथ स्वामी वलपूर्वक ढकेलते हैं। इसलिये यात्री को कष्ट नहीं, घबराहट नहीं। उसे स्वदेश लौटने का उल्लास होता है, नीचे उतर रहा है। इधर का यात्री चढ़ाई से दुखी है। बदरीनाथ बाबा के दर्शन प्राप्त नहीं हुए, चढ़ाई-ऊँचाई से परेशान है। सचमुच ऊँचे चढ़ने में बड़ा कष्ट है। नीचे उतर आना तो बड़ा आसान काम है। उत्थान-पतन का यही तो मार्मिक रहस्य है। यही तो अन्तर है। चढ़कर न उतरने वालों के कष्ट का अन्त हो जाता है, किन्तु जो चढ़कर उतरते हैं उतरने में तो उन्हें देर नहीं लगती, किन्तु उन्हें फिर सुख कहाँ ? वे तो अपने सुख से वञ्चित हो जाते हैं।

हाँ, तो अब जल्दी-जल्दी चलिये। लीजिये, हनुमान चट्टी आ गई। पहिले यहाँ हनुमान जी निवास करते थे। महाभारत में इसकी बड़ी रोचक कथा है। जब पांडव वनवास के दिनों में गन्धमादन पर्वत पर विचरण कर रहे थे। तब अलकापुरी जाते समय भीम यहाँ से जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक पतला-दुबला बन्दर पड़ा हुआ दिखाई दिया। उसकी पूँछ बड़ी थी। रास्ते को रोके पड़ा था। भीमसेनजी को अपने बल का बड़ा घमण्ड था। उन्होंने जोर से कहा—"ओ बन्दर ! रास्ता रोके क्यों पड़ा है ? पूँछ हटाले।

बन्दर ने विनीत भाव से कहा—"भैया, मैं बुड्ढा हो गया हूँ, मुझमें उतनी शक्ति नहीं रही। थोड़ा तुम ही कष्ट करके मेरी पूँछ को उठाकर उधर कर दो। भीमजी की उपेक्षा से एक हाथ से पूँछ उठी ही नहीं। भीम ने पूरी शक्ति लगाई। सब जोर लगाया पूँछ जमीन से टस से मस नहीं हुई। भीमसेन के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। दोनों पवन के पुत्र थे। परिचय पाकर दोनों भाई-भाई गले से गला लगाकर प्रेम पूर्वक मिले। भीमसेन की

प्रार्थना पर हनुमानजी ने अपना असली रूप दिखाया जिसे देखते ही भीम भयभीत से हो गये। अब भी वहाँ हनुमान जी की मूर्ति है।

अलकनन्दा भगवती पीछे बह रही हैं। यहाँ काली कमली की धर्मशाला ठीक गंगा के किनारे है बहुत बड़ी है। ८-७ दुकानें भी हैं। आगे चलते चलिये इस, पार से उस पार इस प्रकार ३-४ पुलों को पार करना पड़ता है। धीरे-धीरे चढ़ाई लगती जाती है। यह अन्तिम चढ़ाई है कष्ट कर। इस समय अचार का सूखा नीबू या कोई भी खटाई साथ में हो तो बड़ा काम देती है। थोड़ी खटाई मुँह में डाल कर चूसते रहने से सिर में चक्कर नहीं आवेगा। जी नहीं मिचलावेगा और चित्त भी प्रसन्न रहेगा। रास्ते में फूल खिल रहे हैं मन्द सुगन्ध युक्त पवन चलती रहती है यहीं पर यात्री को इस पद यात्रा की सार्थकता प्रतीत होता है—

पवन मन्द सुगन्ध शीतल, हेम मन्दिर शोभितम्।
निकट गंगा बहत निर्मल, श्री बद्रीनाथ विश्वम्भरम्॥

'बोल बद्री विशाल लाल की जय, अब क्या है मारली बाजी, रास्ते में पहाड़ी मारचों की लड़कियाँ पीठ पर गट्ठर लादे लकड़ी ले जाती मिलेंगी। ये बद्रीनाथ ही जा रही हैं। अब तो जान में जान आई। पुरी के पास ही पहुँच गये हैं अच्छा तो यह फटाफट किस बात की ? यह बाजा कहाँ बज रहा है, पाई दो पैसा चढ़ाओ चढ़ाई पार हुई। बद्रीपुरी में आ गये। दर्शन करो, चरणामृत लो। गरुड़ भगवान् की जय। भाई थोड़ा विश्रास ले लो। घबड़ाने की अब क्या बात अब तो पुरी में आ गये। कुछ दान, दक्षिणा, दो यह 'देव, देखनी है।

काँचन गंगा को पार करके 'देव देखनी, पर पहुँचते हैं। यहाँ से ही पुरी के पहिले पहल दर्शन होते हैं। जब लगभग पौने दो सौ मील की यात्रा करके यात्री यहाँ आता है और पहिले

ही पहिले उसे सुवर्ण से मढ़ी हुई झंडी पताका से सजी भगवान् बद्री विशाल के मन्दिर की छतरी दिखाई देती है । तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता । जिनके नाम की नित्य रट लगाये हुये थे, उनकी पुरी में पहुँच गये । भगवान् ने दया कर के अपनी पुरी में बुला लिया । यात्री की थकान, अशान्ति, चिन्ता, व्याकुलता सभी एक दम नष्ट हो जाती है । उसके चेहरे से प्रसन्नता फूट निकलती है । यहीं से पुरी प्रवेश का श्री गणेश होता है । यहीं गणेश जी की मूर्ति है, हमें पुरी में प्रवेश करना है । गणेश स्मरण पूजन करने से विघ्न नहीं होता । सर्व प्रथम सर्व शुभ कामों में गणेश पूजा होती ही है—

सुमुखश्चैक दन्तश्च कपिलो गजकर्णिकः ।
धूम्रकेतु गणाध्यक्षोभाल चन्द्रो गजाननः ।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ।
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
संग्रामे संकटश्चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥

चलिये अब देरी का काम नहीं । इधर पंजाबी क्षेत्र का बड़ा भवन है । यहाँ साधुओं को भोजन मिलता है । आगे सेठ शङ्करदत्त जी का बंगला है, बगीचा है । बद्रीनाथ में जहाँ कहीं भी पेड़ नहीं इस बगीचे को देखकर आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता । थोड़ी दूर पर सरकारी शफाखाना है, फिर पुलिस का थाना है । अब पुल से अलकनन्दा को पार कीजिये । खाक चौक साधुओं का अड्डा है, इधर बामनी गाँव की बस्ती है । सामने ऊपर से दौड़ती हुई, हँसती हुई सफेद फूल बरसाती हुई, बिखरती फैलती हुई ऋषि गंगा की कई धारा दिखाई देती हैं, सामने चरण पादुका है लो डाक खाना आ गया । नाम लिखाइये कहाँ से आये कितने यात्री साथ में हैं । मन्दिर की ओर से आने वाले यात्रियों की गणना करने के लिये बहीखाता लिये एक आदमी

बैठा रहता है। 'बोल बद्रीनाथ विशाल लाल की जय' आपने अब बाजार में प्रवेश किया।

बद्रीनाथ पुरी

सड़क-सड़क चले चलिये दोनों ओर दुकानों की पंक्तिय लगी हैं। जो चीज आप चाहें खरीद लें। साग भाजी, कपड़े लत्ते, आटा-दाल, नमक मिर्च मसाला, दूध, गरम चाय, पूड़ी, लड्डू, हलुआ। दुकानों को देखते चलिये। शिलाजीत के विज्ञापन पढ़ते-पढ़ते घबड़ा न जायँ। यहाँ के शिलाजीत वाले सभी धर्मराज के वंशज हैं। नकली शिलाजीत साबित करने पर दस हजार रुपये देने का वचन देते हैं। किन्तु दश हजार इन्होंने कभी आँखों से भी देखे होंगे सन्देह ही है। एक दूसरे के शिलाजीत की निन्दा करेंगे। अपने राम को तो शिलाजीत लेना नहीं कस्तूरी ममीरे का शुरमा, चमर गाय की पूँछ, मृगचर्म, पहाड़ी ऊनी कपड़े, शिलाजीत और बद्रीनाथ महात्म्य की पुस्तकें तथा फोटो इन चीजों की भरमार है। चाहे जहाँ खरीद लीजिये। भगवान् को प्रसाद में चढ़ाने के लिये चने की दाल और गोले भी बहुत मिलेंगे। चाँदी ताँबे की भगवान् बद्री विशाल की मूर्तियाँ भी खूब बिकती हैं। धर्मशालाओं की भरमार है किन्तु वे सब पण्डों की निजी सम्पत्ति बन गई हैं। बाजार में चहल पहल है। यहीं अटके न रहें अपने उद्देश्य को न भूल जायँ। सामने भगवान् बद्री विशाल जी का सिंह द्वार है। यहीं नौबत बजती हैं। इसलिये इसे नौबतखाना भी कहते हैं। सामने दो दुकानें नई बनी हैं। पहिले स्नान कर लें तब दर्शन को चलें। सिंहद्वार के सामने से सीढ़ियों से उतर कर गरम कुण्ड में स्नान कीजिये। डरिये नहीं, पहिली बार जल गरम लगेगा। फिर चाहे घण्टों खड़े रहो। साहस करके कूद पड़िये। अजी, आप भी अच्छे रहे—इतने बड़े आदमी होकर डरते हैं। देखो ये बाल बच्चे, स्त्रियाँ

घण्टों से नहा रहे हैं किसी का शरीर जला दीखता है। कूदिये-कूदिये 'बोल बदरी विशाल लाल की जय' है न, वही बात ? अब तो गरम नहीं लगता। अलकनन्दा में आचमन मार्जन कीजिये दूसरे कुण्डों में भी स्नान मार्जन करके जल्दी चलिये। सीढ़ी चलते ही आदि केदारनाथ हैं। 'बम् बम् महादेव' शिव-शिव शम्भो हर हर महादेव' बोल केदरनाथ जी की जय।

कर चरण कृतंवाक् कायजं कर्मजंवा।
श्रवण नयनजं वामानसं वापराधम्॥
विहितमविहितंवा सर्वमेतत् क्षमस्व।
जय जय करुणाब्धे श्री महादेव शम्भो॥

इधर बाईं ओर यह शङ्कराचार्य का मन्दिर है। सीढ़ियों से अब बद्री विशाल लाल के मन्दिर में चढ़ते चलें। माली लोग वन की तुलसी की बड़ी-बड़ी मलायें बेच रहे हैं। प्रसाद तो है ही माला भी खरीद लें सामने ही गरुड़ जी हाथ जोड़े खड़े हैं। भगवान् के पार्षद और वाहन। इनके पहिले दर्शन होते हैं। भगवान् को दाईं ओर करके चलें। अभी भीड़-भाड़ है, जग-मोहन में ही खड़े रहिये। बोल बद्री विशाल लाल की जय। लीजिये आ गये ये सामने ही बद्री विशाल हैं साँवली मूर्ति है। ऊपर सुवर्ण का छत्र लगा है चमचमाता मुकुट पहिने हैं मस्तक पर चन्दन की बिन्दी है। गले में हार है। तुलसी पुष्पों की बहुत-सी मालाओं से सुसज्जित हैं। बहु मूल्य वस्त्र धारण किए हैं। ये ही हमारे भगवान् हैं। ये ही नारदजी के इष्ट हैं, ये ही बद्रीवन के ईश और चराचर जगत् के स्वामी हैं। दाईं ओर पीतल की जो मूर्ति दिखाई देती है ये धन पति कुवेर हैं सामने नीचे वीणा लिये उनके अर्चक नारद जी बैठे हैं। इनके पास ही उद्धवजी (उत्सव मूर्ति) चतुर्भुज भगवान् हैं। समीप ही चरण पादुकायें रखी हैं। जो उद्धवजी को भगवान् ने प्रभास क्षेत्र से

चलते समय दी थी। बगल में बाईं ओर दोनों भाई नर-नारायण भगवान् हैं श्री देवी भूदेवी बनके आसपास हैं। श्याम रङ्ग की सुन्दर मनोहर मूर्तियाँ हैं लीजिये आरती भी होने लगी। घण्टा बज रहे हैं 'बोल बद्री विशाल लाल की जय' अब खूब मजे में प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे हैं। कैसी अद्भुत छटा है। इन्हीं। दर्शनों के लिये हम सब लालायित थे इन्हीं दर्शनों के लिये इतनी दूर से दौड़े आये, अहा—

अघोद्भवः सफलतां तु मम प्रयातः।
प्राप्तोऽद्यमद्य भवबन्धनतो विमुक्तम्॥
वंशो निरन्तर सुत द्रविण प्रसूति—
स्त्वसा गतोऽस्मि शरणं बद्रीवनेऽस्मिन्॥

'आप लोगों ने अब दर्शन कर लिये हैं, अब भगवान् का भोग लगेगा।' शाम को अब फिर आ जाना। पीछे वाले भी दर्शन करेंगे हटो-हटो, अरे भाई हटते क्यों नहीं। चलो-चलो लो भाई ये चपरासी भी यम के दूत ही हैं जबरदस्ती निकाल रहे हैं। भगवान् के सामने से हटा रहे हैं ? और भी तो लोग हैं जैसे तुम इतनी उत्सुकता से आये हो। दूसरे भी तो उतना ही कष्ट सहकर उतनी ही भावना लेकर आए हैं। उनको भी रास्ता साफ करो। शाम फिर दर्शन करना चलो परिक्रमा कर लें।

सामने यह मन्दिर का कार्यालय (दफ्तर) है। भीतर शङ्कराचार्य की गद्दी है। संगमरमर की स्वामी शङ्कराचार्य की सुन्दर मूर्ति है, गद्दी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित है। भेंट चढ़ाइये रसीद लीजिये। ये जो बही खाते खोले गद्दो लगाये मोटे से छोटे से बैठे हैं, ये लिखवार नायक लिखवार तथा मुनीम हैं। आप को अटका चढ़ाना हो। भोग लगाना हो। अभिषेक करना हो, यहाँ लिखाकर रसीद ले लीजिये। ये (सेक्रेटरी साहब) प्रधान

प्रबन्धक हैं, जो पूछना हो इनसे पूछ लो। इनका निजी कार्यालय (दफ्तर) ठीक इसी के पीछे है। चलो परिक्रमा करें। यह भंडार गृह है। आगे कथा भवन है, पुस्तकालय, औषधालय है। कुछ पूँछताछ करनी हो यहाँ पूछ लो। यह जो बिना धड़ की मूर्ति है जहाँ घंटा लटक रहा है। ये ही घंटाकर्ण हैं। यहाँ के क्षेत्रपाल (कोतवाल) हैं यह इधर दरवाजा है। यह घन्टा बड़ा भारी गढ़ वाली फौज की तरफ से चढ़ाया गया है। ब्रिगेटमेजर से। फिर दरवाजे के सामने आ गये गरुड़ जी को बायें करके सामने भोग मंडी है, यहाँ भगवान् का भोग बनता है। इसी के बगल में लक्ष्मी जी का मन्दिर है। चार परिक्रमा दे लो। बोल बद्री विशाल लाल की जय' अब चलो आराम करें। फिर आवेंगे।

किं वर्ण ये तवविभो यदु ही रितोऽसुः।
सम्पन्दते तमनु वाङ मन इन्द्रियाणि॥
स्पन्दान्ति वै तनु मृतामज शर्वयोश्च।
स्वस्त्याय्यथापि भजतामसि भावबन्धुः॥

—

२—केदारनाथ होकर बदरीनाथ

नमस्ते भगवान् देव नमस्ते भक्त वत्सल ।
योगेश्वर नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वसंभव ।।*

जब यात्री बदरीनाथ को चलता है तभी सोच लेता है केदार होकर ही चलेंगे । क्योंकि बार-बार कौन इस दुर्गपथ को यात्रा के लिये आता है। केदार होकर बदरी जाने में ५६-५७ मील का चक्कर पड़ता है। इसके लिये इतने प्रसिद्ध और पवित्र तीर्थ को कौन छोड़े। केदारनाथ होकर बदरीनाथ जाने में सीधी परिक्रमा भी हो जाती है, तथा केदार होकर बदरी जाने का माहात्म्य भी विशेष है, हाँ केदार होकर जाने से कर्ण प्रयाग छूट जाता है सो लौटने समय कर लेते हैं। इसीलिए प्रायः अधिकांश यात्री केदार होकर ही बदरीनाथ जाते हैं। जिन्हें जल्दी लौटना हो बहुत जरूरी काम हो वे सीधे जाते हैं। नहीं तो केदार बदरी की यात्रा तो साथ होती है। द्वादश लिंगों में श्री केदारनाथ प्रतिष्ठित और प्रधान ज्योतिर्लिंग हैं। रुद्र प्रयाग से केदारनाथ जी को मन्दाकिनी के किनारे २ सड़क जाती है ।प्रयाग और चमौली लाल साँगामें आकर फिर बदरीनाथ वाली सड़क मिल जाती है। यह सड़क भी यात्रा लाइन में सम्मिलित है। समस्त सरकारी प्रबन्ध बदरी केदार और कर्णप्रयाग से रानी-खेत वाली सड़क का साथ ही एक तरह का होता है। रुद्र प्रयाग

---

* हे भगवन् ! हे देव ! भक्तवत्सल ! हे देव योगेश्वर ! हे विश्व-संभव आपको बारंबार नमस्कार है ।

तक तो आ ही गये थे, अब रुद्र प्रयाग से चलिये। रुद्र प्रयाग से पहिला पडाव है।

११मील रुद्र प्रयाग से अगस्त्यमुनि (ह० १०६ मील)

हरिद्वार से रुद्र प्रयाग ९८ मील। उसका विवरण पिछले अध्याय में आ चुका है अब चलिये रुद्र प्रयाग से मन्दाकिनी के किनारे-किनारे। केदार पुरी यहाँ से ५५ मील है। ५ दिन में आसानी से बड़े मजे से, खूब आराम से पहुँच सकते हैं। ठीक है चलिये रास्ता सीधा है बहुत चढ़ाई उतराई नहीं है, ४॥ मील पर छांतोली चट्टी पड़ती है, सब खाने पीने की चीजें मिलती हैं। डेढ़ मील आगे तिलवाड़ा चट्टी है। यहाँ से थोड़ी दूर आगे असल तरांगिणी नदी का मन्दाकिनी के साथ संगम है। सुनते है पहिले यहाँ सूर्य भगवान् ने तप किया था इसीलिये इस संगम का नाम सूर्य प्रयाग है। फिर मठ और रामपुर चट्टी है। इससे ४ मील आगे अगस्त्य मुनि हैं। सुनते हैं यहीं पर अगस्त्यमुनि ने तपस्या की थी तथा लोपा मुद्रा के साथ विवाह करके दृढ़ाश्व नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यहाँ अगस्त्य मुनि जी का मन्दिर है जिसमें पूजा होती है यह प्रसिद्ध तीर्थ है। हमारे जाने से छः साल पहिले यहाँ अष्टादश पुराणों का पाठ तथा बड़ा समारोह हुआ था। यहाँ से ६ मील पूर्व स्कन्द पर्वत है। जहाँ कार्तिकेय स्वामी का मन्दिर है। जिस ताम्र पत्र में कार्तिकेय पुर का वर्णन है मालूम होता है, वह यहीं रहा होगा। अगस्तमुनि चट्टी बड़ी है। मन्दाकिनी बिलकुल समीप ही बह रही है। खूब स्नान कीजिये और यहीं भोजन पानी से निवृत्त हूजिये। आगे चलना हो तो अगली चट्टी तो ७ मील पड़ेगी अतः कल के लिये दूसरा पड़ाव रखो—

१३॥ मील अगस्त्यमुनि से गुप्त काशी [ह० १२२ मील]

जब हवाई जहाज चलता था। तब अगस्त्यमुनि में उसका अड्डा था। केदारनाथ के यात्री यहीं उतरते थे खूब मैदान है अब तो चलता ही नहीं। आगस्त्यमुनि में डाकखाना तथा डाक बंगला भी है। अगस्त्यमुनि से थोड़ा दूर नारानण भगवान् का छोटा मन्दिर है। फिर चन्द्रापुरीचट्टी है इसके अनन्तर भीरी चट्टी पड़ती है। यह चट्टी बड़ी है डाकघर भी है डाक बंगला है। भीरी से पुल पार करके कुंड चट्टी पहुँचते हैं यहाँ से गुप्तकाशी ३ मील रह जाती है, किन्तु ये तीन मील शरीर को चकनाचूर बना देते हैं। दो मील की चढ़ाई पसीने से स्नान करा देती है। फिर थोड़ा उतार है तब आ जाती है गुप्त काशी।

गुप्त काशी

गुप्त काशी या गुप्त वाराणसी यह बड़ा ही मनोरम स्थान है। पूर्वकाल में यहाँ ऋषियों ने शिवजी की प्राप्ती के लिये तपस्या की थी। राजा बलि के पुत्र बाणासुर की राजधानी शोणितपुर इसके समीप ही है। मन्दाकिनी के उस पार ठीक सामने ऊखीमठ है, जहाँ बाणासुर की लड़की रहती थी, वहाँ पर उसका श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के साथ प्रेम सम्बन्ध और विवाह हुआ। गुप्त काशी में अर्धनारी नटेश्वर भगवान् की नन्दी पर सवार बड़ी ही सुन्दर मूर्ति है। संगमरमर के नन्दी बड़े ही मनमोहक हैं काशी विश्वनाथ जी की भी लिंगाकर मूर्ति है। उसके समीप ही अष्ट धातु के नन्दीश्वर, पार्वती जी के विग्रह हैं। यहाँ एक कुंड है जिसमें दो धारायें गिरती रहती हैं, उन्हें गङ्गा यमुना की धारा कहते हैं। जल निर्मल है यहाँ यात्री गुप्त-दान करते हैं। केदारनाथ के पण्डे यहीं आस पास रहते हैं और यहीं से यात्रियों के साथ केदारनाथ जाते हैं। पहाड़ी साधारण कस्बा है। सब चीजें मिलती हैं। डाक घर, डाक बंगला, तथा

काली कमली की धर्मशाला भी है। यहाँ से एक मील आगे नाला चट्टी है। इसीलिए इस रास्ते का तीसरा पड़ाव है—

गुप्तकाशी से चलिए। यहाँ पीले चंपा आम, जामुन की तरह बड़े-बड़े हैं जिनकी सुगन्धि मीलों जाती है। जब चम्पा फूला रहता है तो सम्पूर्ण वन को सुवासित कर देता है। मील डेढ़ मील आगे नाला चट्टी है। श्री केदारनाथ जी के दर्शन करके जब लौटते हैं तो फिर गुप्त काशी नहीं जाना होता। यहीं नाला चट्टी से मन्दाकिनी को पार करके गुप्त काशी होते हुए चमौली लौट जाते हैं। नाला चट्टी से आगे-आगे भेता या नारायण कोटि चट्टी हैं। यहाँ बहुत से प्राचीन मन्दिर अभी जमीन से खोदकर निकाले हैं। किसी समय यहाँ किसी छोटे राजा की राजधानी रही होगी। उसी ने ये सब मन्दिर बनवाये हैं। किसी पहाड़ के गिरने से दब गये होंगे। जो टीले के रूप में हो गये थे। पं० विशालमणिजी शर्म्मा ने इनके लिए बड़ा उद्योग किया है। यहाँ से २-३ मील रास्ता छोड़कर काली मठ भी है। बड़ा शान्त एकान्त स्थान है। उत्तर खण्ड में यह सिद्ध पीठ है। नव दुर्गाओं में मेला भी होता है। किन्तु यहाँ की पूजा आदि का समुचित प्रबन्ध नहीं है।

नारायणकोटि से आगे व्यूँग चट्टी फिर मैखंडा चट्टी है यहाँ एक लोहे का जंजीर का झूला है। इस पर यात्री झूलते हैं पंडा पैसा लेता है। महिष मर्दिनी देवी का मन्दिर है। कहते हैं पहिले इसका नाम महिषारण्य था। महिषासुर की यहीं राजधानी थी। देवी जी ने यहीं पर उसे मार कर खंड-खंड करके पर्वत पर फेंक दिया।

इससे दो मील आगे फाटा चट्टी है। मैखंडा तक चढ़ाई है। चढ़ाई का नाम सुनते ही यात्री को कँपकँपी छूटने लगती है। मैखंडा से फाटा तक रास्ता है। फाटा बड़ी चट्टी है। यहाँ डाँक

बंगला भी है। खाने पीने का सब सामान मिलता है। इससे आगे बदलकर एक छोटी चट्टी है किन्तु सामान सब मिलता है। अब चलिए, त्रियुगी नारायण होकर चलना है यहाँ से सीधे ही त्रियुगी नारायण की चढ़ाई बड़ी कठिन है। ठंड भी वहाँ बहुत अधिक है। मक्खियों का भी उपद्रव है। हमारी सम्मति है जल्दी उठकर दर्शन करके गौरी कुण्ड पहुँचा जाय। इसीलिये चौथा पड़ाव रखिये।

[१३॥ मील] बादलपुर से त्रियुगी नारायण होकर गौरी कुंड

बादलपुर चट्टी चलिये दो मील आगे रामपुर चट्टी है। फिर पाटीगाड नाले का पुल आता हैं। इसे पार करके एक सड़क तो सीधी सोन प्रयाग होकर गौरी कुण्ड गई है। दूसरी त्रियुगी नारायण को गई है जो लौटकर सोन प्रयाग में फिर इसी सड़क में मिल गई है। सीधी सड़क से जाओ यहाँ से सोन प्रयाग दो मील पड़ेगा और त्रियुगी नारायण होकर जाओ तो तीन मील चढ़ाई और लौटकर वहाँ से ढाई मील सोन प्रयाग ऐसे ५॥ मील पड़ेगा। यह चढ़ाई थोड़ी कठिन है। जब हम १०-१२ वर्ष पहिले गये थे तब त्रियुगी नारायण को सड़क नहीं थी। बड़ी कड़ी चढ़ाई थी। अब किसी धर्मात्मा धनी पुरुष ने सड़क बना दी है। इससे बहुत चढ़ाई कट गई है। फिर भी चढ़ाई तो है ही।

पाटीगाड से चढ़िये लगभग दो मील चढ़ने पर शाकम्भरी देवी का मन्दिर है। यहाँ देवी जी को चीर चढ़ाया जाता है। थोड़ा विश्राम करके फिर चढ़िये। यहाँ का दृश्य बड़ा ही मनोहर है। सब पर्वत छोटे-छोटे दिखाई देते हैं चढ़ते-चढ़ते पिंडरियाँ पिराने लगती हैं, साँस फूल जाती है। विषैली मक्खियाँ काट ले तब तो फिर आफत आ जाती है। यहाँ मोजा, पाइ-जामा पहनकर सावधानी से जाना चाहिए। आगे शैल शिखर पर त्रियुगी नारायण भगवान् का दर्शन है। १५०-२०० घरों की

अलग बस्ती भी है। कहते हैं यहीं शिवजी का पार्वतीजी के साथ विवाह हुआ था। यहाँ भगवान् त्रियुगी नारायण का मन्दिर है। सरस्वती और लक्ष्मी के सहित भगवान् सिंहासन पर विराजमान हैं। एक सरस्वती गंगा की धारा भी यहीं से निकलती है। उसी धारा को लेकर चार कुण्ड बना दिये हैं इनके नाम हैं ब्रह्म कुण्ड, रुद्र कुण्ड, विष्णु कुण्ड और सरस्वती कुण्ड। स्नान रुद्र कुण्ड में ही होता है विष्णुकुण्ड में मार्जन ही कीजिए, ब्रह्म कुण्ड में आचमन और सरस्वती कुण्ड में तिल तर्पण किया जाता है। सब पर अलग-अलग पण्डे बैठते हैं। रुद्र कुण्ड बड़ा है। बाकी तो सब छोटे-छोटे हैं।

यहाँ मन्दिर में एक अखण्ड धूनी जलती रहती है। कहते हैं यह तीनों युगों में जलती रहती है, इसीलिए ये त्रियुगी नारायण कहलाते हैं। यात्री इसमें हवन करते हैं, लकड़ियाँ डलवाते हैं। कभी-कभी इतना धुआँ होता है कि भीतर बैठना कठिन हो जाता है। सचमुच इस शीत-प्रधान देश में यह अखण्ड धूनी न हो तो यात्री पण्डे जाड़े में ठिठुर जाँय। यहाँ छोटा-सा बाजार भी है जिसमें सब खाने-पीने की चीजें मिल जाती हैं।

दर्शन करके अब लौटिये फिर शाकम्भरी होकर सोन प्रयाग आ जाइये। सिर कटे गणेश के दर्शन करते हुए और कड़ा दिल करके गौरी कुण्ड ही चले चलिये, क्योंकि बीच में ठहरने को कोई अच्छी जगह ही नहीं। लीजिये गौरीकुण्ड आ गया। यहाँ काली कमली की धर्मशाला है छोटा बाजार है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि यहाँ गरम पानी का कुण्ड है। जिस कुण्ड का जल पीला-पीला शीतल है, वह अमृत कुण्ड कहाता है। सुनते हैं गौरीजी ने इसी में प्रथम जो स्नान किया था। उसमें गौमुख से सदा जलधार गिरकर कुण्ड को भरती रहती है। गरम कुण्ड या गौरीकुण्ड का जल बहुत गरम है। बड़ी कठिनता से कड़ा जी

करके गोता लगाना पड़ता है। शरीर लाल पड़ जाता है। मन्दाकिनी गंगा यहाँ एकदम निकट ही हैं। धर्मशाला बहुत अच्छी जगह है। सुनते हैं पार्वती जी का यहीं जन्म हुआ था पार्वती जी का मन्दिर है। राधाकृष्ण जी का भी मन्दिर है। ठहरने का सुभीता है। यहाँ से केदारनाथ जी ८ मील हैं, अतः अब तो केदारदाथजी के ही कल दर्शन होंगे।

[८ मील] गौरीकुण्ड से केदारनाथ

अब चढ़ाई शुरू होती है केदारनाथ तक चढ़ाई-ही-चढ़ाई है। ठण्ड की बात न पूछिये। आप विश्वास न करेंगे कितनी ठण्ड है। फाटा से आगे ही ठण्ड आरम्भ हो जाती है। गौरी कुण्ड तक तो सही जा सकती है आगे की ठण्ड तो असह्य हो जाती है यदि वैशाख जेष्ठ में बादल हो जाय और थोड़ी वर्षा भी हो जाय जैसी कि यहाँ रोज होती ही रहती है तो फिर चाहे आप अग्नि में हाथों को रख ही क्यों न दें, ठण्ड जाती नहीं।

गौरी कुण्ड से आध मील आगे चिरपटिया भैंरो हैं। यहाँ चीर चढ़ाया जाता है। फिर अमर चट्टी है। भीम शिला के बाद रामवाड़ा चट्टी आती है। काली कमली की धर्मशाला है। यहाँ गरीब और कम वस्त्र वाले यात्रियों को दो चार दिन के लिये कम्बल मिल जाते हैं। यहाँ से केदारनाथ की ठण्ड को न सहने के कारण दर्शन करके यहीं लौट आते हैं या गौरीकुण्ड चले जाते हैं।

यहाँ से आगे कड़ी चढ़ाई है। कहीं-कहीं दूर तक बरफ पर ही चलना पड़ता है बड़ा विकट रास्ता है, बोल केदारनाथ भगवान् की जय। 'जय-जय केदारनाथ बाबा' हरहर महादेव शम्भो' 'काशी विश्वनाथ गंगे' लीजिये मन्दाकिनी के पुल को पार कीजिये सामने यही केदारपुरी है।

श्री केदारनाथ

हम पहिले ही बता चुके हैं श्री केदारनाथ हमारे द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में* से एक हैं। सत्‌युग में महात्मा उपमन्यु ने यहीं देवाधिदेव महादेव की उपासना करके अपनी अभीष्ट सिद्धि प्राप्त की थी। द्वापर में जब पांडवों ने युद्ध में अपने भाई वन्धुओं को मारा तब वेद व्यास जी के उपदेश से वे यहीं पर तपस्या करने आये थे। उन्हें जाति नाशक कुलद्रोही समझकर केदारनाथ भगवान् की मूर्ति जमीन में घुसने लगीं। तब दौड़कर भीमसेन ने उन्हें पकड़ लिया—हैं महाराज! यह क्या करते हो? कहाँ भागे जाते हो? यह देखकर आशुतोष भगवान् प्रसन्न हो गये। जो अंश जमीन में धँस गये तथा खंडित हो गये थे। वे आसपास में ४ जगह प्रतिष्ठित हुए। अर्थात् बाहु तुङ्गनाथ में, मुख मुद्रनाथ, में, नाभि मद महेश्वर में और जटा कल्पेश्वर में इस प्रकार ये पंच केदार कहलाते हैं।

केदार कल्प में स्वयं शिवजी ने अपने ही समान इस केदार क्षेत्र को अनादि और प्राचीन बताया है। यहाँ शिवजी की स्थिति सदा रहती है। यह स्थान देवताओं को भी दुर्लभ बताया गया है।

केदारनाथ जो की कोई वनी बनाई लिंगाकार मूर्ति नहीं है। एक बड़ा त्रिकोण पर्वत खण्ड-सा है। यात्री स्वयं जाकर

---

* सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्री शैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालं ओंकारं ममलेश्वरम्॥
परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्या भीम शङ्करम्।
सेतु वन्धे तु रामेशं नागेशं दारुका वने॥
वाराणस्यांस्तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमी तटे।
हिमालये तु केदारं सुस्टणेशं शिवालये॥

केदार जी का पूजन करते हैं। छाती लगाकर उनसे मिलते हैं देवता तो ऐसा ही दयालु होना चाहिये। जो इसी तरह अपनी सन्तानों को छाती से लिपटा ले। मन्दिर बहुत बड़ा नहीं है, साधारण है। देव देखनी से बड़ा ही सुन्दर प्रतीत होता है।

यहाँ रावल के दक्षिण से लिंगायत शैव होते हैं। उनके नाम के पीछे 'लिंग' लगा रहता है। केदारनाथ में भी टिहरी दरबार की तरफ़ से गाँव लगे हैं। दरबार से यहाँ के महन्तों को भी 'रावल' की पुरानी पदवी है। केदारनाथ के भी अधीन अगस्त्य मुनि, गुप्त काशी, त्रिगुणीनारायण, लक्ष्मीनारायण गौरी देवी, मद महेश्वर, तुङ्गनाथ, रुद्रनाथ, गोपेश्वर और ऊखीमठ ये ११ स्थानों के मन्दिर हैं। यहाँ के रावल भी विवाह नहीं कर सकते। इन्हें शिष्य बनाने का अधिकार है। ये एक से अधिक शिष्य बनाते हैं और शिष्यों को ही भिन्न-भिन्न स्थानों में पूजा प्रबन्ध के लिये भेजते हैं। प्रधान शिष्य ही प्रायः उत्तराधिकारी होता है जैसे कि पहले बद्रीनाथ के आचार्य पूजा नहीं करते थे। ब्रह्मचारियों से पूजा कराते थे, केवल अधिकारी होते थे। उसी प्रकार केदारनाथ के रावल पूजा नहीं करते थे। उनका निवास स्थान ऊखीमठ में रहता है। कभी-कभी केदारनाथ यात्रा के निमित्त जाते हैं।

केदारनाथ जी की पूजा ६ महीने ही यहाँ होती है। ६ महीने उत्सव मूर्ति की पूजा ऊखीमठ में की जाती है। पांडव यहाँ भी ओत-प्रोत हैं। पाँचों पांडवों और द्रौपदी की मूर्तियाँ यहाँ हैं। कई जगह भीम गुफा, भीम शिला भी हैं। श्री शङ्कराचार्य का सम्बन्ध इस मन्दिर से भी जुटा हुआ है, कहते हैं उन्होंने ही मन्दिर की यहाँ पुनः प्रतिष्ठा कराई और यहीं उन्होंने अपने शरीर का त्याग भी किया था। मन्दिर के पास कई

कुण्ड भी हैं जिनमें मार्ग तर्पण आदि किया जाता है। ऊपर विस्तृत मैदान है। जो देखने में बड़ा ही भला मालूम होता है। पर्वत को चोटी पर स्थल कमल उत्पन्न होते हैं। जिन्हें पण्डे तोड़कर लाते हैं। श्रावण में इन्हीं कमल फूलों से पूजा होती है।

केदारनाथ में लगभग १५०-२०० घरों की साधारण बस्ती है। छोटा बाजार है, सब चीजें मिलती हैं, कई धर्मशालायें हैं। काली कमली का क्षेत्र तथा धर्मशाला है। नैपाल महारानी की धर्मशाला सर्वश्रेष्ठ है किन्तु ठंड इतनी है कि कुछ कहने सुनने की बात नहीं। डाकघर है किन्तु इस पथ में तार नहीं है।

श्री केदारनाथ से चमौली [लौटते समय]

श्री केदारनाथ के दर्शन करके लौटकर फिर इसी रास्ते आना पड़ता है। केदारनाथ के प्रायः सभी यात्री लौटते समय बदरीनाथ जाते हैं। कोई हजारों में एक आध ही ऐसा विरला होगा जो केदारनाथ से लौटे। लौटने वाला उसी रास्ते से लौट सकता है। अब कोनाला चट्टी तक तो इसी रास्ते से लौटना है। जैसे—

पहिला पड़ाव—केदारनाथ जो से गौरी कुण्ड (८ मील)
दूसरा पड़ाव—गौरी कुण्ड से फाटा (१३॥ मील)
तीसरा पड़ाव—फाटा से ऊखी मठ (१० मील)
चौथा पड़ाव—ऊखीमठ से चोंपता (१४ मील)
पाँचवा पड़ाव—चोंपता से मण्डल (८ मील)
छटा पड़ाव—मण्डल से चमौली (१० मील)

कुल—६३॥ मील

संक्षेप में एक सरसरी दृष्टि से रास्ते की चट्टियों की दौड़ भी लगाइये। जो है सो तुम्हारा रामजी भला करे। बोल केदारनाथ की जय। केदारनाथ को प्रणाम करके चलिये देवदेखनी से अंतिम

बार केदारपुरी को प्रणाम करके ३॥ तीन मील रामाबाड़ा चट्टी में आ जाइये। आधा मील भीमशिला है। फिर मिलकर अवश्य ही चिरपटिया भैरों के दर्शन करके गौरी कुण्ड आ जाइये यहीं लेट लगाइये।

गौरीकुण्ड से २॥ मीलचलकर मुँड़कटे गणेश हैं। कथा है कि पार्वती जी ने अपने पसीने से पुत्र उत्पन्न करके उसे दरवाजे पर बिठा दिया और आज्ञा दी मैं स्नान करती हूँ किसी को भीतर न आने देना। पुत्र ने माता की आज्ञा सिरोधार्य की। दैवयोग से शिवजी आ गये। पुत्र ने माता की आज्ञा मानकर पिता को भी रोका। शिवजी ने उसका सिर काट लिया। मालूम पड़ने पर पार्वतीजी के आग्रह से हाथी का सिर लाकर उनके धड़ पर लगा दिया तभी से गणेश गजानन हो गये। वहाँ से आगे सोन प्रयाग है अब त्रियुगी नारायण तो जाना नहीं सीधे पाटीगाड़, रामपुर तथा बादल चट्टी होकर चाहे बादलपुर में रहिये या फाटा में दोनों ही सुन्दर जगह हैं, पौने चार मील का अन्तर है।

फाटा से भैरवण्डा, व्यूग, नारायण कोटि होते हुए नाला चट्टी आइये एक सड़क गुप्त काशी को जाती है। सामने वाली ऊखी मठ को आप मन्दाकिनी पार करके ऊखी मठ में पहुँच जाइये। छोटा स्थान है। डाकघर है, शफाखाना है, काली कमली की धर्मशाला है, पुलिस का थाना है, डाक बंगला है, पाठशाला है। मन्दिर बड़ा विशाल है मूर्तियों की भरमार है। सुनिये, कितनी मूर्तियाँ यहाँ एक ही मन्दिर के अहाते में पृथक्-पृथक् स्थानों पर हैं पंच मूर्ति महादेव जी, राजा मान्धाता (कभी इन्होंने यहाँ तपस्या की थी) ओंकारेश्वर शिव, उनकी बगल में गणेशजी, नन्दीश्वर। मद महेश की चल मूर्ति, आदि बदरी, स्वामी कार्तिकेय, केदारनाथ जी पार्वती सहित, तुङ्गनाथ जी, पार्वती, काली, अर्ध-

नारीनटेश्वर तथा चतुर्भुजी भगवान् की मूर्तियाँ हैं। सबके घूम-फिर कर दर्शन कर लीजिये और आगे चलिये।

ऊखी मठ के दो-दो तीन-तीन मील के अन्तर पर गणेश चट्टी, दौड़ा पोथीवासा, बणियाँ कुण्ड, दोगली भीठा ये साधारण चट्टियाँ हैं। मील भर आगे चोपता चट्टी है, शरीर को खूब ढके रहिये। मक्खियों का उत्पात इधर बहुत है। काटते ही शरीर सूज जाता है। तेल लगा लीजिये। नमक डालकर गरम जल से धोलें, अब बोलिये। सीधे चलना है या तुङ्गनाथ जी के भी दर्शन करने हैं।

यदि तुङ्गनाथ जी के दर्शन करने हैं तो चोपता चट्टी से उठिये तुङ्गनाथ वाली सड़क पर तीन मील एकदम कड़ी चढ़ाई है। इतनी चढ़ाई इधर के शायद ही किसी तीर्थ में हो। सीधी चढ़ाई हैचढ़-कर तुङ्गशैल शिखर पर तुङ्गनाथजी के दर्शन हैं। यहाँ से केदार-नाथ, बदरीनाथ, गङ्गोत्री तथा यमुनोत्री के पहाड़ बच्चे से दिखाई देते हैं। यह भी पंच केदारों में से एक केदार है। केदारनाथ जी के अन्तर्गत होने पर भी इसका प्रबन्ध स्वतन्त्र है। मकू गाँव के मैठाणी इनके पुजारी हैं। यहाँ भी गूंठ के गाँव लगे हैं। एक जल धारा है जो पाताल गङ्गा कहलाती है। उनमें स्नान करना इन्सान का काम नहीं। शिवजी के दर्शन कर पाताल गङ्गा का स्नान करके सीधे यहाँ से तीन मील उतर कर भ्यूँढार चट्टी में आ जाइये। यदि तुङ्गनाथ होकर न आते तो चोपता चट्टी से १॥ मील भुलकना चट्टी और मील भर भ्यूँओड्यार, इस प्रकार २॥ मील ही पड़ता। भ्यूँओड्यार से पांगवासा चट्टी में धर्मशाला है, इससे चार मील आगे बड़ी मण्डल चट्टी है।

मण्डल चट्टी से चमौला ग्यारह मील है। गोपेश्वर आठ मील है, रास्ते में मण्डल से वैरागना, कोल्टी, सेंदुआ ये डेढ़-डेढ़ मील पर चट्टियाँ आती हैं। गोपेश्वर बड़ी बस्ती है यहाँ शिवजी

का बहुत प्राचीन मन्दिर है। मण्डल से अनुसूया तथा रुद्रनाथ को भी रास्ता है। जो पञ्च केदारों में ही है रास्ता बड़ा विकट है। गोपेश्वर और रुद्रनाथ के ही रावल होते हैं, जो गोपेश्वर में ही रहते हैं। यहाँ एक अष्टधातु का त्रिशूल है। उस पर पाली भाषा में कुछ लिखा है, घिस जाने से पढ़ा नहीं जाता। किन्तु कोई नेपाल का अनिकपाल राजा देशों को जीतता हुआ यहाँ तक आया था, उसी का यह स्मृति स्तम्भ है। शैव होने से उसने त्रिशूल ही बनाया होगा। गोपेश्वर के शिवलिंग स्वयं भू हैं। आगे मूर्ति पीतल की है भैरव जी तथा गरुड़ जी की अष्टधातु की मूर्तियाँ हैं। चतुर्थ केदार जो रुद्रनाथ जी हैं उनकी भी गद्दी यहीं हैं। छः महीने शीत में उनकी यहीं पूजा होती है। नन्दीश्वर पर विराजमान अष्ट धातु के सिद्धेश्वर जी का मन्दिर बहुत प्राचीन है। यहाँ से चमौली अथवा लालसांगा तीन ही मील है। चमौली में आकर फिर वही रुद्र प्रयाग से कर्ण प्रयाग, नन्द प्रयाग होकर बदरीनाथ वाली सड़क यहाँ चमौली के पुल पर मिल जाती है। पुल पर तिराहा है पुल पार करके हरिद्वार को सीधी सड़क जाती हैं। जो यहाँ से एक सौ साढ़े पैंतिस मील है, जिससे आप सभी उतर रहे हैं। यह केदारनाथ वाली सड़क जो यहाँ मिली है केदारनाथ यहाँ से सवा पैंसठ मील है। एक सीधी बदरीनाथ को चली गई है, जो यहाँ से सैंतालीस मील है। अब आगे का वर्णन तो पीछे हो ही चुका है, यह केदारनाथ जी होकर बदरीनाथ जी का रास्ता। बोल केदारनाथ की जय। बोल बदरी विशाल लाल की जय।

—:—

२०—श्री गङ्गोत्री यमुनोत्री होकर बद्रीनाथ

पापा पहारि दुरितारि तरङ्ग धारि ।
शैल प्रचारि गिरिराज गुहा विहारि ॥
झङ्कार कारि हरि पादरजोपहारि ।
गाङ्गं पुनातु सततं शुभ कारि वारि ॥

यों तो उत्तरा खण्ड में असंख्यों तीर्थ हैं, किन्तु चार धाम प्रधान माने गये हैं। गङ्गोत्री, यमुनोत्री, केदारनाथ और बद्रीनाथ जिन्हें इन चारों धामों की एक साथ यात्रा करनी होती है, वे पहिले यमुनोत्री जाते हैं तब गङ्गोत्री। गङ्गोत्री से बूढ़े केदार गुप्त काशी होकर सीधे केदारनाथ निकल जाते हैं। फिर केदार से वदरीनाथ जाते हैं। इसी प्रकार गंगोत्री, यमुनोत्री की यात्रा भी वदरी यात्रा का एक अंग है। हमने गंगोत्री की यात्रा दो बार की है। गंगोत्री से आगे गोमुख तक गये हैं बड़ा सुहावना प्रदेश है। यात्रा का वर्णन करें तो इस पुस्तक का आकार बहुत बढ़ जायगा। आरम्भ से ही मैं इसका आकार कम-से कम रखना चाहता था, किन्तु कम करते-करते इतना बढ़ गया। इसलिये हम आप से सच-सच कहते हैं, दृढ़ता से कहते हैं। आप चाहे बुरा मानें या भला हम गंगोत्री यमुनोत्री यात्रा वर्णन नहीं करेंगे, केवल पथ दिखायेंगे। क्योंकि यह विषय हमारी सीमा से थोड़ा बाहर है इस पर अलग ही पुस्तक लिखी जा सकती है। हाँ तो अब लीजिये। गंगोत्री जाने के भी तीन रास्ते हैं। (१) हरिद्वार ऋषिकेश से देव प्रयाग टिहरी होकर धारासू से यमुनोत्री होकर गंगोत्री का (२) हरिद्वार से मंसूरी होकर यमुनोत्री होकर गङ्गोत्री

का (३) नरेन्द्र नगर से टिहरी होकर। कुछ यात्री यमुनोत्री को छोड़ देते हैं, सीधे गङ्गोत्री ही जाते हैं, किन्तु चारों धाम करने वालों को यमुनोत्री जाना आवश्यक है। आइए अब हम आपको रास्ता भर दिखा दें।

[पहला मार्ग ऋषिकेश से देव प्रयाग होकर]

हरिद्वार से ऋषीकेश चौदह मील,
ऋषीकेश से देव प्रयाग ४५ मील।

देव प्रयाग से गंगोत्री वाली सड़क को चलिये। गंगोत्री १३५ मील है।

पहिला पड़ाव—देव प्रयाग से खरसाड़ १५ मील।
दूसरा—खरसाड़ से-खाली १० मील।
तीसरा पड़ाव—खाली से—टिहरी १० मील।
चौथा पड़ाव—टिहरी से भलड्याण ११॥ मील।
पाँचवाँ—भलड्याणा से—धारासू १५ मील।

धारासू में आकर देहरादून से मंसूरी होकर जो रास्ता आता है वह भी मिल जाता है। और ऋषिकेश से नरेन्द्र नगर टिहरी होकर जो सड़क आती है वह टिहरी में ही मिल जाती है। यहाँ से बहुत से लोग सीधे ही डुंडा नागोर लकड़घाट उत्तर काशी होकर गंगोत्री चले जाते हैं यहाँ से सीधे गंगोत्री ७४ मील है। यमुनोत्री यहाँ से ४९ मील है। हमें तो यमुनोत्री होकर ही गंगोत्री जाना है। इसलिये धारासू से यमुनोत्री चलिये।

छटा पड़ाव—धारासू से सिलक्यारा १२ मील।
(रास्ते में ४ मील पर कल्याणीचट्टी ६ मील पर कुमण्डाचट्टी है)
सातवाँ पड़ाव—सिलक्यारा से गङ्गाणानी चट्टी १२ मील
(बीच में, ४ मील पर राड़ीकाडाटा है)
आठवाँ पड़ाव—गंगाणानी से राणगाऊँ १३ मील

(बीच में ६ मील पर कुथनोर, १० मील पर ओजरी चट्टी है। तीन मील आगे रणागाँऊ है)

नवाँ पड़ाव—राणागांऊ से खरसाली ८ मील है

(बीच में तीन मील पर हनुमाम चट्टी है)

दसवाँ पड़ाव—खरसाली से यमुनोत्री ४ मील

खरसाड़ी से यमुनोत्री को बड़ी कड़ी चढ़ाई है। जहरीली मक्खियों का उपद्रव भी बहुत है ठण्ड का तो कुछ कहना ही नहीं। यमुनोत्री का दृश्य बड़ा ही सुन्दर है। एक ऊँचे पहाड़ से यमुनाजी की छोटी-छोटी ही कई वेगवती धारायें गिरती हैं, ठण्ड के कारण शरीर जकड़ जाता है, किन्तु भगवान् की कृपा है कि यहाँ गरम कुण्ड है। उसका पानी हमेशा खौलता रहता है। उसमें यात्री कपड़े में बाँध कर आलू डाल देते हैं और आलू पक जाते हैं। चावलों को भी कपड़े में बाँध कर डाल देते हैं तो बड़े सुन्दर परिपक्व हो जाते हैं। रोटियों को भी डाल देते हैं पक कर पूड़ियों की तरह ऊपर उठ जाती हैं किन्तु वे आलू और चावल की तरह नहीं होती। यहाँ एक यमुना जी का मन्दिर है छोटी सी धर्मशाला है। स्थान बहुत संकीर्ण है। सफाई का प्रबन्ध न रहने से यात्री गन्दा भी बहुत कर देते हैं।

यमुनोत्री से लौटने के कई पहाड़ी मार्ग हैं, किन्तु वे सब अच्छे नहीं हैं खाली पगडंडी है। अच्छा तो यही है कि धारासू होकर ही लौटें। किन्तु एक मार्ग राड़ी के डांडे से उत्तर काशी को जाता है हम उसी से लौटे थे, अतः उसी का विवरण देंगे। रास्ता बुरा नहीं है।

ग्यारहवाँ पड़ाव—यमुनोत्री से राणागाउँ १ मील

बाराहवाँ पड़ाव—राणा से कुथनौर ७ मील

तेरहवाँ पड़ाव—कुथनौर से रानीकाडांड़ा २ मील

चौदहवाँ पड़ाव—रानीकाडांड़ा से उत्तर काशी १४ मील

उत्तर काशी टिहरी राज्य का एक साधारण पहाड़ी कस्बा है। राज्य की तहसील है। धारासू से लेकर गङ्गोत्री तक यहीं पर एक डाकघर है। राज्य की ओर से एक अंग्रेजी दवाखाना है हिन्दी संस्कृत पाठशाला भी है काली कमली तथा पंजाब सिन्ध क्षेत्र की ओर से क्षेत्र भी हैं। अभी हाल में बिड़लाजी की एक बड़ी भारी धर्मशाला बन गई है। जैसे पूर्व में बनारस काशी है वैसे ही यह उत्तर दिशा की काशी है। यह भी वारणावत पर्वत पर वरुणा और 'असी, दो नदियों के बीच में होने से वाराणसी कहलाती है। वहाँ के भी एक घाट का नाम मणिकर्णिका घाट है। काशी-विश्वनाथजी का विशाल मन्दिर यहाँ भी है। जब परशुरामजी के पिता जमदग्नि को कार्तवीर्य के पुत्रों ने मार डाला तब परशुराम जी ने यहां आकर शिवजी की तपस्या की थी और यहीं प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें समर विजयी फरसा दिया था। इसे सौम्य काशी या बाराहाट (वारणावत) भी कहते हैं। विश्वनाथ जी के मन्दिर के पास अन्नपूर्णा जी, दत्तात्रेय जी तथा परशुराम जी के मन्दिर हैं। स्थान बहुत ही सुन्दर, न बहुत गर्मी न बहुत सर्दी। पहले यहाँ बहुत बड़े २ प्रसिद्ध त्यागी महात्मा रहते थे अब भी रहते हैं। साधुओं की बहुत सी कुटियाँ बनी हैं, यहाँ से लगभग मील भर दूरी पर लक्षेश्वर महादेव जी का बड़ा शान्त-एकान्त स्थान में मन्दिर है। उत्तर काशी से चल कर आगे का पड़ाव है।

पन्द्रहवाँ पड़ाव—उत्तर काशी से मुनेरी ९॥ मील

सोलहवाँ पड़ाव—मुनेरी से भटवारी ८॥मील

भटवारी से ही केदारनाथ जी को त्रियुगी नारायण होकर सड़क जाती है।

सत्रहवाँ पड़ाव—भटवारी से गङ्गाणानी १० मील

अठरहवाँ पड़ाव—गङ्गाणानी से हरसियल १३ मील

(रास्ते में राड़ा, सूकी झाला ये तीन चट्टियाँ पड़ती हैं।)

उन्नीसवाँ पड़ाव—हरसिल से भैरोंघाटी १० मील

[भैरों घाटी की कठिन चढ़ाई है रास्ते में हरसिल से तीन मील धराली बड़ी चटटी पड़ती है।

बीसवाँ पड़ाव—भैरों घाटी से गंगोत्री ५ मील

गङ्गोत्री में गंगाजी का मन्दिर है। सरस्वती, यमुनाजी राजा भगीरथ और शङ्कराचार्य जो की भी गङ्गाजी के साथ मूर्तियाँ हैं। यह राजा भगीरथ की तपस्या का स्थान है। यहीं तपस्या करके उन्होंने गंगाजी को प्रसन्न किया था, यहाँ से १२ मील दूर गौमुखी नामक स्थान है। जहाँ से गंगाजी पहाड़ की कन्दरा से प्रकट होती हैं। वहीं उनका आदि स्रोत स्थान है। किन्तु यहाँ कठिनता के कारण यात्री जाते नहीं हैं। विरले ही जाते हैं। हम तो बड़ी कठिनता से गये थे। यहाँ के सौन्दर्य का वर्णन यहाँ न करूँगा। क्योंकि यह पृथक् विषय है।

गंगोत्री से लौटते समय

गंगोत्री की यात्रा करके ही जो लोग लौटते हैं वे धरासू तक इसी सड़क से आते हैं वहाँ से चाहे देवप्रयाग होकर ऋषिकेश या मंसूरी होकर देहरादून पहुँचे अथवा टिहरी से नरेन्द्र-नगर वाली सड़क से ऋषिकेश पहुँच जायँ। हमें तो केदारनाथ होकर बदरीनाथ पहुँचना है। अतः चलिए भटवारी तक उसी मार्ग से लौटिये।

पहिला पड़ाव—गंगोत्री से धराली १२ मील।

दूसरा पड़ाव—धराली से सूकी ११ मील।

(हरसिल झाला दो चट्टी बीच में हरसिल में धर्मशाला भी है)।

तीसरा पड़ाव—सूकी से गंगाणानी।

चौथा पड़ाव—गंगाणानी से भटवाड़ी।

भटवारी से अब उत्तर काशी वाली सड़क को छोड़कर बूढ़े केदार वाली सड़क पर चलिये। इसमें पँवाली की चढ़ाई बड़ी ही दुखदाई है।

पाँचवाँ पड़ाव—भटवारी से सियाली सौड़ ९ मील।

छठा पड़ाव—सियाली सौड़ से बूढ़े केदार १२ मील

सातवाँ पड़ाव—बूढ़े केदार से घुत्तू १५ मील।

आठवाँ पड़ाव—घुत्तू से पँवाली १४ मील।

नवाँ पड़ाव—पँवाली से त्रियुगी नारायण १५ मील।

त्रियुगी नारायण से आगे तो वही केदारनाथ वाली सड़क आ ही जाती है। त्रियुगी नारायण से केदारनाथ जी १४ मील रह जाते हैं। केदारनाथ जी से बदरीनाथ जी ११२॥। मील हैं। केदारनाथ जी के दर्शन करके चमौली होकर बद्रीनाथ पहुँच जाइये। लीजिये यमुनोत्री गङ्गोत्री, केदार और बदरी इसी प्रकार चारौं धाम हो गये। "बोल, गङ्गा मैया की जय। बोल, यमुना रानी की जय। बोल, केदारनाथ बाबा की जय।"

बोल बदरी विशाल लाल की जय।

———

३१ श्री बदरीनाथजी से होकर विदा

न याचेऽहं वित्तं न च विमल कीर्तिं न च सुखम् ।
न दारादेः सौख्यं न च सदसि चापल्य वचनम् ॥
न राज्ञां सम्पर्कं न च धनिषु मैत्री मपि विभो ।
प्रया चेत्वद्दास्यं शरणद जगतस्तिः तरषुः ॥*

संसार में सभी चीज एक-सी हैं सभी अमूल्य हैं, सभी भौतिक हैं सभी पृथ्वी, जल, अग्नि वायु और आकाश से निर्मित हैं। एक सी होने पर भी कुछ चीजों का बहुत मूल्य होता है, कुछ चीजों का बिलकुल नहीं। कुछ को देखकर प्रसन्नता अधिक होती है, कुछ रोज देखते-देखते साधारण बन जाती हैं। कुछ के लिये बड़ी उत्सुकता होती है कुछ ऐसी हैं जिनका हमारी दृष्टि में कोई महत्व नहीं यह क्या बात है ?

वस्तुओं का मूल्य नहीं होता। मूल्य सदा परिश्रम का होता है मिट्टी पत्थर, ताँबा, सोना, हीरा सब पृथ्वी से निकलते हैं। साधारण मिट्टी को सब कोई सब जगह बिना परिश्रम के प्राप्त कर सकते हैं उसका कोई मूल्य नहीं ! पीली मिट्टी खान से खोदकर परिश्रमपूर्वक लाते हैं उसका कुछ मूल्य हो जाता है। पत्थर दूर

---

* हे बदरी विशाल ! मुझे धन नहीं चाहिये, कीर्ति, शरीरसुख, गृहस्थी सुख, सदस्या, वाक्पटुता, राजाओं के साथ सम्पर्क तथा धनिकों से मैत्री की भी मुझे अभिलाषा नहीं। हे मेरे जगदाधार ! मुझे तो केवल आपकी दासता ही चाहिये। जिससे इस संसार से सदा के लिये छुट्टी पा जायँ। प्रभो ! अपनी दासता दीजिये।

से खोदकर सवारियों में लादकर लाया जाता है उसका पीली मिट्टी की अपेक्षा और अधिक मूल्य है, ताँवा के लिये और भी परिश्रम करना पड़ता है खान में वहुत मजदूर काम करते हैं वह पत्थर से भी ज्यादा मूल्यवान हो जाता है। सुवर्ण ताँवे की खानों के नीचे रहता है उसमें ताँवे से अधिक परिश्रम पड़ता है वह धातुओं में सब से मूल्यवान होता है। भगवान् की तरफ से किसी का मूल्य नियत नहीं है यह तो मनुष्यों ने अपने परिश्रम को उन चीजों के साथ जोड़कर या अपने स्वत्व को उसमें मिलाकर मूल्यवान वना दिया है।

जो चीज जितनी कठिनता से प्राप्त होगी उसकी प्राप्ति में उतनी ही अधिक प्रसन्नता भी होगी। जो चीज जितनी ही छिपी हुई रहस्यमय होगी उसके देखने के लिये उतनी ही अधिक उत्सुकता होगी। यदि विना पढ़े सभी को वड़ी-बड़ी परीक्षाओं की पदवियाँ मिलने लगें तो उन पदवियों का कोई महत्व ही न रह जाय। राजा को तथा राज्य के वड़े-वड़े अधिकारियों को देखने के लिये हम इतने लालायित क्यों रहते हैं क्योंकि वे जनता के संसर्ग से छिपे रहते हैं वे सब किसी से नहीं मिलते जो महिलायें मुँह खोले सिर नंगा किये गली-गली घूमती रहती हैं उनके लिये कोई उत्सुकता नहीं। किन्तु जो हर जगह नहीं निकलतीं जिसके जाने आने देखने को मर्यादा है जो पर्दे में रहती हैं उनके दर्शनों की एक स्वाभाविक इच्छा होती है।। उत्सुकता हमेशा पर्दे के भीतर है दुर्लभता में ही प्रसन्नता है, परिश्रम ही वस्तु को मूल्यवान वना देता है। भगवान् यदि इस तरह छिपे न रहते सव किसी को शंख चक्र गदा पद्म लिये मिल जाया करते। बिना घोर जप, तप साधन भजन के यों ही मिल जाते तो उनके लिये न इतनी उत्सुकता होती, न उनके पाने पर इतनी प्रसन्नता होती और न उनकी प्राप्ति का इतना मूल्य ही होता।

सब तीर्थों से अधिक महत्व बदरीनाथ यात्रा को क्यों दिया गया है इसमें तीन कारण हैं। इस यात्रा में सब तीर्थों से अधिक परिश्रम करना पड़ता है हरिद्वार से चलते ही उत्सुकता बढ़ती है, कब बदरीनाथ पहुँचें कब दर्शन हों। जो लोग आकर प्रशंसा करते हैं तो इच्छा और भी प्रबल होती है। इन्हीं सब कारणों से प्रतिवर्ष हजारों गरीब अमीर, राजे-महाराजे, पंडित मूर्ख बदरीनाथ जी के दर्शनों को सब प्रकार की असुविधाओं को प्राप्त करके जाते और भगवान् के दर्शन करके अपने नेत्रों को सफल करते हैं। जहाँ बदरीपुरी में पहुँचे जहाँ उन्होंने बदरी-विशाल लाल की बाँकी झाँकी पाई कि अब उन्हें घर की याद आती है। अब तक जो अहर्निश बदरी नाम की रटन लगी रहती थी अब तक जो बड़ी-से-बड़ी असुविधा प्रसन्नता पूर्वक सही जाती थी उसका प्रवाह अब बदल जाता है। दर्शन करते ही घर के प्रत्येक काम याद आ जाते हैं। बाल बच्चे, ज़मीन जायदाद बार-बार सभी आंखों के सामने नाचने लगते हैं। अब यात्रा का एक-एक दिन भी भारी हो जाता है। वह सोचता है यदि पंख किसी तरह लग जायँ तो मैं उड़कर आज ही घर पहुँच जाऊँ। अब उसे पञ्च प्रयाग में स्नान की चिन्ता नहीं। अब उसे तीर्थों की भूख नहीं अब उसे एक ही रटन लगी है कि कैसे जल्दी घर पहुँचें। बदरीनाथ के दर्शन हो गये सब हो गया अब क्या रक्खा है और कहीं भटकने में। अब तो सीधे घर चलो वही रास्ता खोजो जो जल्दी से जल्दी घर पहुँचा दे। जब तक कोटि नगर तक मोटर नहीं थी तब तक लोग दूसरे रास्ते से लौटते थे जैसे—

नन्द प्रयाग से गरुड़ होते हुए अलमोड़ा—

बदरीनाथ से नन्द प्रयाग ५४॥ मील है। नन्द प्रयाग तक तो उसी बदरीनाथ वाली सड़क से लौटना पड़ता है नन्द प्रयाग से

एक सीधी सड़क जिला बोर्ड की गरुड़ को गई है। गरुड़ यहाँ से २० मील है। गरुड़ में मोटर मिलती है जो अलमोड़ा सीधी पहुँचा देती है। अलमोड़े से जहाँ इच्छा हो जाइये। किन्तु इस रास्ते में चढ़ाई बहुत है। इसलिये इस रास्ते से प्रायः पहाड़ी ही जाते हैं एक बार हम अलमोड़े के इसी रास्ते से आए हैं बड़ी विकट चढ़ाई है। भोजन का सामान भी सर्वत्र नहीं मिलता।

कर्ण प्रयाग से रानीखेत होकर—

श्री बदरीनाथ जी से उसी सड़क तक लौटकर कर्ण प्रयाग तक आइए। बदरीनाथ जी से कर्ण प्रयाग ६६॥ मील है। कर्ण प्रयाग से पहला पड़ाव आदिबदरी १२ मील है। बीच में ४ चट्टियाँ छोटी-छोटी पड़ती हैं। आदिबदरी की बड़ी विशाल झाँकी है प्राचीन मन्दिर है। दर्शन करके दूसरे दिन घुनार घाट आइये। ११॥ मील है। बड़ी चट्टी है डाकघर भी है। बीच में छोटी-छोटी दो चट्टियाँ पड़ती हैं, तीसरे दिन १४। मील चलकर गणाई चट्टी पर निवास करें। बीच में ९ चट्टियाँ पड़ती हैं। चौथे दिन गणाई से चलकर ११॥ मील पर द्वारहाट प्रसिद्ध चट्टी है। द्वारहाट से रानीखेत १३॥ मील है। इस रानीखेत में शहर है मोटरें हैं बाजार है। पहाड़ी बातें छूटी, अब मानों देश-में आ गये। मोटर में बैठिये भुआली रानीबाग को देखते हुए काठगोदाम रेलवे स्टेशन पर पहुँच जाइये। रेल में बैठकर जहाँ जाना हो चले जाइये।

रामनगर होकर—

कर्ण प्रयाग से गणाई तक तो रानीखेत वाली सड़क पर ही आइये। फिर गणाई से एक दूसरी सड़क रामनगर को जाती है पहिले दिन ९ मील थापला, दूसरे दिन ८॥ मील पर भिकिना सैड मिल जायेगा। भिखीना सैड है रामनगर तक मोटर चलती है। रामनगर रेल का स्टेशन है टिकट कटाइये घर पहुँच जाइये।

श्री नगर से कोट द्वार होकर—

अब तो कोट द्वार से रुद्र प्रयाग तक तो हमारे सामने ही मोटर सड़क बनाई गई थी इस साल कर्ण प्रयाग तक भी बन जायेगी। कर्ण प्रयाग तक मोटर आ जाने पर पिछले जितने लौटने के मार्ग कहे हैं वे सब पुराने पड़ जायँगे उनसे कोई विरला ही विवशता के कारण लौटेगा। नहीं तो समर्थ यात्री सीधे कर्ण प्रयाग से श्रीनगर पौड़ी डुगड्डा होते हुये कोट द्वार पहुँच जायँगे। अब भी कोट द्वार से पौड़ी तक मोटरें आती हैं। डुगड्डा से लैन्सडौन को भी सड़क गई है। इस प्रकार मोटर चलने से अब कर्ण प्रयाग से आगे का रास्ता ही पर्वतीय रास्ता रहा। जहाँ रेल मोटर पहुँची वहाँ कलयुग पहुँच गया। उसका वर्णन क्या है। क्योंकि कलयुग में तो आँख मूँद कर बैठ जाओ। फिसलते ही चलेंगे। उसे देखकर चलने की जरूरत नहीं। 'कल' इंजन तो हमें स्वतः खींच ले जाता है।

अच्छा तो अब हमारा नमस्कार ग्रहण कीजिये। हमें विदा दीजिये। शास्त्रों में सज्जनों की सप्तपदी, मैत्री वताई है। जिसके साथ भले आदमी ७ पग तक चल देते हैं उसे अपना मित्र मान लेते हैं हम तो आपके साथ इतने दिन न जाने कहाँ-कहाँ भटके हैं। और भटके हैं ऐसे देशों में जहाँ संसारी छल प्रपंच नहीं। सुन्दर-सुन्दर झरने हैं। वेगवती असंख्यों नदियाँ हैं। हरे भरे पहाड़ हैं ऊँचे-ऊँचे वृक्ष हैं। भाँति-भाँति की विचित्र-विचित्र गन्ध वाली जड़ी बूटियाँ हैं। पत्थर और बरफ के चट्टान हैं। चित्र विचित्र विविधि भाँति के रङ्ग विरंगे पुष्प हैं। जहाँ प्रकृति सदा हँसती मुस्कराती रहती है। उन मनुष्य हीन जङ्गल और बनों में हम साथ रहे हैं। मित्रता एकान्त में ही प्रकट होती है। सबके सामने हृदय के छिपे हुए भाव प्रकट नहीं होते। कोलाहल में मैत्री का मजा नहीं। एकान्त प्रेम का

वर्धक है, रहस्य पूर्ण भाव पूर्ण बातें तो शान्त एकान्त स्थानों में ही होती हैं, चिरस्थाई मैत्री तो एकांत में साथ रहने से ही बढ़ती है, जमती है, पनपती है, पुष्पित पल्लवित होकर फूलती फलती है। हृदय की बात सहृदय मित्र से ही कही जा सकती है। मैं तुमसे अब चलते-चलते अपने हृदय की पीड़ा भी कहे जाता हूँ। उसे न कहूँ तो पाप लगेगा मुझे शान्ति न होगी। "गुरु ते कपट मित्र ते चोरी, के होय निर्धन के होय कोढ़ी" मुझे निर्धन कोढ़ी होने की उतनी चिन्ता नहीं। निर्धन तो जन्म का ही हूँ। फिर भी मुझे अपनी पीड़ा कहने में शान्ति मिलेगी। सहृदय मित्रों के सामने दुख कहने में हृदय हलका हो जाता है। प्रेमियों के सामने रोने से आँसू निकलने से छाती शीतल हो जाती है। इससे मैं तुमसे चलते-चलते अपना दुख अपनी पीड़ा अपनी मनोव्यथा जरूर कहूँगा।

मैं पथ प्रदर्शक वन के आपके साथ श्री बद्रीनाथ की यात्रा में गया जरूर हूँ, किन्तु हे मेरे श्रद्धालु यात्री वन्धु! मेरे मन में तनिक भी श्रद्धा नहीं, भगवान् के प्रति रञ्चक मात्र भी प्रीति नहीं। बदरीनाथ मुझे मेरे पाप से पाषाण मूर्ति ही दिखाई देते हैं। उनके दर्शनों से भी हृदय द्रवीभूत नहीं होता। मेरे पाप मुझे भगवान् के असली रूप को नहीं देखने देते। मेरी आँखों के सामने अज्ञान अन्धकार का पर्दा पड़ा है। मुझे अपने कर्तृत्व में अभिमान है। आपके जैसे कितने ही श्रद्धालु यात्री कितनी श्रद्धा से जाते हैं, इन्हें भगवान् के साक्षात् दर्शन होते हैं। भगवान् उन्हें प्रत्यक्ष आदेश देते हैं। मैं कई बार इतनी दूर जाकर भी कोरा ही लौट आया। सचमुच यह कहावत मेरे ऊपर बिल्कुल चरितार्थ होती है कि मसालची के नीचे अंधकार ही रहता है। दूसरे को प्रकाश दिखाने वाला स्वयं अंधकार में बना रहता है। हे मेरे मित्र! हे मेरे यात्री वन्धु! चलते समय, विदा होते

समय मुझे आशीर्वाद दो कि मेरी भगवान् में भक्ति हो उनके चरणों में अनुराग हो, उनकी कृपा का अनुभव कर उन्हें सर्वत्र देखूँ । मेरे प्यारे बन्धु ! विदा मेरे यात्रा के साथी सखा । तुमसे विदा ! जीवन में पता नहीं कब मेरा···नारायण की यात्रा नारायण को ही समर्पित कर दो ।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात् ।
करोमि यत् यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयामि ।

हरि ॐ तत् सत्
श्री कृष्णार्पणमस्तु ।

इति श्री बदरीनाथ दर्शन समाप्त
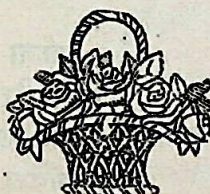
चट्टियों की दूरी

नाम चट्टी	मील व फर्लांङ्ग	नाम चट्टी	मील व फर्लांङ्ग
हरिद्वार से बद्रीनाथ	१८३/५	सौड़	२/४
		देवप्रयाग	१/२ — ५८
सत्यनारायण	८	विद्याकोटी	४
ऋषिकेश	७	सीताकोटी	२
मुनिकीरेती	१/४	रानीबाग	१/४
लक्ष्मण झूला	१/४	कोल्टा	१/४
गरुड़ चट्टी	२	रामपुर	२/२
गुलर चट्टी	४	अरकणी	३
महादेवसैंण	१	बिल्वकेदार	२
नई मोहन	१ — २६	श्रीनगर	३ — ७७
छोटी बिजनी	२	सुकता	५
बड़ी बिजनी	१	भट्टीसेरा	२/४
न्योडखाल	१	छाँतीखाल	१
कुण्ड चट्टी	२	खाँकरा	२/४
बन्दरभेल	३	नरकोटा	२/४
महादेव सैंण	२/७		
सेमल चट्टी	४/१	पंचभाई की चढ़ाई	१/२ — ९१/६
काँडी	३	गुलाबराय	२/२
व्यासघाट	४	रुद्र प्रयाग	१/२ — ९५/१
छालड़ी	२		
उमरासू	२/२	शिवानन्दी	७/६

नाम चट्टी	मील व फर्लाङ्ग	नाम टट्टी	मील व फर्लाङ्ग
कनेड़ा	४।१	हेलङ्ग (कुम्हार चट्टी)	३
गोचर	४।१	खनेटा	२-२
चटुआ पीपल	२	झडकूला	१-२
करण प्रयाग	३-७	सिंहधारा	२-७
	११५-४	ज्योतिर्मठ	१-१
उमट्टा	२-२		१६४-१
जैकंडी	२-२	विष्णु प्रयाग	१-६
लङ्गासू	१-६	घाट	४-१
सोनला	४	पांडुकेश्वर	२-६
नन्दप्रयाग	२-६	शेषधारा	०-५
मैठाणा	३	लामवगड़	२-४
कोहेड़	१-७	हनुमान चट्टी	३-६
चमोली	२	बद्रीनाथ	३-८
	१३४		१८३-५
मठ	२	हरिद्वार से केदारनाथ	१४९
छिनका	१-५	हरिद्वार से रुद्रप्रयाग	९५-१
वावला	२	रुद्रप्रयाग से छतौली	५
सिय्यासैंण	१-१	मठ	१
हाट	३	रामपुर	१
पीपलकोटी	२	अगस्त्यमुनि	४-४
गरुड़ गङ्गा	३-४	सौड़ी	२
टंगनी	१-४	चन्द्रापुरी	२
पातालगङ्गा	३-१	भीरी	२-४
गुलाबकोटी	२		

नाम चट्टी	मील व फर्लाङ्ग	नाम चट्टी	मील व फर्लाङ्ग
कुण्ड	३-४	जङ्गली चट्टी	३
गुप्त काशी	२४ / ११९	पांगरबासा	२-४
नाला चट्टी	१-४	मण्डल चट्टी	४
नारायणकोटी	२	गोपेश्वर	४-४
ब्योंग मल्ला	१-४	चमोली	३
मैखण्डा	२	बद्रीनानाथ	४८ / १०१
फाटा	२		
रामपुर	३	हरिद्वार से देव प्रयाग होकर यमुनोत्री	१६६
त्रिजुगीनारायण	४-६		
सोमद्वारा	३-२		
गौरीकुण्ड	३	ह० देवप्रयाग	५८
रामबाड़ा	४	देवप्रयाग से खर्सांड़ा	१०
केदारनाथ	३ / १४९	कोटेश्वर	४
		बनढ्या	६
केदारनाथ से बद्रीनाथ	१०१	क्यारी	८
		टिहरी	६ / ९२
केदारनाथ से नाला चट्टी	१९		
ऊखीमठ	३	सराई	५-४
गणेश चट्टी	३-४	भल्डियाना	६
पोथी बासा	५	छाम	५
बनियाकुण्ड	२	नागूण	५
चोपता	१	धरासू	५
तुङ्गनाथ	३	कल्याणी	४

नाम चट्टी	मील व फर्लांग
गेउँला	५
सिलक्यारी	५
राड़ीधार	५
डन्डालगाँऊ	२
सिमली	२
गङ्गाणी	२
जमुना चट्टी	६
ओजरी चट्टी	६
डडोटी	२-४
रानागाँऊ	२
हनुमान चट्टी	२
खरसाली	४
यमुनोत्री	४
	१६६
यमुनोत्री से गंगोत्री	९८
यमु० से सिमली	२
सिंगोट	७-४
नाकोरी	३-४
उत्तरकाशी	६
यमु० से उत्तर०	४२
हरि० से उत्त०	१३६-४
गंगोत्री	३
नैताला	३
मनेरी	४

नाम चट्टी	मील व फर्लाङ्ग
कुम्हाल्टी	४
पल्लाचट्टी	२
भटवाड़ी	२
भुक्की	६
गङ्गनाड़ी	३
लोहारीनाग	४
सुक्खी	५
झाला	३
हर्सिल	२
धराली	२४
जाँगला	४
भैरोंघाटी	२-४
भै० से गङ्गोत्री	६-४
यमुनोत्री से गङ्गोत्री	९८
हरिद्वार से गङ्गोत्री	१९६
गंगोत्री से केदारनाथ	१२१-२
गंगोत्री से सेमल्ला	४०
मल्ला से स्याली	३
प्यालू	३
छूणा	२
बेलक	४
पंगराणा	५
झाला	५

नाम चट्टी	मील फर्लाङ्ग
बूढ़ा केदार	५
तोला चट्टी	४
भैरव चट्टी	३
मौटा चट्टी	२
घुत्तू चट्टी	७
गौमांडा	४
ढुंफन्दा	३
पँवाली	३
मग्गू	१०
त्रियुगी नारायण	५
केदारनाथ	१३२ / २१२

वापसी यात्रा

नाम चट्टी	मील व फर्लाङ्ग
बद्रीनाथ से कर्ण प्रयाग	६८
क० प्र० से ऋषिकेश	१००
क० से रामनगर	९८-४
क० प्र० से सिमली,	४
सिरौली	२
भटौली	१-४
आदिबदरी	४
खेती	३२
जोकापानी	१-४
दिवालीखाल	२
ग्वाड़ गधेरा	४-४
धुनारघाट	१-२
भेलचौंरी	५ / २९
गणाईं	९-४
त्याड़	४-४
मासी	२-६
वृद्ध केदार	४
भिकियासैण	३
श्रीकोट	३
बासोट	२
ग्वालखान	३-६
गूजरघाटी	३
मछोड़	३
पनवाद्योखन	२
गोदी	२
टाटोआम	६
सौराल	२
कुमरिया	३
मोहन	३
गजरिया	५
रामनगर	८ / ९८-४

नोट—मोटे टाइप में एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी दिखलाई गई है और छोटे टाइप में एक चट्टी से दूसरी चट्टी की दूरी दिखलाई गई है।

यात्रा लाइन में तारघर, पोस्ट ऑफिस अस्पताल और डाक बँगलों की सूची

तारघर

१ नरेन्द्रनगर
२ टेहरी
३ देवप्रयाग
४ श्री नगर
५ रुद्रप्रयाग
६ कर्णप्रयाग
७ नन्दप्रयाग
८ चमौली
९ पीपल कोठी
१० जोशीमठ
११ बद्रीनाथ
१२ रानीखेत

पोस्ट ऑफिस

१ नरेन्द्रनगर
२ चमुवा
३ टेहरी
४ भाल्डियाना
५ धरासू
६ उत्तर काशी
७ देवप्रयाग
८ श्रीनगर
९ रुद्र प्रयाग
१० अगस्त्यमुनि
११ गुप्त काशी
१२ केदारनाथ
१३ ऊखीमठ
१४ चमौली
१५ सियासैन
१६ पीपलकोटी
१७ हैलांग
१८ जोशीमठ
१९ पांडुकेश्वर
२० बद्रीनाथ
२१ नन्दप्रयाग
२२ कर्णप्रयाग
२३ गोचर
२४ शिवानन्दी
२५ सिमली
२६ आदि बद्री
२७ लोहबा
२८ गणाई
२९ द्वाराहाट
३० रानी खेत
३१ घाट
३२ थराली
३३ ग्वालदम
३४ बैजनाथ

अस्पताल

१ नरेन्द्रनगर
२ टेहरी
३ देवप्रयाग
४ श्री नगर
५ रुद्रप्रयाग
६ ऊखीमठ
७ चमोली
८ जोशीमठ
९ बद्रीनाथ
१० कर्णप्रयाग
११ थराल

डाक बँगले

१ श्री नगर
२ छान्तिखाल
३ रुद्रप्रयाग
४ सोरागढ़
५ भटवालचरी
६ फाटा
७ गौरीकुण्ड
८ ऊखीमठ
९ दोगालभीटा
१० मण्डल
११ चमोली
१२ पीपलकोटी
१३ गुलाबकोट
१४ जोशीमठ
१५ पांडुकेश्वर
१६ बद्रीनाथ
१७ नंदप्रयाग
१८ सोनला
१९ कर्णप्रयाग
२० नागरासू
२१ आदिबद्री
२२ लोहबा
२३ गणाई
२४ द्वाराहाट
२५ घाट
२६ थराली
२७ ग्वाल दम

प्रधान-प्रधान स्थानों की एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी

क्र० सं०	स्थान का नाम	मीलों की दूरी
१	ऋषिकेश से जमुनोत्री (पैदल रास्ता)	१२५
	ऋषिकेश से टीहरी मोटर (सड़क)	५३
	टीहरी मोटर स्टेशन से जमुनोत्री (पैदल)	७४
२	जमुनोत्री से गङ्गोत्री	९९
३	गङ्गोत्री से केदारनाथ	१२१
४	लछमन झूला से रुद्रप्रयाग	७८
५	रुद्रप्रयाग से केदारनाथ	४८
६	केदारनाथ से चमोली	५४
७	चमोली से बद्रीनाथ	४७
८	बद्रीनाथ से कर्णप्रयाग	६७
९	कर्णप्रयाग से रुद्रप्रयाग	२१
१०	कर्णप्रयाग से रानीखेत	६०
११	गँणाई से रानीखेत	२४
१२	गँणाई भिकियासेन से रामनगर	६२
१३	नन्दप्रयाग से गरुड़	४७
१४	बद्रीनाथ से बसुधारा	५ मील फ०

प्रधान-प्रधान स्थानों की एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी

क्रम सं०	स्थान का नाम	मीलों की दूरी
१५	बद्रीनाथ से मातामूर्ति	२ मी २ फ०
१६	बद्रीनाथ से चरणपादुका	२
१७	बद्रीनाथ से शेषनेत्र	१
१८	बद्रीनाथ से सतोपंथ	१५ मी ४ फ०
१९	बद्रीनाथ से मानापास	२८
२०	जोशीमठ से हेम कुण्ड	१८
२१	घन गड़िया से हेमकुण्ड (लोकपाल)	२
२२	घन गड़िया से फूलों की घाटी	३
२३	जोशीमठ से नेतीगांव	४३ मी ६ फ०
२४	नेतीगांव से नेतीपास (१६६२८ फीट)	१२
२५	गरुड़ से तपोवन	८२
२६	चमोली से गोहनाझील	१२

॥ श्रीहरिः ॥

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी द्वारा लिखित पुस्तकें

१—भागवती कथा (१०८ खण्डों में)—१०५ खण्ड छप चुके हैं। प्रति खण्ड का मू० २.०० डाकव्यय पृथक ।

२—श्री भागवत चरित—लगभग ९०० पृष्ठ की, सजिल्द मू० ८.००

३—सटीक भागवत चरित (दो खण्डों में)— एक खण्ड का मू० २१.००

४—बदरीनाथ दर्शन—बदरी यात्रा पर खोजपूर्ण महाग्रन्थ मू० ६.००

५—महात्मा कर्ण—शिक्षाप्रद रोचक जीवन, पृ०सं० ३५० मू० ४ ००

६—मतवाली मीरा—भक्ति का सजीव साकार स्वरूप मू० २.५०

७—भक्तचरितावली प्रथम खंड मू० ४.०० द्वितीय खंड मू० २.५०

८—मुक्तिनाथ दर्शन—मुक्तिनाथ यात्रा का सरस वर्णन मू० २.५०

९—गोपालन शिक्षा—गौओं का पालन कैसे करें मू० २.५०

१०—श्री चैतन्य चरितावली (पांच खण्डों में)— प्रथम खण्ड का मू० १.६०

११—नाम संकीर्तन महिमा—पृष्ठ संख्या ९६ मू० ०.६०

१२—श्री शुक—श्री शुकदेवजी के जीवन की झांकी (नाटक) मू० ०.६५

१३—भागवती कथा की बानगी—पृष्ठ संख्या १०० मू० ०.३१

१४—शोक शान्ति—शोक की शान्ति करने वाला रोचक पत्र मू० ०.३१

१५—मेरे महामना मालवीयजी—उनके सुखद संस्मरण, मू० ०.३१

१६—भारतीय संस्कृति और शुद्धि (शास्त्रीय विवेचन) मू० ०.३१

१७—भागवत चरित की बानगी—पृष्ठ संख्या १०० मू० ०.३१

१८—गोविन्द दामोदर शरणागत स्तोत्र—(छप्पय छन्दों में) मू० ०.२५

१९—सत्यनारायण व्रत कथा—छप्पय छन्दों सहित मू० ० ७५

२०—भागवत चरित संगीत सुधा १.००

२१—कृष्ण चरित— मू० २.५०

२२—प्रयाग माहात्म्य— मू० ०.५०

२३—वृन्दावन माहात्म्य—मू० ०.१२

२४—सार्थ छप्पय गीता— मू० ३.००

२५—राघवेन्दु चरित सटीक १.५०

२६—राघवेन्दु चरित— मू० ०.४०

२७—प्रभुपूजा पद्धति— मू० ०.२५

२८—श्री हनुमत्-शतक— मू० ०.५०

२९—महावीर-हनुमान्— मू० २.५०

पता—संकीर्तन भवन झूसी (प्रयाग)

निम्नलिखित स्थानों से निर्दिष्ट स्थानों की दूरी मील व फर्लाङ्गों में*

क्रम संख्या		लक्ष्मण झूला	देव प्रयाग	श्रीनगर	रुद्र प्रयाग	गुप्त काशी	केदारनाथ	ऊखीमठ	चमोली	पीपल कोटी	जोशीमठ	बद्रीनाथ	नन्द प्रयाग	कर्ण प्रयाग	मेलचौरी	गैंणाई	रानीखेत	रामनगर
१	लक्ष्मणझूला	०	४१–५	६०	७८	१०२	१०६	१०६	११९	११८–५	१४७	१६६	१११–५	९९	१२८	१३६	१६१	
२	देव प्रयाग	४१–५	०	१९	३७	६१	८५	६५	७८	८७–५	१०६	१२५	७०–५	५८	८७	९५–५	१२०–५	
३	श्रीनगर	६०	१९	०	१८–५	४२–५	६६–५	४६–५	५९–५	६९	८७–५	१०६–५	५२	३९–५	६८–५	७७	१०२	
४	रुद्र प्रयाग	७४	३७	१८–५	०	२४	४८	२८	४१	५०–५	६९	८८	३३–५	२१	५०	५८–५	८८–५	
५	गुप्त काशी	१०२	६१	४२–५	२४	०	२४	४	३१–५	४१	५९–५	७५–५	३८–५	५४	७४	८२–५	१०७–५	
६	केदारनाथ	१२६	८५	६६–५	४८	२४	०	२६	२७	६३	८१–५	१००–५	६०–५	६९	९८	१०६–५	१३१–५	
७	ऊखीमठ	१०६	६५	४६–५	२८	४	२६	०	०	३७	५५–५	७४–५	३४	४९	७६	८४–५	१०९–५	
८	चमोली	११९	७८	५९–५	४१	६५	८९	२७	१०–५	१०–५	२९	४८	७	२०–५	४९	५७–५	८२–५	११७–५
९	पीपल कोटी	१२८–५	८७–५	५९	५०–५	७६	९८	३७	२९	०	१८–५	३७–५	७	३०	५९	६७–५	९२–५	१२७–५
१०	जोशीमठ	१४७	१०६	८७–५	६९	९२–५	११६–५	५५–५	४८	१८–५	०	१९	३५–५	४८–५	७७–५	८६	१११	१४६
११	बद्रीनाथ	१६६	१२५	१०६–५	८८	१११–५	१३५–६	११५–५	७–५	३७–५	१९	०	५४–५	६७–५	९६–५	१०५	१३०	१६५
१२	नन्दप्रयाग	१११–५	७०–५	५२	३३–५	५८	८२	३४	२०–५	१७	३७–५	५४–५	०	१३	४२	५०–५	७५–५	११०–५
१३	कर्ण प्रयाग	९९	५८	३९–५	२१	४५	६९	४९	४९	३०	४८–५	६७–५	१३	०	४९	३७–५	६२ ५	९७–५
१४	मेलचौरी	१२८	८७	६८–५	५०	७४	९८	७६	१०६–५	५९	७७–५	९६	४२	२९	०	८–५	३३–५	६८–५
१५	गैंणाई	१३६–५	९५–५	७७	५८–५	८२–५	१०६–५	८४–५	८२–५	८४–५	५७–५	६७–५	५०–५	७५–५	८–५	०	२५	६०
१६	रानीखेत	१६१–५	१२०–५	१०२	८३–५	१०७–५	१३१–५	१०९–५	११७–५	९२–५	१११	१३०	७३	६०	३३–५	२५	०	
१७	रामनगर									१२७–५	१४६	१६५	११०–५	९७–५	६८–५	६०		०

* नोट :—अब स्थानों की दूरी किलोमीटर के अनुसार इस प्रकार समझनी चाहिये—१ मील = १·६१ किलोमीटर, १० मील = १६·०९ किलोमीटर और १ किलोमीटर लगभग ५ फर्लाङ्ग का होता है।

॥ श्रीहरिः ॥

श्री बदरीनाथ-दर्शन

(श्री ब्रह्मचारी जी का एक अपूर्व महत्वपूर्ण ग्रन्थ)

श्रीब्रह्मचारी जी ने अनेकों बार श्रीबदरीनाथ जी की यात्रा की है। यात्रा ही नहीं की है, वे वहां महीनों रहे हैं। उत्तरा खण्ड के छोटे बड़े सभी स्थानों में वे गये हैं उत्तराखण्ड कैलाश,मानसरोवर,शतोपन्थ, लोकपाल और गोमुख ये पाँच स्थान इतने कठिन हैं कि जहां पहाड़ी भी जाने से भयभीत होते हैं। उन स्थानों में ब्रह्मचारी जी गये हैं वहां का ऐसा सुन्दर सजीव वर्णन किया गया है, कि पढ़ते-पढ़ते वह दृश्य आंखों के सम्मुख नृत्य करने लगता है। उत्तराखण्ड के सभी तीर्थों का इसमें सरस वर्णन है, सबकी पौराणिक कथायें हैं। किम्व-दन्तियां हैं, इतिहास हैं और यात्रावृत्त हैं। यात्रा सम्बन्धी जितनी उपयोगी बातें हैं सभी का इस ग्रन्थ में समावेश है। बदरीनाथ जी पर इतना विशाल महत्वपूर्ण ग्रन्थ अभी तक किसी भाषा में प्रकाशित नहीं हुआ। आप इस एक ग्रन्थ से ही घर बैठे उत्तराखण्ड के समस्त पुण्यस्थलों के रोमाञ्चकारी वर्णन पढ़ सकते हैं। अनुभव कर सकते हैं। यात्रा में आपके साथ यह पुस्तक रहे तो फिर आपको किसी से कुछ पूछना शेष नहीं रह जाता। लगभग सवा चार सौ पृष्ठ की सचित्र सजिल्द पुस्तक का मूल्य ४) रुपया मात्र है थोड़ी ही प्रतियां हैं, शीघ्र मँगावें। चौथा संशोधित संस्करण छप गया है।

श्रीब्रह्मचारीजी द्वारा लिखित पुस्तकें—

१–भागवती कथा (१०८ खंडोंमें)६८ खंड छप चुके हैं प्रति खंड १.२५
२–चैतन्य चरितावली (५ खण्डों में) प्रथम खण्ड १.००
३–श्रीभागवत चरित—लगभग ८०० पृष्ठ सजिल्द ५.२५
४–बदरीनाथ दर्शन—बदरी-यात्रा पर खोजपूर्ण महाग्रन्थ ४.००
५–महात्मा कर्ण—शिक्षाप्रद रोचक जीवन २.७५
६–मतवारी मीरा—भक्ति का सजीव साकार स्वरूप २.००
७–श्रीकृष्ण-चरित—भागवत चरित से ही पृथक् छपा है २.००
८–नाम सङ्कीर्तन-महिमा—भगवन्नाम सङ्कीर्तन के सम्बन्ध में उठने वाली तर्कों का युक्तियुक्तपूर्ण विवेचन .५०
९–श्रीशुक (नाटक) श्रीशुकदेवजी के जीवन की झाँकी .५०
१०–भागवती कथा की बानगी (आरम्भ के तथा अन्य खण्डों के कुछ पृष्ठों की बानगी) .२५
११–शोक शान्ति—शोक की शान्ति करने वाला रोचक पत्र .३१
१२–भारतीय संस्कृति और शुद्धि—क्या अहिन्दू हिन्दू बन सकते हैं ? इसका शास्त्रीय विवेचन पृष्ठ ७६ .३१
१३–मेरे महामना मालवीय और उनका अन्तिम सन्देश—उनके सुखद संस्मरण, पृष्ठ १३० .२५
१४–प्रयाग माहात्म्य .१०
१५–वृन्दावन माहात्म्य .०८
१६–राघवेन्द्र चरित, पृष्ठ ६४ (भागवत चरित से ही) .३१
१७–भागवत चरित की बानगी—भागवत चरित के कुछ अध्यायों की बानगी .२५
१८–प्रभुपूजापद्धति—पूजा करने की सरल शास्त्रीय विधि .१९
१९–गोविन्द दामोदर स्तोत्र (छप्पय छन्दों में) .१५
[illegible]ीत व रासपञ्चाध्यायी–मूल तथा हिन्दी पद्य सहित अमूल्य